विज्ञान भैरव तंत्र-4

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—57 (ओशो)

साक्षित्व की पहली विधि-- ‘’तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।‘’
जब तुम्हें कामना घेरती है, चाहे पकड़ती है, तो तुम उत्तेजित हो जाते हो, उद्विग्न हो जाते हो। यह स्वाभाविक है। जब चाह पकड़ती है तो मन डोलने लगता है। उसकी सतह पर लहरें उठने लगती है। कामना तुम्हें खींचकर कहीं भविष्य में ले जाती है; अतीत तुम्हें कहीं भविष्य में धकाता है। तुम उद्विग्न हो जाते हो, बेचैन हो जाते हो। अब तुम चैन में न रहे। चाह बेचैनी है, रूग्णता है।
यह सूत्र कहता है: ‘’तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।‘’
लेकिन अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? कामना का अर्थ ही उद्वेग है। अशांति है; फिर अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? शांत कैसे रहा जाए? और वह भी कामना के तीव्रतम क्षणों में।
तुम्हें कुछ प्रयोगों से गुजरना होगा। तो ही तुम इस विधि का अभिप्राय समझ सकते हो। तुम क्रोध में हो; क्रोध ने तुम्हें पकड़ लिया है। तुम अस् थायी रूप से पागल हो, आविष्ट हो, अवश हो। तुम होश में नहीं हो। इस अवस्था में अचानक स्मरण करो कि अनुद्विग्न रहना है—मानों तुम कपड़े उतार रहे हो। नग्न हो रहे हो। भीतर नग्न हो जाओ, क्रोध से निर्वस्त्र हो जाओ। क्रोध तो रहेगा, लेकिन अब तुम्हारे भीतर एक बिंदु है जो अनुद्विग्न है, शांत है। तुम्हें पता होगा कि क्रोध परिधि पर है; बुखार की तरह वह वहां है। परिधि कांप रही है। परिधि अशांत है। लेकिन तुम उसके दृष्टा हो। और यदि तुम उसके द्रष्टा हो सके तो तुम अनुद्विग्न रहोगे। तुम उसके साक्षी हो जाओ, और तुम शांत हो जाओगे। वहाँ शांत बिंदु ही तुम्हारा मूलभूत मन है मूलभूत मन अशांत नहीं हो सकता। वह कभी अशांत नहीं होता है। लेकिन तुमने उसे कभी देखा नहीं है। जब क्रोध होता है तो तुम्हारा उससे तादात् म्य हो जाता है। तुम भूल जाते हो कि क्रोध तुमसे भिन्न है, पृथक है। तुम उससे एक हो जाते हो; और तुम उसके द्वारा सक्रिय हो जाते हो, कुछ करने लगते हो। और तब दो चीजें संभव है। तुम क्रोध में किसी के प्रति, क्रोध के विषय के प्रति हिंसात्मक
हो सकते हो; लेकिन तब तुम दूसरे की और गति कर गए। क्रोध ने तुम्हारे और दूसरे के बीच जगह ले ली। यहां मैं हूं जिसे क्रोध हुआ है, फिर क्रोध है ओ वहां तुम हो, मेरे क्रोध का विषय। क्रोध से मैं दो आयामों में यात्रा कर सकता हूं। या तो मैं तुम्हारी तरफ जा सकता हूं, अपने क्रोध के विषय की तरफ। तब तुम जिसने मेरा अपमान किया, मेरी चेतना के केंद्र बन गए; तब मेरा मन तुम पर केंद्रित हो गया। यह ढंग है क्रोध से यात्रा करने का। दूसरा ढंग है कि तुम अपनी और स्वयं की और यात्रा करो। तुम उस व्यक्
ति की और नहीं गति करते जिसने तुम्हें क्रोध करवाया। बल्कि उस व्यक्ति की तरफ जाते हो जो क्रोध अनुभव करता है। तुम विषय की और न जाकर विषयी की और गति करते हो। साधारणत: हम विषय की और ही बढ़ते है। और विषय की और बढ़ने से मन का धूल-भरा हिस्सा उत्तेजित और अशांत हो जाता है। और तुम्हें अनुभव होता है की मैं अशांत हूं। अगर तुम भीतर की और मुड़ो अपने केंद्र की और मुड़ो, तो तुम धूल वाले हिस्से के साक्षी हो जाओगे। तब तुम देख सकोगे। कि धूल वाला हिस्सा तो अशांत है, लेकिन मैं अशांत नहीं हूं। और तुम किसी भी इच् छा के साथ किसी भी अशांति के साथ यह लेकर प्रयोग कर सकते हो।

तुम्हारे मन में कामवासना उठती है; तुम्हारा सारा शरीर उससे अभिभूत हो जाता है। अब तुम काम विषय की और अपनी वासना के विषय की और जा सकते हो। चाहे वह वास्तव में वहां हो या न हो। तुम कल्पना में भी उसकी तरफ यात्रा कर सकते हो। लेकिन तब तुम और ज्यादा अशांत होते जाओगे। तुम अपने केंद्र से जितनी दूर निकल जाओगे उतने ही अधिक अशांत होते जाओगे। सच तो यह है कि दूरी और अशांति होगे और केंद्र के जितनी करीब होगे उतने कम अशांत होगे। ओर अगर तुम ठीक केंद्र पर हो तो कोई अशांति नहीं है। हर तूफान के बीचो बीच एक केंद्र होता है। जो बिलकुल शांत रहता है; वैसे की क्रोध के तूफान के केंद्र पर, काम के तूफान के केंद्र पर, किसी भी वासना के तूफान के केंद्र—ठीक केंद्र पर कोई तूफान नहीं होता। और कोई भी तूफान शांत केंद्र के बिना नहीं हो सकता; वैसे ही क्रोध भी तुम् हारे उस अंतरस्थ के बिना नहीं हो सकता जो क्रोध के पार है। यह स्मरण रहे, कोई भी चीज अपने विपरीत तत्व के बिना नहीं हो सकती। विपरीत जरूरी है; उसके बिना किसी भी चीज होने की संभावना नहीं है। यदि तुम्हारे भीतर कोई स्थिर केंद्र न हो तो गति असंभव है। यदि तुम्हारे भीतर शांत केंद्र न हो तो अशांति असंभव है। इस बात का विश्लेषण करो, इसका निरीक्षण करो। अगर तुम्हारे भीतर
परम शांति का कोई केंद्र न होता तो तुम कैसे जानते कि मैं अशांत हूं? तुम्हें तुलना करनी चाहिए, तुलना के लिए दो बिंदू चाहिए। मान लो कि कोई व्यक्ति बीमार है। वह व्यक्ति बीमारी अनुभव करता
है; क्योंकि उसके भीतर कहीं कोई बिंदू है, जहां परम स्वास्थ विराजमान है। इससे ही वह तुलना कर सकता है। तुम कहते हो कि मुझे सिरदर्द है; लेकिन तुम कैसे जानते हो कि यह दर्द है, सिरदर्द है? अगर तुम ही सिरदर्द होते तो तुम इसे कैसे जान सकते थे। अवश्य ही तुम कुछ और हो। कोई और हो। तुम द्रष्टा हो। साक्षी हो। जो कहता है कि मुझे सिरदर्द है। इस दर्द को वही अनुभव कर सकता है जो खुद दर्द नहीं है। अगर तुम बीमार हो, ज्वर ग्रस्त हो तो तुम उसे अनुभव कर सकते हो। क्योंकि तुम ज्वर नहीं हो। खुद ज्वर को नहीं अनुभव कर सकता है; कोई चाहिए जो उसके पार हो। विपरीत जरूरी है। जब तुम क्रोध में हो और अगर तुम महसूस करते हो कि मैं क्रोध में
हूं तो उसका अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कोई बिंदू है जो अब भी शांत है और जो साक्षी हो सकता है। यह बात दूसरी है कि तुम इस बिंदू को नहीं देखते हो। तुम इस बिंदू पर अपने को कभी नहीं देखते हो। यह एक अलग बात है। लेकिन वह सदा अपनी मौलिक शुद्धता में वहां मौजूद है।
यह सूत्र कहता है: ‘’तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।‘’
तुम क्या करते हो? यह विधि दमन के पक्ष में नहीं है। यह विधि यह नहीं कहती है कि जब क्रोध आए तो उसे दबा दो और शांत हो जाओ। नहीं, अगर दमन करोगे तो तुम ज्यादा अशांति निर्मित करोगे। अगर क्रोध हो और उसे दबाने का प्रयत्न भी साथ-साथ हो तो उससे अशांति दुगुनी हो जाएगी। नहीं; जब क्रोध आए तो द्वार दरवाजे बंद कर लो और क्रोध पर ध्यान करो। क्रोध को होने दो; तुम अनुद्विग्न रहो और क्रोध का दमन मत करो। दमन करना आसान है; प्रकट करना भी आसान है। और हम दोनों करते है।
अगर स्थिति अनुकूल हो तो हम क्रोध को प्रकट कर देते है। अगर उसकी सुविधा हो, अगर तुम्हें खुद कोई खतरा नहीं हो तो तुम क्रोध को अभिव्यक्त कर दोगे। अगर तुम दूसरे को चोट पहुंचा सकते हो और दूसरा बदले में तुम पर चोट कर सकता है। तो तुम अपने क्रोध को खुली छूट दे दोगे। और अगर क्रोध को प्रकट करना खतरनाक हो, अगर दूसरा तुम्हें ज्यादा चोट कर सकने में समर्थ हो, अगर वह तुम्हारा मालिक हो या तुमसे ज्यादा बलवान हो, तो तुम क्रोध को दबा दोगे। अभिव्यक्ति और दमन सरल है; साक्षी कठिन है। साक्षी न अभिव्यक्ति

है और न दमन; वह दोनों में कोई नहीं है। वह अभिव्यक्ति नहीं है। क्योंकि तुम उसे दूसरे पर नहीं प्रकट कर रहे हो। तुम उसका दमन भी नहीं करते। तुम उसे शून्य में विसर्जित कर रहे हो। तुम उस पर ध्यान कर रहे हो। किसी आईने के सामने खड़े हो जाओ और अपने क्रोध को प्रकट करो—और उसके साक्षी बने रहो। तुम अकेले हो, इसलिए तुम उस पर ध्यान कर सकते हो। तुम जो भी करना चाहो करो, लेकिन शून्य में करो। अगर तुम किसी को मारना पीटना चाहते हो तो खाली आकाश के साथ मार-पीट करो। अगर क्रोध करना चाहते हो तो क्रोध करो; अगर चीखना चाहते हो तो चीखो। लेकिन सब अकेले में करो। और अपने को उस केंद्र बिंदू की भांति स्मरण रखे जो यह सब नाटक देख रहा है। तब यह एक साइको ड्रामा बन जाएगा। और तुम उस पर हंस सकते हो। वह तुम् हारे लिए गहरा रेचन बन जाएगा। और न केवल तुम्हारा क्रोध विसर्जित हो जाएगा, बल्कि तुम उससे कुछ फायदा उठा लोगे। तुम्हें एक प्रौढ़ता प्राप् त होगी; तुम एक विकास को उपलब्ध होओगे। और अब तुम्हें पता होगा कि जब तुम क्रोध में भी थे तो कोर्इ था जो शांत था। अब इस केंद्र को अधिकाधिक उघाड़ते जाओ। और वासना की अवस्थ में इस केंद्र को उघाड़ना आसान है। इसीलिए तंत्र वासना के विरोध में नहीं है। वह कहता है: वासना में उतरो, लेकिन उस केंद्र को स्मरण रखो जो शांत है। तंत्र कहता है कि इस प्रयोग के लिए कामवासना का भी उपयोग किया जा सकता है। काम-कृत्य में उतरो लेकिन अनुद्विग्न रहो, शांत रहो। और साक्षी रहो। गहरे में दृष्टा बने रहो। जो भी हो रहा है वह परिधि पर हो रहा है और तुम केवल देखने वाले हो, दर्शक हो। वह विधि बहुत उपयोगी हो सकती है, और इससे तुम्हें बहुत लाभ हो सकता
है। लेकिन यह कठिन होगा। क्योंकि जब तुम अशांत होते हो तो तुम सब कुछ भूल जाते हो। तुम यह भूल जाते हो कि मुझे ध्यान करना है। तो फिर इसे इस भांति प्रयोग करो। उस क्षण के लिए मत रुको जब तुम्हें क्रोध होता है। उस क्षण के लिए मत रुको। अपना कमरा बंद करो और क्रोध के किसी अतीत अनुभव को स्मरण करो जिसमें तुम पागल ही हो गए थे। उसे स्मरण करो और फिर से उसका अभिनय करो। यह तुम्हारे लिए सरल होगा। उस अनुभव को फिर से अभिनीत करो, उसे फिर
से जाओ। शायद तुम्हें पता न हो कि मन टेप-रिकार्डिंग यंत्र जैसा है। अब तो वैज्ञानिक कहते है, अब तो यह वैज्ञानिक तथ्य है कि अगर तुम्हारे स् मृति केंद्रों को इलेक्ट्रोड्स से छुआ जाए तो वे केंद्र फिर से संग्रहीत अनुभवों को दोहराने लगते है। उदाहरण के लिए तुमने कभी क्रोध किया और वह घटना तुम्हारे मन में टेप-रिकार्डर पर रिकार्ड है; ठीक उसी अनुक्रम में वह रिकार्ड है जिस अनुक्रम में वह घटित हुई थी। अगर उसे इलेक्ट्रोड्स से छूओगे तो वह घटना पुन: जीवंत होकर दोहराने लगेगी। तुम् हें वही-वहीं भाव फिर से होंगे जो क्रोध करते समय हुए थे। तुम्हारी आंखे लाल हाँ जाएगी। तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा। ज्वरग्रस्त हो जाएगा। पूरी कहानी फिर दोहरेगी। और ज्यों ही इलेक्ट्रोड को वहां से हटाओगे, नाटक बंद हो जायेगा। पूरी कहानी फिर दोहरेगी। यदि तुम उसे फिर ऊर्जा देते हो, वह फिर बिलकुल शुरू से चालू हो जाता है। अब वे कहते है कि मन एक रिकार्डिंग मशीन है और तुम किसी भी अनुभव
को दोहरा सकते हो। लेकिन स्मरण ही मत करो, उसे फिर से जीओं। अनुभव को फिर जीना शुरू
करो और मन उसे पकड़ लेगा। वह घटना वापस लौट आयेगी। और तुम उसे फिर जीओगे। और इसे पुन: जीते हुए अनुद्विग्न रहो, शांत रहो। अतीत से शुरू करो। और यह सरल है। क्योंकि अब यह नाटक है। यह यथार्थ स्थिति नहीं है। और अगर तुम यह करने में समर्थ हो गए तो जब सच ही क्रोध की स्थित पैदा होगी। तुम उसे भी कर सकोगे। और यह प्रत्येक कामना के साथ किया जा सकता

है। प्रत्येक कामना के साथ किया जाना चाहिए। अतीत के अनुभवों को फिर से जीना बड़े काम का है। हम सब के मन में
घाव है; ऐसे घाव है जो अभी भी हरे है। अगर तुम उन्हें फिर से जी लोगे तो तुम निर्भार हो जाओगे। अगर तुम अपने अतीत में लोट सके और अधूरे अनुभवों को जी सके तो तुम अपने अतीत के बोझ से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारा मन ताजा हो जाएगा। धूल झड़ जायेगी। अपने अतीत में से कोई अनुभव स्मरण करो जो तुम्हारे देखे अधूरा पडा
है। तुम किसी की हत्या करना चाहते थे। तुम किसी को प्रेम करना चाहते थे। तुम यह या वह करना चाहते थे। लेकिन वे सारे काम अपूर्ण रह गए अधूरे रह गये। ओ वह अधूरी चीज तुम्हारे मन के आकाश में बादल की भांति मँडराती रहती है। वह तुम्हें और तुम्हारे कृत्यों को सदा प्रभावित करती रहती है। उस बादल को विसर्जित करना होगा। तो उसके काल पथ को पकड़कर मन में पीछे लोटों और उन कामनाओं को फिर से जीओं जो अधूरी रह गई है। उन घावों को फिर से जीओं जो अभी भी हरे है। वे घाव भर जाएंगे। तुम स्वस्थ हो जाओगे। और इस प्रयोग के द्वारा तुम्हें एक झलक मिलेगी। कि कैसे किसी अशांत स् थिति में शांत रहा जाए।
‘’तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न करो।‘’ गुरजिएफ ने इस विधि का खूब प्रयोग किया है। वह इसके लिए परिस् थितियां निर्मित करता था। लेकिन परिस्थितियां निर्मित करने के लिए समूह जरूरी है। आश्रम जरूरी है। तुम अकेले यह नहीं कर सकते। फाउंटेन ब्लू में गुरजिएफ ने एक आश्रम बनाया था और वह बड़ा कुशल गुरु था जो जानता था कि स्थिति कैसे निर्मित की जाती है।
तुम किसी कमरे में प्रवेश करते हो जहां एक समूह पहले से बैठा है।
तुम कमरे में प्रवेश करते हो और तभी कुछ किया जाता है। जिससे तुम क्रोधित हो जाते हो। और वह चीज इस स्वाभाविक ढंग से की जाती है कि तुम् हें कभी कल्पना भी नहीं होती कि यह परिस्थिति तुम्हारे लिए निर्मित की जा रही है। यह एक उपाय था। कोई व्यक्ति कुछ कहकर तुम्हें अपमानित कर देता है। और तुम अशांत हो जाते हो। और फिर हर कोई उस अशांति को बढ़ावा देता है। और तुम पागल हो जाते हो। और जब तुम ठीक विस्फोट के बिंदू पर पहुंचते हो तो गुरूजिएफ चिल्लाकर कहता है: स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो।
ऐसी परिस्थिति निर्मित की जा सकती है। लेकिन केवल वहीं जहां अनेक
लोग अपने ऊपर काम कर रहे हो। और जब गुरूजिएफ चिल्लाकर कहता कि स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो; तो तुम जान जाते हो कि यह परिस्थिति पहले से तैयार कि गई थी। लेकि अब तुम्हारा उद्विग्न, तुम्हारी अशांति इतनी शीध्रता से, इतनी जल्दी मिटने नहीं वाली है। इस अशांति की जड़ें तुम्हारे शरीर में है। तुम्हारी ग्रंथियों ने तुम्हारे रक्त में जहर छोड़ दिया है। तुम्हारा शरीर उससे प्रभावित है। क्रोध इतनी शीध्रता से नहीं जाने वाला है। अब जबकि तुम्हें पता हो गया है कि मुझे धोखा दिया गया है। कि किसी ने सच ही मुझे अपमानित नहीं किया है। तो भी तुम कुछ नहीं कर सकते। क्रोध जहां का तहां है; तुम्हारे शरीर क्रोध की स्थिति में है। लेकिन एक बात होती है। कि अचानक तुम्हारा ज्वर भीतर शांत होने लगता है। क्रोध अब सिर्फ शरीर पर परिधि पर है। केंद्र पर तुम अचानक शीतल होने लगते हो। और अब तुम जानते हो कि मेरे भीतर एक बिंदू है जो अनुद्विग्न है, शांत है। और तुम हंसने लगते हो। अभी भी तुम्हारी आंखें क्रोध से लाल है, तुम्हारा चेहरा पशुवत हिंसक बना हुआ है। लेकिन तुम हंसने लगते हो। अब तुम्हें दो चीजें पता है; एक अनुद्विग्न केंद्र और दूसरी उद्विग्न परिधि। तुम एक दूसरे के लिए सहयोगी हो सकते हो। तुम्हारा परिवार ही आश्रम

बन सकता है; तुम एक दूसरे की मदद कर सकते हो। मित्र अपने परिवार से बात करके तय कर सकते हो कि पिता के लिए या मां के लिए एक परिस्थिति पैदा की जाए; और पूरा परिवार उस परिस्थिति के पैदा करने में हाथ बँटाता है। जब मां या पिता पूरी तरह विक्षिप्त हो जाते है तब सब हंसने लगते है। और कहते है: बिलकुल अनुद्विग्न रहो। तुम परस्पर एक दूसरे की मदद कर सकते हो।
और यह अनुभव बहुत अद्भुत है। जब तुम्हें किसी उतेजित परिस्थिति
के भीतर एक शीतल केंद्र का पता चल जाए तो तुम उसे भूल नहीं सकते। और तब तुम किसी भी तरह की अशांत परिस्थिति में उसे स्मरण कर सकते हो, उसे पुन: उपलब्ध कर सकते हो। पशिचम में अब एक विधि का, चिकित्सा विधि का प्रयोग हो रहा है। जिसे
वे साइकोड्रामा कहते है। वह सहयोगी है और इसी तरह की विधियों पर आधारित है। इस साइकोड्रामा में तुम एक अभिनय करते हो, एक खेल खेलते हो। शुरू में तो वह खेल ही है; लेकिन देर अबेर तुम उसके वशीभूत हो जाते हो। और जब तुम वशीभूत होते हो, आविष्ट होते हो तो तुम्हारा मन सक्रिय हो जाता है। क्योंकि तुम्हारे शरीर और मन स्वचलित ढंग से काम करते है। वे स्वचलित व्यवहार करते है। तो साइकोड्रामा में व्यक्ति क्रोध की स्थिति में सचमुच क्रोधित
हो जाता है। तुम सोच सकते हो कि वह अभिनय कर रहा है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। संभव है कि वह सच में ही क्रोधित हो गया हो; केवल अभिनय ही न कर रहा हो। वह कामना के वश में है, उद्वेग के वश में है, भाव के वश में है। और जब वह सच में उनके आविष्ट होता है तभी उसका अभिनय यर्थाथ मालूम पड़ता है। तुम्हारे शरीर को नहीं पता हो सकता कि तुम अभिनय कर रहे हो या सच
में कर रहे हो। तुमने अपने जीवन में कभी देखा होगा कि तुम क्रोध का केवल अभिनय कर रहे थे और तुम्हारे अनजाने ही क्रोध सच बन गया। या कि तुम उतेजित नहीं थे, सिर्फ पत्नी या प्रेमिका के साथ खेल कर रहे थे। कि अचानक और अनजाने सारा खेल सच हो गया। शरीर उसे पकड़ लेता है। और शरीर को धोखा दिया जा सकता है। शरीर नहीं जान सकता, विशेषकर कामवासना के प्रसंग में कि वह सच है या अभिनय। तुम कल्पना भी करते हो तो शरीर सोचता है कि वह सच है।
काम केंद्र शरीर का सबसे अधिक कल्पनात्मक केंद्र है। सिर्फ कल्
पना से तुम काम के शिखर अनुभव को आर्गाज्म को उपलब्ध हो सकते हो। शरीर नहीं जान सकता कि क्या सच है और क्या झूठ। जब तुम कुछ करने लगते हो तो शरीर सोचता है कि यह सच ओर वह वैसा व्यवहार करने लगता है। साइकोड्रामा ऐसी विधियों पर आधारित है। तुम क्रोधित नहीं हो, सिर्फ क्रोध का अभिनय कर रहे हो। और फिर उससे आविष्ट हो जाते हो। लेकिन साइकोड्रामा सुंदर है। क्योंकि तुम जानते हो कि मैं महज अभिनय कर रहा हूं। और तब परिधि पर क्रोध यथार्थ हो जाता है और ठीक उसके पीछे तुम छिपकर उसका निरीक्षण कर रहे होते हो। तुम जानते हो कि मैं उद्विग्न नहीं हूं। लेकिन क्रोध है, उद्वेग है, अशांति है। यह दो ऊर्जाओं का युगपत काम करने का अनुभव तुम्हें उनके अतिक्रमण में ले जाता है। और फिर असली क्रोध में भी तुम उसे अनुभव कर सकते हो। जब तुमने जान लिया कि उसे कैसे अनुभव किया जाए तुम वास्तविक स्थितियों में भी अनुभव कर सकते हो। इस विधि का प्रयोग करो; यह तुम्हारे समग्र जीवन को बदल देगी। और जब तुमने अनुद्विग्न रहना सीख लिया तो संसार तुम्हारे लिए दुःख न रहा। तब कुछ भी तुम्हें भ्रांत नहीं कर सकता है। तब कुछ भी तुम्हें सच में पीड़ित नहीं कर सकता। अब तुम्हारे लिए कोई दुःख न रहा। और तब तुम एक और काम कर सकत हो। गुरजिएफ यह करता था। वह किसी भी

क्षण अपना चेहरा, अपनी मुख मुद्रा बदल सकता था। वह हंस रहा है, मुस्कुरा रहा है। तुम्हारे साथ बैठकर प्रसन्न है। और अचानक वह बिना किसी कारण के ही क्रोधित हो जाएगा। और कहते है कि हव इस कला में इतना निष्णात हो गया था कि वह एक साथ अपने आधे चेहरे से क्रोध और दूसरे आधे चेहरे से मुस् कुराहट प्रकट कर सकता था। अगर उनके दोनों चेहरे के आस पास व्यक्ति बैठे हो तो वह उसे अलग-अलग ही रूप में देखेंगे। एक व्यक्ति कहेगा कि गुरजिएफ कितना सुंदर आदमी है। और दूसरा व्यक्ति कहेगा कि वह बहुत खराब है। वह एक साथ एक को हंसकर देखता था और दूसरे को गुस्से से। एक बार तुम अपने केंद्र को परिधि से पूरी तरह पृथक करने की विधि का अनुभव कर लो। दोनों अतियां वहां है—विपरीत अतियां। एक बार तुम्हें इन अतियों को बोध हो जाए तो पहली दफा तुम अपने मालिक हुए। अन्यथा दूसरे मालिक है। तुम खुद गुलाम हो। तुम्हारी पत्नी जानती है तुम्हारा बाप जानता है। तुम्हारे बेटे जानते है। तुम्हारे दोस्त जानते है। कि तुम् हें कब हिलाया जा सकता है। तुम्हें कैसे अंशत किया जा सकता है, तुम्हें कैसे खुश किया जा सकता है।
और जब दूसरा तुम्हें सुखी और दुःखी कर सकता है तो तुम मालिक नहीं
हो सकते। तुम गुलाम ही हो। कुंजी दूसरे के हाथ में है; बस उसकी एक भाव भंगिमा तुम्हें दुःखी बना सकती है; उसकी एक मुस्कुराहट तुम्हें सुख से भर सकती है। तो तुम दूसरे की मर्जी पर हो; दूसरा तुम्हारे साथ कुछ भी कर सकता है। और अगर यही स्थिति है तो तुम्हारी सब प्रतिक्रियाएँ बसा प्रतिक्रियाएँ है। उन्हें क्रियाएं नहीं कहा जा सकता है। तुम सिर्फ प्रतिक्रियाँ करते हो, क्रिया नहीं। कोई तुम्हारा अपमान करता है और तुम क्रोधित हो जाते हो। कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम मुस्कुराने लगते हो। फूकर कुप्पा हो जाते हो। तो यह प्रतिक्रिया है, क्रिया नहीं। बुद्ध एक गांव से गुजर रहे थे। कुछ लोग उनके पास इकट्ठे हो गए; वे
सब उनके विरोध में थे। उन्होंने बुद्ध का अपमान किया, उन्हें गालियां दीं। बुद्ध ने सब सुना। और फिर कहा; मुझे समय पर दूसरे गांव पहुंचना है। तो क्या मैं अब आगे जा सकता हूं। अगर तुमने वह सब कह लिया जा कहने वाले थे। अगर बात खत्म हो गई तो में जाऊं। और यदि कुछ कहने को शेष रह गया हो तो मैं लोटते हुए यहां रूकुंगा, तब तुम आ जाना और कह देना।
वे लोग तो चकित रह गए। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया1 वे तो उनका अपमान कर रहे थे। उन्हें गालियां दे रहे थे। तो उन्होंने कहा कि हमें कुछ कहना नहीं है। हम तो बस आपका अपमान कर रहे है। आपको गालियां दे रहे है।
बुद्ध ने कहा: तुम वह कर सकते हो। लेकिन यदि तुम्हें मेरी प्रतिक्रिया की अपेक्षा है तो तुम देरी करके आए। दस वर्ष पूर्व तुम अगर ये शब्द लेकर आए होते तो मैं प्रतिक्रिया करता। लेकिन अब में क्रिया करना सीख गया हूं। मैं अब अपना मालिक हो गया हूं। अब तुम मुझे कुछ करने को मजबूर नहीं कर सकते हो। तुम लौट जाओ। तुम अब मुझे विचलित नहीं कर सकते हो। मुझे अब कुछ भी अशांत नहीं कर सकता है। मैनें अपने केंद्र को जान लिया है। केंद्र का यह ज्ञान या केंद्र में प्रतिष्ठित होना तुम्हें अपना मालिक बना देता है। अन्यथा तुम गुलाम हो। एक ही मालिक के नहीं, अनेक मालिकों के गुलाम। तब हर कोई तुम्हारा मालिक है, और तुम सारे जगत के गुलाम हो। निश्चित ही तुम पीड़ा में, दुःख में रहोगे। इतने मालिक और वे इतनी दिशाओं में तुम्हें खिंचेंगी। कि तुम अखंड न रह सकोगे। एक न रह सकोगे। और इतने आयामों में खींचे जाने के कारण तुम संताप में रहोगे। वही व्यक्ति संताप का अतिक्रमण कर सकता है जो अपना स्वामी है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—58 (ओशो)

साक्षित्व की दूसरी विधि--

‘’यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।‘’ यह सारा संसार ठीक एक नाटक के समान है, इसलिए इसे गंभीरता से मत लो। गंभीरता तुम्हें उपद्रव में डाल देगी। तुम मुसीबत में पड़ोगे। इसे गंभीरता से मत लो। कुछ गंभीर नहीं है। सारा संसार एक नाटक मात्र है। अगर तुम सारे जगत को नाटक की तरह देख सको तो तुम अपनी मौलिक चेतना को पा लोगे। उस पर धूल जमा हो जाती है। क्योंकि तुम अति गंभीर हो। यह गंभीरता ही समस्या पैदा करती है। और हम इतने गंभीर है कि नाटक देखते हुए भी हम धूल जमा करते रहते है। किसी सिनेमाघर में जाओ और दर्शकों को देखो। फिल्म को मत देखो, फिल्म को भूल जाओ पर्दे की तरफ मत देखो, हाल में जो दर्शक है उन्हें देखो। कोई रो रहा होगा। कोई हंस रहा होगा। किसी की कामवासना उत्तेजित हो रही होगी। सिर्फ लोगो को देखो। वे क्या कर रहे है। उन्हें क्या हो रहा है। पर्दे पर छाया- चित्रों के सिवाय कुछ भी नहीं है—धूप छांव का खेल है। पर्दा खाली है। लेकिन वे उत्तेजित क्यों हो रहे है?
वे हंस रहे है, वे रो रहे है। चित्र मात्र चित्र नहीं है; फिल्म मात्र फिल्म नहीं है। वे भूल गये है कि यह एक कहानी है। उन्होंने इसको गंभीरता से ले लिया है। चित्र जीवित हो उठा है, यर्थाथ हो गया है। और यही चीज सर्वत्र घट रही है। यह सिनेमाघरों तक ही सीमित नहीं है। अपने चारों और के जीवन को तो देखो; क्या है? इस धरती पर असंख्य लोग रह चूके है। जहां तुम बैठे हो वहां कम सक कम दस लाशों की कब्र है। और वे लोग भी तुम्हारे जैसे ही गंभीर थे। वे अब कहां है? उनका जीवन कहां चला गया? उनकी समस्याएं कहा गई? वे लड़ते थे, एक-एक इंच जमीन के लिए, वह जमीन पड़ी रह गई और वे लोग कही नहीं है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उनकी समस्याएं-समस्याएं नहीं थी। वे थीं; जैसे तुम्हारी समस्याएं-समस्याएं है। लेकिन कहां गई वह समस्याएं? और अगर किसी दिन पूरी मनुष्यता खो जाए तो भी धरती रहेगी। वृक्ष रहेगें । नदिया रहेगी। और सूरज इसी तरह से उगेगा। और पृथ्वी को मनुष्य की गैर-मौजूदगी पर न कोई खेद होगा। न आश्चर्य। जरा इस विस्तार पर अपनी निगाह को दौडाओं। पीछे देखो, आगे देखो; सभी आयामों को देखा और देखो कि तुम क्या हो। तुम्हारा जीवन क्या है? सब कुछ एक बड़ा स्वप्न जैसा मालूम पड़ेगा। और हर चीज जिसे तुम इस क्षण इतनी गंभीरता से ले रहे हो, अगले क्षण ही व्यर्थ हो जाती है। तुम्हें उसकी याद भी नहीं रहती। अपने प्रथम प्रेम को स्मरण करो। कितनी गंभीर बात थी वह, जैसे कि जीवन ही
उस पर निर्भर करता है। और अब वह तुम्हें स्मरण भी नहीं है। बिलकुल भूल गया है। वैसे ही वे चीजें भी भूल जाएंगी जिन पर तुम आज अपने जीवन को निर्भर समझते हो। जीवन एक प्रवाह है, वहां कुछ भी नहीं टिकता है। जीवन भागती फिल्म की भांति है। जिसमें हर चीज दूसरी चीज में बदल रहा है। लेकिन इस क्षण वह तुम्हें बहुत गंभीर बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। और तुम उद्विग्न हो जाते हो। वह विधि कहती है: ‘’यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।‘’ भारत में हम इस जगत को परमात्मा की सृष्टि नहीं कहते, हम उसे लीला कहते
है। यह लीला की धारणा बहुत सुंदर है। सृष्टि की धारणा गंभीर मालूम पड़ती है। ईसाई और यहूदी ईश्वर बहुत गंभीर है। एक अवज्ञा के लिए आदम को अदन के बग़ीचे से निकाल दिया गया। वह हमारा पिता था; और हम सब उसके कारण दुःख में पड़े है। ईश्वर बहुत गंभीर मालूम पड़ता है। उसकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिए। और अगर अवज्ञा होगी

तो वह बदला लेगा। और उसका प्रतिशोध अभी तक चला आ रहा है। प्रतिशोध के मुकाबले में पाप इतना बड़ा नहीं लगता है। सच तो यह है कि आदम ने परमात्मा की बेवकूफी के चलते यह पाप किया। परम पिता परमात्मा ने आदम से कहा कि ज्ञान के वृक्ष के पास मत जाना और उसका फल मत खाना। यह निषध ही निमंत्रण बन गया। वह मनोवैज्ञानिक है। उसे बड़े बग़ीचे में केवल ज्ञान का वृक्ष आकर्षण हो गया। क्योंकि वह निषिद्ध था। कोई भी मनोवैज्ञानिक कहेगा कि भूल परमात्मा की थी। अगर उस वृक्ष के फल को नहीं खाने देना था तो उसकी चर्चा ही नहीं करना थी। तब आदम उस वृक्ष तक कभी नहीं जाता और मनुष्यता अभी भी उसी बग़ीचे में रहती होती। लेकिन इस वचन ने, इस आज्ञा ने कि ‘मत खाना’ सारा उपद्रव खड़ा कर दिया। इस निषेध ने उपद्रव पैदा किया। क्योंकि आदम ने अवज्ञा की, वह स्वर्ग से निकाल बहार किया गया। और प्रतिशोध कितना बड़ा है।
ईसाई कहते है कि जीसस हमें हमारे पाप से उद्भार दिलाने के लिए, हमें आदम
के किए पाप से मुक्त करने लिए सूली पर चढ़ गये। तो ईसाइयों की इतिहास की पूरी धारणा दो व्यक्तियों पर निर्भर है। आदम और जीसस पर। आदम को क्षमा दिलाने के लिए सब यंत्रणा झेली। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि ईश्वर ने अब भी क्षमादान दिया हो। जीसस को तो सूली लग गई। लेकिन मनुष्यता अब भी उसी भांति दुःख में है। पिता के रूप में ईश्वर की धारणा ही गंभीर है, कुरूप है। ईश्वर की भारतीय धारण स्त्रष्टा की नहीं, लीलाधर की है। वह गंभीर नहीं है। वह खेल-खेल रहा है। नियम नहीं है। लेकिन वह खेल के नियम है। उनके संबंध में गंभीर होने की जरूरत नहीं है। कुछ पाप नहीं है। भूल भर है। और तुम भूल के कारण कष्ट में पड़ते हो। परमात्मा तुम्हें दंडित नहीं कर रहा है। लीला की पूरी धारणा जीवन को एक नाटकीय रंग दे देती है। जीवन एक लंबा नाटक हो जाता है। और यह विधि इसी लीला की धारणा पर आधारित है। ‘’यह तथाकथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने
के लिए उसे वैसा ही देखो।‘’ अगर तुम दुःखी हो तो इसलिए कि तुमने जगत को बहुत गंभीरता से लिया है। और सुखी होने का कोई उपाय मत खोजों, सिर्फ अपनी दृष्टि को बदलों। गंभीर चित से तुम सुखी नहीं हो सकते। उत्सव मनाने वाला चित ही सुखी हो सकता है। इस पूरे जीवन को एक नाटक, एक कहानी की तरह लो ऐसा ही है। और अगर तुम उसे इस भांति ले सके तो तुम दुःखी नहीं होगे। दुःख अति गंभीरता का परिणाम है। सात दिन के लिए यह प्रयोग करो। सात दिन तक एक ही चीज स्मरण रखो। कि सारा
जगत नाटक है। और तुम वही नहीं रहोगे। जो अभी हो। सिर्फ सात दिन के लिए प्रयोग करो। तुम्हारा कुछ खो नहीं जाएगा। क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए भी तो कुछ चाहिए। तुम प्रयोग कर सकते हो। सात दिन के लिए सब कुछ नाटक समझो। तमाशा समझो।
इन सात दिनों में तुम्हें तुम्हारे बुद्ध स्वभाव की, तुम्हारी आंतरिक पवित्रता की अनेक झलकें मिलेंगी। और इस झलक के मिलने के बाद तुम फिर वही नहीं रहोगे। जो हो। तब तुम सुखी रहोगे। और तुम सोच भी नहीं सकते कि यह सुख किस तरह का होगा। क्योंकि तुमने कोई सुख नहीं जाना। तुमने सिर्फ दुःख की कम-अधिक मात्राएं जानी है। कभी तुम ज्यादा दुःखी थे, और कभी कम। तुम नहीं जानते हो कि सुख क्या है। तुम उसे नहीं जान सकते हो। जब तुम्हारी जगत की धारणा ऐसी है कि तुम उसे बहुत गंभीरता से लेते हो तो तुम नहीं जान सकते कि सुख क्या हे। सुख भी तभी घटित होता है। जब तुम्हारी यह धारणा दृढ़ होती है। कि यह जगत केवल एक लीला है।
इस विधि को प्रयोग में लाओ। और हर चीज को उत्सव की तरह लो, हर चीज को उत्
सव मनाने के भाव से करो। ऐसा समझो कि यह नाटक है। कोई असली चीज नहीं है। अगर अपने संबंधों को खेल बना लो बेशक खेल के नियम है; खेल के लिए नियम जरूरी है। विवाह नियम है। तलाक नियम है। उनके बारे में गंभीर मत होओ। वे नियम है और एक नियम को जन्म देता है। लेकिन उन्हें गंभीरता से मत लो फिर देखो कि कैसे तत्काल तुम्हारे जीवन का गुणधर्म बदल जाता है। आज रात अपने घर जाओ और अपनी पत्नी या पति या बच्चों के साथ ऐसे व्यवहार
करो जैसे कि तुम किसी नाटक में भूमिका निभा रहे हो। और फिर उसका सौंदर्य देखो अगर। तुम भूमिका निभा रहे हो तो तुम उसमे कुशल होने की कोशिश करोगे। लेकिन

उद्विग्न नहीं होगे। उसी कोई जरूरत नहीं है। तुम अपनी भूमिका निभा कर सोने चले जाओगे। लेकिन स्मरण रहे कि यह अभिनय है। और सात दिन तक इसका सतत ख्याल रखे। तब तुम्हें सुख उपलब्ध होगा। और जब तुम जान लोगे कि क्या सुख है तो फिर दुःख में गिरने की जरूरत नहीं रही। क्योंकि यह तुम्हारा ही चुनाव है।

तुम दुःखी हो , क्योंकि तुमने जीवन के प्रति गलत दृष्टि चूनी है। तुम सुखी हो सकते हो। अगर दृष्टि सम्यक हो जाए। बुद्ध सम्यक दृष्टि को बहुत महत्व देते है। वे सम्यक दृष्टि को ही आधार बनाते है। बुनियाद बनाते है। सम्यक दृष्टि क्या है ? उसकी कसौटी क्या है ?

मेरे देखे कसौटी यह है : ''जो दृष्टि सुखी करे वह सम्यक दृष्टि है। और जो दृष्टि तुम्हें दुखी पीडित बनाए वह असम्यक दृष्टि है। और कसौटी बाह्य नहीं है। आंतरिक है। और कसौटी तुम्हारा सुख है।

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-37

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—59 ([illegible])

***[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]--
''[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]''***

प्रत्येक चीज ध्रुवीय है। अपने विपरीत के साथ है। और मन एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर डोलता रहता है। कभी मध्य में नहीं ठहरता।

क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न सुखी हो और न दुखी ? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न स्वास्थ थे न बीमार ? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न यह थे न वह। जब तुम ठीक माध्य में थे , ठीक बीच में थे ?

मन अविलंब एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर तुम सुखी हो तो देर -अबेर तुम दुःख की तरफ गति कर जाओगे। और शीध्र गति कर जाओगे। सुख विदा हो जाएगा। और तुम दुःख में हो जाओगे। अगर तुम्हें अभी अच्छा लग रहा है तो देर अबेर तुम्हें बुरा लगने लगेगा। और तुम बीच में कहीं नहीं रुकते , इस छोर से सीधे उस छोर पर चले जाते हो। घड़ी के पैंडुलम की तरह तुम बांए से दाएं और बाएं डोलते रहते हो। और पैंडुलम डोलता ही रहता है।

एक गुह्म नियम है। जब पैंडुलम बायी और जाता है तो लगता तो है कि बायी और जा रहा है। लेकिन सच में तब वह दायी और जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। और वैसे ही जब वह दायी और जा रहा है तो बायी और जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। तो जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जब तुम सुखी हो रहे हो तो तुम दुःखी होने के लिए शक्ति जुटा रहे हो। और जब तुम्हें हंसते देखता हूं तो जानता हूं कि रोने का क्षण दूर नहीं है।

भारत के गांवों में माताएं यह जानती है। जब कोई बच्चा बहुत हंसने लगता है तो वे कहती है कि उसका हंसना बंद करो , अन्यथा वह रोएगा। वह होने ही वाला है। अगर कोई बच्चा बेहद खुश हो तो उसका अगला कदम दुःख में पड़ने ही वाला है। इसलिए माताएं उसे रोकती है , अन्यथा वह दुःखी होगा।

लेकिन यही नियम विपरीत ढंग से भी लागू होता है। और लोग यह नहीं जानते है। कोई बच्चा रोता हे तो तुम उसे रोने से रोकते हो तो तुम उसका रोना ही नहीं रोकते हो , तुम उसका लगता कदम भी रोक रहे हो। अब वह सुखी भी नहीं हो पाएगा। बच्चा जब रोता है तो उसे रोने दो। बच्चा जब रोता है तो उसे मदद दो कि और रोंए। जब तक उसका रोना समाप्त होगा। वह शक्ति जुटा लेगा। वह सुखी हो सकेगा।

अब मनोवैज्ञानिक कहते है कि जब बच्चा रोता -चीखता हो तो उसे रोको

मत, उसे मनाओ मत, उसे बहलाओ मत। उसके ध्यान को रोने से हटाकर कहीं अन् यत्र ले जाने की कोशिश मत करो, उसे रोना बंद करने के लिए रिश्वत मत दो। कुछ मत करो; बस उसके पास मौन बैठे रहो और उसे रोने दो। चिल्लाने दो। तब वह आसानी से सुख की और गति कर पाएगा। अन्यथा न वह रो सकेगा। और न सुखी हो सकेगा।
हमारी यह स्थिति है। हम कुछ नहीं कर पाते है। हम हंसते है तो आधे
दिल से और रोते है तो आधे दिल से। लेकिन यही मन का प्राकृतिक नियम है; वह एक छोर से दूसरे छोर पर गति करता रहता है। यह विधि इस प्राकृतिक नियम को बदलने के लिए है। ‘’प्रिये, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान
को स्थिर करो।‘’ किन्हीं भी ध्रुवों को, विपरीतताओं को चुनो और उनके मध्य में स्
थित होने की चेष्टा करो। इस मध्य में होने के लिए तुम क्या करोगे। मध्य में कैसे होओगे?
एक बात कि जब दुख में होते हो तो क्या करते हो? जब दुःख आता है तो
तुम उससे बचना चाहते हो। भागना चाहते हो। तुम दुःख नहीं चाहते। तुम उससे भागना चाहते हो। तुम्हारी चेष्टा रहती हे कि तुम उससे विपरीत को पा लो। सुख को पा लो। आनंद को पा लो। और जब सुख आता है तो तुम क्या करते हो? तुम चेष्टा करते हो कि सुख बना रहे। ताकि दुःख न आ जाए; तुम उससे चिपके रहना चाहते हो। तुम सुख को पकड़कर रखना चाहते हो और दुःख से बचना चाहते हो। यही स्वाभाविक दृष्टिकोण है, ढंग है। अगर तुम इस प्राकृतिक नियम को बदलना चाहते हो, उसके पास जाना चाहते हो, तो जब दुःख आए तो उससे भागने की चेष्टा मत करो; उसके साथ रहो। उसको भोगो। ऐसा करके तुम उसकी पूरी प्राकृतिक व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर दोगे। तुम्हें सिरदर्द है; उसके साथ रहो। आंखें बंद कर लो और सरदर्द पर ध्यान करो, उसके साथ रहो। कुछ भी मत करो; बस साक्षी रहो। उससे भागने की चेष्टा मत करो। और जब सुख आए और तुम किसी क्षण विशेष रूप से आनंदित अनुभव करो तो उसे पकड़कर उससे चिपक मत जाओ। आंखें बंद कर लो और उसके साथ साक्षी हो जाओ। सुख को पकड़ना और दुःख से भागना भूल भरे चित के स्वाभाविक गुण है।
और अगर तुम साक्षी रह सको तो देर अबेर तुम मध्य को उपलब्ध हो जाओगे। प्राकृतिक नियम तो यही है कि एक से दूसरी अति पर आते-जाते रहो। अगर तुम साक्षी रह सके तो तुम मध्य में रह सकोगे।
बुद्ध ने इसी विधि के कारण अपने पूरे दर्शन को मज्झम निकाय—मध्य मार्ग कहा है। वे कहते है कि सदा मध्य में रहो; चाहे जो भी विपरीतताएं हों, तुम सदा मध्य में रहो। और साक्षी होने से मध्य में हुआ जा सकता है। जि क्षण तुम्हारा साक्षी खो जाता है तुम या तो आसक्त हो जाते हो या विरक्त। अगर तुम विरक्त हुए तो दूसरी अति पर चले जाओगे और आसक्त हुए तो इस अति पर बने रहने की चेष्टा करोगे। लेकिन तब तुम कभी मध्य में नहीं होगे। सिर्फ साक्षी बनो; न आकर्षित होओ और न विकर्षित ही। सिरदर्द है तो उसे स्वीकार करो। वह तथ्य है। जैसे वृक्ष है, मकान
है, रात है, वैसे ही सिरदर्द है। आँख बंद करो और उसे स्वीकार करो। उससे बचने की चेष्टा मत करो। वैसे ही तुम सुखी हो तो सुख के तथ्य को स्वीकार करो। उससे चिपके रहने की चेष्टा मत करो। और दुःखी होने का प्रयत्न भी मत करो; कोई भी प्रयेत्न मत करो। सुख आता है तो आने दो; दुःख आता है तो आने दो। तुम शिखर पर खड़े दृष्टा बने रहो। जो सिर्फ चीजों को देखता है। सुबह आती है। शाम आती है। फिर सूरज उगता है। और डूबता है। तारे है और अँधेरा है, फिर सूर्योदय—और तुम शिखर पर खड़े दृष्टा हो। तुम कुछ कर नहीं सकते; तुम सिर्फ देखते रहते हो। सुबह आती है, इस

तथ्य को तुम भलीभाँति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अब सांझ जाएगी। क्योंकि सांझ सुबह के पीछे-पीछे आती है। वैसे ही जब सांझ आती है। तो तुम उसे भी भलीभाँति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अगर सुबह आएगी, क्योंकि सुबह सांझ के पीछे-पीछे आती है। जब दुःख है तो तुम उसके भी साक्षी हो।
तुम जानते हो कि दुःख आया है, देर अबेर वह चला जाएगा। और उसका विपरीत ध्रुव आ जाएगा और जब सुख आता है। तो तुम जानते हो कि वह सदा नहीं रहेगा। दुःख कहीं पास ही छिपा होगा। आता ही होगा। तुम खुद द्रष्टा ही बने रहते हो।
अगर तुम आकर्षण और विकर्षण के बिना, लगाव और दुराव के बिना देखते
रहे तो तुम मध्य में आ जाओगे। और जब पैंडुलम बीच में ठहर जाएगा। तो तुम पहली दफा देख सकोगे कि संसार क्या है। जब तक तुम दौड़ रहे हो, तुम नहीं जान सकते कि संसार क्या है। तुम्हारी दौड़ सब कुछ को भ्रांत कर देती है। धूमिल कर देती है। और जब दौड़ बंद होगी तो तुम संसार को देख सकोगे। तब तुम्हें पहली बार सत्य के दर्शन होंगे। अकंप मन ही जानता है कि सत्य क् या है। कंपित मन सत्य को नहीं जान सकता। तुम्हारा मन ठीक कैमरे की भांति है। अगर तुम चलते हुए फोटो लेते
हो तो जो भी चित्र बनेगा वह धुंधला-धुंधला ही होगा। असपष्ट होगा। विकृत होगा। कैमरे को हिलना नहीं चाहिए। कैमरा हिलेगा तो चित्र बिगड़ेगा ही। तुम्हारी चेतना एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर गति करती रहती है। और
इस भांति तुम जो सत्य जानते हो वह भ्रांति है, दुख स्वप्न है। तुम नहीं जानते हो कि क्या-क्या है। सब भ्रम है, सब धुआं-धुंआ है। सत्य से तुम वंचित रह जाते हो। सत्य को तुम तब जानते हो जब तुम मध्य में ठहर जाता है। और तुम्हारी चेतना वर्तमान के क्षण में होती है। केंद्रित होती है। अचल और अकंप चित ही सत्य को जानता है। ‘’प्रिये, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान
को स्थिर करो।‘’

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—60 (ओशो)

साक्षित्व की चौथी विधि--

‘’विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।‘’ यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम
सदा अपने क्रोध को उचित मानते हो। लेकिन जब कोई दूसरा क्रोधित होता है तो तुम उसकी सदा आलोचना करते हो। तुम्हारा पागलपन स्वाभाविक है; दूसरे का पागलपन विकृति है। तुम जो भी कहते हो वह शुभ है—शुभ नहीं तो कम से कम उसे करना जरूरी था। तुम अपने कृत्य के लिए सदा कुछ औचित्य खोज लेते हो, उसे तर्कसम्मत बना लेते हो। और जब वहीं काम दूसरा करता है तो वही औचित् य, वहीं तर्क लागू नहीं होता है। तुम क्रोध करते हो तो कहते हो कि दूसरे के हित के लिए यह जरूरी था;
अगर मैं क्रोध न करता तो दूसरा बर्बाद ही हो जाता। वह किसी बुरी आदत का शिकार हो जाता है, इसलिए उसे दंड देना जरूरी था; यह उसके भले के लिए था।

लेकिन जब दूसरा तुम पर क्रोध करता है तो वही तर्क सारणी उस पर नहीं लागू की जाती है। दूसरा पागल है, दूसरा दुष्ट है।
हमारे मापदंड सदा दोहरे है; अपने लिए एक मापदंड है और शेष सबके लिए दूसरे मापदंड है। यह दोहरे मापदंड वाला मन सदा दुःख में रहेगा। यह मन ईमानदार नहीं है। सम्यक नहीं है। और जब तक तुम्हारा मन, ईमानदार नहीं होता, तुम्हें सत्य की झलक नहीं मिल सकती है। और एक ईमानदार मन ही दोहरे मापदंड से मुक्त हो सकता है। जीसस कहते है: दूसरों के साथ वह व्यवहार मर करो। जो व्यवहार तुम न चाहोगे कि तुम्हारे साथ किया जाए। यह विधि एक मापदंड की धारणा पर आधारित है।
तुम अपवाद नहीं हो; यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि मैं अपवाद हूं। अगर तुम सोचते हो कि मैं अपवाद हूं तो भलीभाँति जान लो कि ऐसे ही हर सामान्य मन सोचता है। यह जानना कि मैं सामान्य हूं जगत में सबसे असामान्य घटना है। किसी न सुजुकी से पूछा कि तुम्हारे गुरु में असामान्य क्या था? सुजुकी स्वयं झेन गुरु था। सुजुकी ने कहा कि उनके संबंध में मैं एक चीज कभी न भूलूंगा कि मैंने कभी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो अपने को इतना सामान्य समझता हो। वे बिलकुल सामान्य थे और वही उनकी सबसे बड़ी असामान् यता थी। अन्यथा साधारण व्यक्ति भी सोचता है कि मैं असामान्य हूं, अपवाद हूं।
लेकिन कोई व्यक्ति असामान्य नहीं है। और तुम अगर यह जान लो तो तुम असामान्य हो जाते हो। हर आदमी दूसरे आदमी जैसा है। जो वासनाएं तुम् हारे भीतर चक्कर लगा रही है वे ही दूसरों के भीतर घूम रही है। लेकिन तुम अपनी कामवासना को प्रेम कहते हो और दूसरों के प्रेम को कामवासना कहते हो। तुम खुद जो भी करते हो, उसका बचाव करते हो तुम कहते हो कि वह शुभ काम है। इसलिए कहता हूं। और वही काम जब दूसरे करते है तो वह वही नहीं रहते, वह शुभ नहीं रहते। और यह बसत व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है। जाति और राष्ट्र भी
यही करते है। अगर भारत अपनी सेना बढ़ाता है तो वह सुरक्षा का प्रयत्न है और जब चीन अपनी सेना को मजबूत करता है तो वह आक्रमण की तैयारी हे। दुनिया की हर सरकार अपने सैन्य संस्थान को सुरक्षा संस्थान कहती है। तो फिर आक्रमण कौन करता है? जब सभी सुरक्षा में लगे है तो आक्रामक कौन है? अगर तुम इतिहास देखोगें तो तुम्हें कोई आक्रामक नहीं मिलेगा। हां, जो हार जाते है वह आक्रामक करार दे दिए जाते है। पराजित लोग सदा आक्रामक माने गए है। क्योंकि वे इतिहास नहीं लिख सकते है। इतिहास तो विजेता लिखते है। अगर हिटलर विजयी हुआ होता तो इतिहास दूसरा होता। तब वह आक्रामक नहीं, संसार का रक्षक माना जाता। तब चर्चिल, रूजवेल्ट और उनके मित्र गण आक्रामक माने जाते। और कहा जाता कि उन्हें मिटा डालना अच्छा हुआ। लेकिन क्योंकि हिटलर हार गया। वह आक्रामक हो गया। तो न सिर्फ व्यक्ति, बल्कि जाति और राष्ट्र भी वही तर्क पेश करते है; अपने को औरों से भिन्न बताते है।
कोई भी भिन्न नहीं है। धार्मिक चित वह है जो जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है। इसलिए तुम जो तर्क अपने लिए खोज लेते हो वही दूसरों के लिए भी उपयोग करो। और अगर तुम दूसरों की आलोचना करते हो तो उसी आलोचना को अपने पर भी लागू करो। दोहरे मापदंड मत गढ़ो। एक मापदंड रखने से तुम पूरी तरह रूपांतरित हो जाओगे। एक मापदंड तुम्हें ईमानदार बनाएगा। और पहली दफा तुम सत्य को सीधा देखोगें जैसा वह है। ‘’विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति

स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।‘’ तुम उन्हें स्वीकार कर लो और वे रूपांतरित हो जाएंगी। लेकिन हम क्
या कर रहे है? हम स्वीकार करते है कि विषय-वासना दूसरों में है। जो-जो गलत है वह दूसरों में है और जो-जो सही है वह तुम में है। तब तुम रूपांतरित कैसे होगे? तुम तो रूपांतरित हो ही। तुम सोचते हो कि मैं तो अच्छा ही हूं। दूसरे सब लोग बुरे है। रूपांतरण की जरूरत संसार को है। तुम्हें नहीं। इसी दृष्टिकोण के कारण नेता, क्रांतियां और पैगंबर पैदा होते है।
वे घर के मुँडेरों पर चढ़कर चिल्लाते है। कि दुनियां को बदलना है। कि इंकलाब लाना है। हम क्रांति पर क्रांति किए जाते है। और कुछ भी नहीं बदलता है। मनुष्य वही का वहीं है। दुनियां पुराने दुखों से ही ग्रस्त रहती है। चेहरे और नाम बदल जाते है; पर दूःख बना रहता है। दुनिया को बदलने की बात नहीं है। तुम गलत हो। प्रश्न है कि तुम कैसे बदलों धार्मिक प्रश्न यह है कि मैं कैसे बदलूं? दूसरों को बदलने की बात राजनीति है। राजनीतिज्ञ सोचता है कि मैं तो बिलकुल ठीक हूं, कि मैं तो आदर्श हूं, जैसा कि सारी दुनियां को होना चाहिए। वह अपने को आदर्श मानता है। वह आदर्श पुरूष है। और उसका काम दुनिया को बदलना है। धार्मिक व्यक्ति जो कु छ भी दूसरों से देखता है उसे अपने भीतर भी देखता है। अगर हिंसा है तो वह सोचता है कि यह हिंसा मुझमें है या नहीं। अगर लोभ है, अगर उसे कहीं लोभ दिखाई पड़ता है तो उसका पहला ख्याल यह होता है कि यह लोभ मुझमें है या नहीं। और जितना ही खोजता है वह पाता है कि मैं ही सब बुराई का स्त्रोत हूं। तब फिर प्रश्न उठता ही नहीं। कि संसार कैसे बदले। तब फिर प्रश्न यह है कि अपने को कैसे बदला जाए। और बदलाहट उसी क्षण लगती है। जब तुम एक मापदंड अपनाते हो। उसे अपनाते ही तुम बदलने लगते हो। दूसरों की निंदा मत करो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपनी निंदा करो। नहीं, बस दूसरों की निंदा मत करो। और अगर तुम दूसरों की निंदा करते हो तो तुम्हें उनके प्रति गहन करूणा का भा होगा। क्योंकि सब की समस् याएं समान है। अगर कोई पाप करता है—समाज की नजर में जो पाप है—तो तुम उसकी निंदा करने लगते हो। तुम यह नहीं सोचते हो कि तुम्हारे भीतर भी उस पाप के बीज पड़े है। अगर कोई हत्या करता है तो तुम उसकी निंदा करते हो। लेकिन क्या तुमने कभी किसी की हत्या करने का विचार नहीं किया है? क्या उसका बीज, उसकी संभावना तुम्हारे भीतर भी नहीं छिपी है। जि आदमी ने हत्या की है वह एक क्षण पूर्व हत्यारा नहीं था। लेकिन उसका बीज उसमें था। वह बीज तुममें भी है। एक क्षण बाद कौन जानता है कि तुम भी हत्यारे हो सकते हो। उसकी निंदा मत करो। बल्कि स्वीकार करो। तब तुम्हें उसके प्रति गहन करूणा होगी। क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह कोई भी कर सकता है। तुम भी कर सकते हो। निंदा से मुक्त चित में करूणा होती है। निंदा रहित चित में गहन स् वीकार होता है। वह जानता है कि मनुष्यता ऐसी है, कि मैं भी ऐसा ही हूं, तब सारा जगत तुम्हारा प्रतिबिंब बन जाएगा; वह तुम्हारे लिए दर्पण का काम देगा। तब प्रत्येक चेहरा तुम्हारे लिए आईना होगा; तुम प्रत्येक चेहरे में अपने को ही देखोगें। ‘’विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।‘’ स्वीकार ही रूपांतरण बन जाता है। यह समझना कठिन है। क्योंकि हम
सदा इनकार करते है और उसके बावजूद हम बिलकुल नहीं बदल पाते है। तुममें लोभ है, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को लोभी मानने को राज़ी नहीं है। तुम कामुक हो, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी

अपने को कामुक मानने को राज़ी नहीं है। तुम क्रोधी हो, लेकिन तुम उसे इनकार कर देते हो। तुम एक मुखौटा ओढ़ लेते हो। और उसे उचित बताने की चेष्टा करते हो। तुम कभी नहीं सोचते कि मैं क्रोधी हूं। लेकिन अस्वीकार से कभी कोई रूपांतरण नहीं होता। उससे चीजें दमित
हो जाती है। लेकिन जो चीज दमित होती है वह और भी शक्तिशाली हो जाती है। वह तुम्हारी जड़ों तक पहुंच जाती है। तुम्हारे अचेतन में गहराई तक उतर जाती है। वहां से काम करने लगती है। और अचेतन के उस अंधेरे में वह वृति और भी शक्ति शाली हो जाती है। और अब तुम उसे और भी नहीं स्वीकार कर सकते, क्योंकि तुम्हें उसका बोध भी नहीं है। स्वीकृति सबको ऊपर ले आती है। दमन करने की जरूरत नहीं है। तुम जानते हो कि मैं लोभी हूं। तुम जानते हो कि मैं क्रोधी हूं, तुम जानते हो कि मैं कामुक हूं। तुम उन वृतियां को बिना किसी निंदा के स्वाभाविक तथ् य की तरह स्वीकार कर लेते हो। उन्हें दमित करने की जरूरत नहीं है। वे वृतियां मन की सतह पर आ जाती है। और वहां से उन्हें बहुत आसानी से विसर्जित किया जा सकता है। गहरे अचेतन में उनका विसर्जन संभव नहीं है। और जब वे सतह पर होती है तो तुम उनके प्रति होश पूर्ण होते हो; जब वे अचेतन में होती है तो तुम उनके प्रति बेहोश बने रहते हो। और उस रोग से ही मुक्ति संभव है जिसके प्रति तुम होश पूर्ण हो; जिसके प्रति तुम बेहोश हो उस रोग से मुक्त नहीं हो सकती। प्रत्येक चीज को सतह पर ले आओ। अपनी मनुष्यता को स्वीकार करो; अपनी पशुता को स्वीकार करो। जो भी है उसे बिना किसी निंदा के स्वीकार करो। लोभ है; उसे अलोभ में बदलने की चेष्टा मत करो। तुम उसे नहीं बदल सकते हो। और अगर तुम उसे अलोभ बनाने की चेष्टा करोगे तो तुम उसका दमन करोगे। तुम्हारा अलोभ और कुछ नहीं, केवल दूसरे ढंग का लोभ है। अगर तुम लोभ को बदलने की कोशिश करोगे तो क्या करोगे? लोभी मन अलोभ के आदर्श के प्रति तभी आकर्षित होता है जब उसका कोई और लोभ उससे साधने वाला हो। अगर कोई तुम्हें कहता है कि यदि तुम अपने सारे धन का त्याग कर दो
तो तुम्हें परमात्मा के राज्य में प्रवेश मिल जाएगा। तो तुम सदा त्याग करने को भी तैयार हो जाओगे। अब एक नया लोभ संभव हो गया। यह सौदा है। तो लोभ को अलोभ नहीं बनाना है। लोभ का अतिक्रमण करना है। तुम उसे बदल नहीं सकते। तो लोभ को अलोभ मत बनाओ। तुम एक चीज को दूसरी चीज में बदल नहीं सकते हो। केवल सिर्फ सजग हो सकते हो। तुम सिर्फ स्वीकार कर सकते हो। लोभ को लोभ की तरह स्वीकार करो। स्वीकार का यह अर्थ नहीं है कि उसे रूपांतरित करने की जरूरत नहीं
है। स्वीकार का इतना ही अर्थ है कि तुम तथ्य को, स्वाभाविक तथ्य को स् वीकार करते हो; जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करते हो। तब जीवन में यक जानकर गति करो कि लोभ है। तुम जो भी करो यह स्मरण रखकर करो कि लोभ है। यह बोध तुम्हें रूपांतरित कर देगा। यह रूपांतरित करता है। क्योंकि बोधपूर्वक तुम लोभी नहीं हो सकते हो। बोधपूर्वक तुम क्रोधी नहीं हो सकते। क्रोध के लिए, लोभ के लिए, हिंसा के लिए, मूर्च्छा बुनियादी शर्त है।
यह वैसा ही है जैसे तुम जान-बूझकर जहर नहीं खा सकते। जान बूझकर तुम अपना हाथ आग में नहीं डाल सकते हो। अनजाने ही ऐसा कर सकते हो। अगर तुम् हें नहीं पता है कि आग क्या है। तो ही तुम उसके हाथ डाल सकते हो। यदि जानते हो। अगर तुम्हें नहीं पता है कि आग क्या है तो ही तुम उसके हाथ डाल सकते हो। यदि जानते हो कि आग जलाती है। तो तुम उसमें हाथ नहीं डाल सकते। जैसे-जैसे तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा बोध, वैसे-वैसे लोभ तुम्हारे
लिए आग बन जाएगा। क्रोध जहर बन जायेगा। तब वे बस असंभव हो जाते है। और दमन न हो तो वे सदा के लिए विसर्जित हो जाते है। और जब लोभ अलोभ के आदर्श

के बिना विसर्जित होता है। तो उसका अपना ही सौंदर्य है। जब हिंसा अहिंसा के आदर्श के बिना विसर्जित होती है तो उसका अपना ही सौंदर्य है।

अन्यथा जो व्यक्ति आदर्श के अनुसार अहिंसक बनता है वह गहरे में हिंसक, अति हिंसक बना रहता है। वह हिंसा उसमें छिपी रहती है। और तुम्हें उसकी झलक उसकी अहिंसा में भी मिल सकती है। वह अपनी अहिंसा को अपने पर और दूसरों पर बहुत हिंसक ढंग से थोपेगा। उसकी हिंसा सूक्ष्म ढंग ले लेगी।

यह सूत्र कहता है कि स्वीकार रूपांतरण है, क्योंकि स्वीकार से बोध संभव होता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग -तीन

प्रवचन -37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि —61 (ओशो)

''जैसे जल से लहरें उठती है और अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।''

पहले तो यह समझने की कोशिश करो लहर क्या है, और तब तुम समझ सकते हो कि कैसे यह चेतना की लहर तुम्हें ध्यान में ले जाने में सहयोगी हो सकती है।

तुम सागर में उठती लहरों को देखते हो। वे प्रकट होती है; एक अर्थ में वे है, और फिर भी किसी गहरे अर्थ में वे नहीं है। लहर के संबंध में समझने की यह पहली बात है। गहरे अर्थ में प्रकट होती है; एक अर्थ में लहर है। लेकिन किसी गहरे अर्थ में लहर नहीं है। गहरे अर्थ में सिर्फ सागर है। सागर के बिना लहर नहीं हो सकती। और जब लहर है भी तो भी यह सागर ही है। लहर रूप भर है। सत्य नहीं है। सागर सत्य है। लहर केवल रूप है।

भाषा के कारण अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती है। क्योंकि हम कहते है लहर, इससे लगता है कि लहर कुछ है। बेहतर हो कि हम लहर न कहकर लहराना कहें। लहर नहीं, लहराना ही है। वह कोई वस्तु नहीं है, एक क्रिया है। वह एक गति है, प्रक्रिया है; वह कोई पदार्थ नहीं है। वह कोई तत्व सत्य नहीं है। पदार्थ या तत्व तो सागर है; लहर एक रूप भर है।

सागर शांत हो सकता है। तब लहरें विलीन हो जाएंगी। लेकिन सागर तो रहेगा। सागर शांत हो सकता है। या बहुत सक्रिय और क्षुब्ध हो सकता है; या सागर निष्क्रिय हो सकता है। लेकिन तुम्हें कोई शांत लहर देखने को नहीं मिलेगी। लहर सक्रियता है, सत्य नहीं। जब सक्रियता है तो लहर है; यह लहराना है, गति है, हलन चलन है —एक साधारण सी हलचल। लेकिन जब शांति आती है। जब निष्क्रियता आती है तो लहर नहीं रहती। लेकिन सागर रहता है। दोनों अवस्थाओं में सागर सत्य है। लहर उसका एक खेल है। लहर उठती है। खो जाती है। लेकिन सागर रहता है।

दूसरी बात लहरें अलग-अलग दिखती है। प्रत्येक लहर का अपना व्यक्तित्व है। अनूठा औरों से भिन्न। कोई दो लहरें समान नहीं होती। कोई लहर बड़ी होती है। कोई छोटी उनके अपने-अपने विशिष्ट लक्षण होते है। प्रत्येक लहर का निजी ढंग होता है। और निश्चित ही प्रत्येक लहर दूसरे से भिन्न होती है। एक लहर उठ रही होती है, दूसरी मिट रही होती है। जब एक उठती है तो दूसरी गिरती है। दोनों एक नहीं हो सकती। क्योंकि एक जन्म ले रही होती है और दूसरी मिट रही होती है। फिर भी दोनों लहरों के पीछे जो सत्य है वह एक ही है।

लेकिन संभव है कि उठती हुई लहर मिटने वाली लहर से ऊर्ज ग्रहण कर
रही हो। मिटने वाली लहर अपनी मृत्यु के द्वारा उसे उठने में मदद कर रही हो। बिखरने वाली लहर उस लहर के लिए कारण बन सकती है जो उठ रही है। बहुत गहरे में वि एक ही सागर से जुड़ी है। वे भिन्न नहीं है। वे पृथक नहीं है। उनका व्यक्तित्व झूठ है, भ्रामक है। वे जुड़ी है। उनका द्वैत भासता है। लेकिन है नहीं। उनका अद्वैत सत्य है। अब सूत्र को फिर से पढ़ता हूं: ‘’जैसे जल से लहरें उठती है, और अग्नि
से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।‘’ हम जागतिक सागर में लहर मात्र है। इस पर ध्यान करो; इस भाव को अपने भीतर खूब गहरे उतरने दो। अपनी श्वास को उठती हुई लहर की तरह महसूस करना शुरू करो। तुम श्वास लेते हो; तुम श्वास छोड़ते हो। जो श्वास अभी तुम् हारे अंदर जा रही है वह एक क्षण पहले किसी दूसरे की श्वास थी। और जो श् वास अभी तुम्हारे से बहार जा रही है। वही श्वास अगले क्षण किसी दूसरी की श्वास हो जायेगी। श्वास लेना जीवन के सागर में लहरों के उठनें-गिरने जैसा ही है। तुम पृथक नहीं हो, बस लहर हो। गहराई में तुम एक हो। हम सब इकट्ठे है, संयुक्त है। वैयक्तिकता झूठी है। भ्रामक है। इसलिए अहंकार एकमात्र बाधा है। वैयक्तिकता झूठी है। वह भासती है। लेकिन सत्य नहीं है। सत्य तो अखंड है, सागर है, अद्वैत है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म अहंकार के विरोध में है। जो व्यक्ति कहता है कि ईश्वर नहीं है वह अधार्मिक न भी हो, लेकिन जो कहता है कि मैं हूं वह अवश्य अधार्मिक है। गौतम बुद्ध नास्तिक थे; वे किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे। महावीर वर्धमान नास्तिक थे। उन्हें भी किसी ईश्वर में विश्वास नहीं था। लेकिन वे पहुंच गए, उन्होंने पाया; वे समग्रता को, पूर्ण को उपलब्ध हुए। अगर तुम्हें किसी परमात्मा में विश्वास नहीं है तो तुम अधार्मिक नहीं हो। क्योंकि धर्म के लिए ईश्वर बुनियादी नहीं है। धर्म के लिए निरहंकार बुनियादी है। और अगर तुम ईश्वर में विश्वास भी करते हो, लेकिन अहंकार भरे मन सक विश्वास करते हो तो तुम अधार्मिक हो। अहंकार रहित मन के लिए ईश्वर में विश्वास की भी जरूरत नहीं है। निरहंकारी व्यक्ति अपने आप ही, सहज ही परमात्मा में लीन हो जाता है। निरहंकारी होकर तुम लहर से नहीं चिपके रह सकते हो; तुम्हें सागर में गिरना ही होगा। अहंकार लहर से चिपका रहता है। जीवन को सागर की भांति देखो और अपने को लहर मात्र समझो; और इस भाव को अपने भीतर उतरने दो।
इस विधि को तुम कई ढंग से उपयोग में ला सकते हो। श्वास लेते हो तो
भाव करो कि सागर ही तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है; सागर ही तुम्हारे भीतर आता है। और बाहर जाता है। प्रत्येक श्वास के साथ महसूस करो। जब लहर मिट रही है, उन दोनों के बीच तुम कौन हो। बस एक शुन्य एक खाली पन। उस शून्यता के भाव के साथ तुम रूपांतरित हो जाओगे। उस खालीपन के
भाव के साथ तुम्हारे सब दुःख विलीन हो जायेगे। क्योंकि दुःख को होने के लिए किसी केंद्र की जरूरत होती है। वह भी झूठे केंद्र की। शुन्य ही तुम् हारा असली केंद्र है। उस शून्य में दुःख नहीं है। उस शून्य में तुम गहन विश्राम में होते हो। जब तुम ही नहीं हो तो तनावग्रस्त कौन होगा। तुम तब आनंद से भर जाते हो। ऐसा नहीं है कि तुम आनंदपूर्ण होते हो; सिर्फ आनंद होता है। तुम्हारे बिना क्या तुम दुःख निर्मित कर सकते हो।
यही कारण है कि बुद्ध कभी नहीं कहते है कि उस अवस्था में, परम अवस्
था में आनंद होगा। वे ऐसा नहीं कहते; वे यही कहते है कि दुःख नहीं होगा। बस। आनंद की बात करने से तुम भटक सकते हो, इसलिए बुद्ध आनंद की बात नहीं करते। वे कहते है कि आनंद की बात ही मत करो। सिर्फ जानो कि दुःख से कैसे मुक्त हुआ जाए; उसका मतलब है कि अपने बिना खुद के बिना कैसे हुआ जाए।

हमारी समस्या क्या है? समस्या यह है कि लहर अपने को सागर से पृथक मानती है। तब समस्याएं उठ खड़ी होती है। अगर लहर को सागर से पृथक मानती है तो उसे तुरंत मृत्यु का भय पकड़ता है। लहर तो मिटेगी। लहर अपने चारों और अन्य लहरों को मिटते हुए देख सकती है। लहर जानती है कि उसके उठने में ही कहीं मृत्यु छिपी है। क्योंकि दूसरी लहरें भी तो क्षण भर पहले उठ रही थी और अब वे गिर रही है। बिखर रही है। मिट रही है। तुम्हें भी मिटना होगा।
अगर लहर अपने को सागर से पृथक मानती है तो देर-अबेर मृत्यु का भय
उसे अवश्य घेरेगा। लेकिन अगर लहर जान ले कि मैं नहीं हूं, सागर है। तो मृत्यु का कोई भय नहीं है। लहर ही मरती है; सागर नहीं मरता। मैं मर सकता हूं; लेकिन जीवन नहीं मरता। तुम मर सकते हो, तुम मरोगे। लेकिन जीवन नहीं मरेगा। अस्तित्व नहीं मरेगा। अस्तित्व तो लहराता ही जाता है। वह तुममें लहराया है; वह दूसरों में लहराएगा। और जब तुम्हारी लहर बिखर रही होगी; तो संभव है कि तुम्हारे बिखराव में से ही दूसरी लहरें उठे। सागर जारी रहता है। जब तुम अपने को लहर के रूप में पृथक देख लेते हो तो सागर के साथ, अरूप के साथ एक जान लेते हो। एकात्म अनुभव करते हो। प्रत्येक संताप में, प्रत्येक चिंता में मृत्यु का भय मूलभूत है। तुम भयभीत हो, कांप रहे हो। चाहे तुम्हें इसका बोध न हो, लेकिन अगर तुम अपने अंतस में प्रवेश करोगे।
तो पाओगे। कि प्रत्येक क्षण तुम कांप रहे हो, क्योंकि तुम मरने वाले हो।
तुम अनेक सुरक्षा के उपाय कर सकते हो, तुम अपने चारों और क़िलाबंदी कर सकते हो; लेकिन कुछ भी काम न देगा। कुछ भी काम नहीं देगा। धूल-धूल में जा मिलती है। तुम धूल में मिलने ही वाले हो।
क्या तुमने कभी इस बात पर गौर किया है, इस तथ्य पर ध्यान किया है।
कि अभी तुम रास्ते पर चल रहे हो तो जो धूल तुम्हारे जूते पर जमा हो रही है, हो सकता है वह धूल किसी नेपोलियन, किसी सिकंदर के शरीर की धूल हो। सिकंदर इस समय कही न कही धूल बना पडा है। और हो सकता है। कि तुम्हारे जूते से चिपकी धूल सिकंदर के शरीर की ही धूल हो। यही तुम्हारी भी हाल होने वाला है। इस क्षण तुम हो और अगले क्षण तुम नहीं होगे। यही तुम्हारा भी हाल होने वाला है। देर-अबेर धूल-धूल में मिल जाएगी। लहर विदा हो जायेगी।
भय पकड़ता है। जरा कल्पना करो कि तुम किसी के जूते से चिपकी हुई
धूल हो या कोई तुम्हारे शरीर से, तुम्हारी प्रेमिका के शरीर से चाक पर बर्तन गढ़ रहा हो। या कल्पना करो कि तुम किसी कीड़े के शरीर में या वृक्ष के शरीर में प्रवेश कर रहे हो। लेकिन यही हो रहा है। प्रत्येक चीज रूप है और रूप को मिटना है। केवल अरूप शाश्वत है। अगर तुम रूप से बंधे हो, अगर रूप ही तुम्हारा तादात्म्य है। अगर तुम अपने को लहर मानते हो, तो तुम अपने ही हाथों उपद्रव में पड़ने वाले हो।
तुम सागर हो, लहर नहीं। यह ध्यान सहयोगी हो सकता है। यह तुम्हारा रूपांतरण बन सकता है। लेकिन इसे अपने पूरे जीवन पर फैलने दो। श्वास लेते हुए सोचो, भोजन करते हुए सोचो, चलते हुए सोचो। दो चीजें सोचो कि रूप सदा लहर है। और अरूप सागर है। कि रूप मृण्मय है। और अरूप अमृत है। और ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे; तुम प्रतिदिन मर रहे हो। बचपन मरता है। और यौवन जन्म लेता है। फिर यौवन मरता है और बुढ़ापा जन्म लेता है। और फिर बुढ़ापा मरता है और रूप विदा हो जाता है। प्रत्येक क्षण तुम मर रहे हो; प्रत्येक क्षण तुम जन्म रहे हो। तुम्हारे जनम का पहला दिन तुम्हारे जीवन का पहला दिन नहीं है। वह तो आने वाले अनेक-अनेक जन् मों में से एक है। वैसे ही तुम्हारे इस जीवन की मृत्यु पहली मृत्यु नहीं है। वह तो सिर्फ इस जीवन की मृत्यु है। वैसे ही तुम पहले भी मरते रहे हो।

प्रतिक्षण कुछ मर रहा हे। और कुछ जन्म ले रहा है। तुम्हारा एक अंश मरता है, दूसरा अंश जन्मता है। शरीर शास्त्री कहते है कि सात वर्षों में तुम्हारे शरीर का कुछ भी पुराना नहीं बचता है। एक-एक चीज, एक-एक कोष्ठ बदल जाता है। अगर तुम सत्तर वर्ष जीने वाले हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदलेगा। पूरे का पूरा बदलेगा। हर सात वर्षों में तुम्हें नया शरीर मिलता है। लेकिन यह परिवर्तन अचानक नहीं होता। प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ बदल रहा होता है। तुम एक लहर हो और वह भी बहुत ठोस नहीं। प्रत्येक क्षण बदल रही हो।
और लहर थिर नहीं हो सकती। गतिहीन नहीं हो सकती। लहर को सतत बदलते रहना है, सतत गतिमान रहना है। थिर रहना है। थिर लहर जैसी कोई चीज नहीं होती। कैसे हो सकती है? थिर लहर का कोई अर्थ नहीं है। वह गति है, प्रक्रिया है।
तुम गति हो, प्रक्रिया हो। अगर तुम इस गति से तादात्म्य कर बैठे हो और अपने को जन्म और मृत्यु के बीच सीमित मानने लगते हो। तुम पीड़ा में, दुःख में पड़ोगे। तब तुम आभास को सत्य मान रहे हो। इसको ही शंकर माया कहते थे। सागर ब्रह्म है; सागर सत्य है। अपने को लहर मानो, या उठती गिरती लहरों का एक सातत्य मानो। और उसके साक्षी होओ। तुम कुछ कर नहीं सकते हो। ये लहरें विलीन होंगी। जो प्रकट हुआ है, वह विलीन होगा, उसके संबंध में कुछ नहीं किया जा सकता है। सब प्रयत्न बिलकुल व्यर्थ है। सिर्फ एक चीज की जा सकती है। वह है इस लहर रूप का साक्षी होना। और एक बार तुम साक्षी हो गए तो तुम्हें अचानक उसका बोध हो जाएगा जा लहर के पार है। जो लहर के पीछे है, जो लहर में भी है। और लहर के बहार भी है। जिससे लहर बनती है। और जो फिर भी लहर के पार है; जो सागर है। ‘’जैसे-जल से लहरें उठती है। अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक
हम से लहराता है।‘’ सर्वव्यापक हमसे लहराता है। तुम नहीं हो; सर्वव्यापक है। वह तुम् हारे द्वारा लहरा रहा है। इसे महसूस करो, इसका मनन करो, इस पर ध्यान करो। और बहुत-बहुत ढंगों से इसे अपने पर घटित होने दो। मैंने तुम्हें श्वास के संबंध में कहा। तुममें कामवासना उठती हे।
उसे महसूस करो, ऐसे नहीं जैसे वह तुम्हारी कामवासना है, बल्कि ऐसे कि सागर तुममें लहरा रहा है, जीवन तुममें धड़क रहा है। जीवन तुममें लहर ले रहा है। तुम संभोग में मिलते हो; ऐसा मत सोचो कि दो लहरें मिल रही है। ऐसा मत सोचो कि दो व्यक्ति मिल रहे है। बल्कि ऐसा सोचो कि दो व्यक्ति एक दूसरे में विलीन हो रहे है। दो व्यक्ति अब नहीं बचे; लहरें विलीन हो गई है, केवल सागर बचा है। तब संभोग ध्यान बन जाता है। जो भी तुम्हें घटित हो रहा है। ऐसा भाव करो कि वह ब्रह्मांड को घटित हो रहा है। कि मैं उसका अंश हूं, कि मैं सतह पर एक लहर मात्र हूं, सब कुछ अस्तित्व पर छोड़ दो। झेन सदगुरू डोजेन कहा करता था—जब उसे भूख लगती है, तो वह कहता था
— कि ऐसा लगता है कि अस्तित्व को मेरे द्वारा भूख लगी है। जब उसे प्यास लगती है तो वह कहता था कि मेरे भीतर अस्तित्व प्यासा है। यह ध्यान तुम्हें उसी स्थिति में पहुंचा देगा। तब तुम्हारा अहंकार बिखर जाता है। मिट जाता है और सब कुछ ब्रह्मांड का हिस्सा हो जाता है। तब जो भी होता है। अस्तित्व को होता है। तुम अब यहां नहीं हो। और तब कोई पाप नहीं है; तब कोई जिम्मेदारी नहीं है। अब तो केवल तुम हो; इसलिए किसके प्रति जिम्मेदार होगे?
अब अगर तुम किसी को मरते देखोगें तो तुम्हें लगेगा कि उसके साथ, उसके भीतर मैं ही मर रहा हूं। तब तुम्हें लगेगा कि पूरा जगत मर रहा है और मैं उस जगत का अंश हूं। और अगर किसी फूल को खिलते देखोगें तो तुम उसके

साथ-साथ खोलोगे। अब सारा ब्रह्मांड तुममय है। और ऐसी घनिष्ठता में, ऐसा लयबद्धता में होना समाधि में होना है। ध्यान मार्ग है। और यह एकता का भाव, सब के साथ जुड़े होने का भाव मंजिल हे। इसे प्रयोग करो। सागर को स्मरण रखो। और लहर को भूल जाओ। और ध्यान
रहे, जब भी तुम लहर को स्मरण करोगे। और लहर की भांति व्यवहार करोगे। तो तुम भूल करोगे और उसके कारण दुःख में पड़ोगे। कहीं कोई ईश्वर नहीं है। जो तुम्हें दंड दे रहा है। जब भी तुम किसी भ्रांति के शिकार होते हो, तुम अपने को दंड देते हो। जगत में एक नियम है। धर्म है, ताओ है। अगर तुम इसके साथ लयबद्ध चलते हो तो तुम आनंद में हो। यदि तुम उसके विपरीत चलोगे, तुम अपने को दुःख में पाओगे। वहां आकाश में कोई नहीं बैठा है तुम्हें दंडित करने को। वहां तुम्हारे पापों को कोई बही-खाता नहीं है। न उसकी कोई जरूरत है। यह ठीक गुरूत्वाकर्षण जैसा है। अगर तुम सही ढंग से चलते हो तो गुरूत्वाकर्षण सहयोगी होता है, गुरूत्वाकर्षण के बिना तुम चल नहीं सकते। लेकिन अगर तुम गलत ढंग से चलोगे तो गिरोगे; अपनी हड्डी भी तोड़ सकते हो। लेकिन कोई तुम्हें दंड नहीं दे रहा है। सिर्फ नियम है। गुरुत्वाकर्षण का। निरपेक्ष नियम है। अगर तुम गलत चलोगे और गिरोगे तो तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी। और ठीक से चलोगे तो उसका मतलब है कि तुम गुरूत्वाकर्षण का सही उपयोग कर रहे हो। ऊर्जा का सही और गलत दोनों तरह से उपयोग हो सकता है।
जब तुम अपने को लहर मानते हो तो तुम जागतिक नियम के विरोध में हो,
तुम सत्य के विरोध में हो। तब तुम अपने लिए दुःख निर्मित करोगे। कर्म के सिद्धांत का यही मतलब है। कोई कानून बनाने वाला नहीं है। परमात्मा कोई जज नहीं है। जज होना कुरूप बात है। और अगर ईश्वर कोई जज होता तो बिलकुल ऊब जाता। या पागल हो जाता। जगत में अपने नियम है। और बुनियादी नियम यह है कि सच्चा होना आनंद में होना है। और झूठा होना दुःख में होना है। ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—62 (ओशो)

‘’जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स् थान पर, यह।‘’
मन एक द्वार है—यही मन जहां कही भी भटकता है, जो कुछ भी सोचता है।
मनन करता है। सपने देखता है। यही मन और यही क्षण द्वार है।
यही एक अति क्रांतिकारी विधि है, क्योंकि हम कभी नहीं सोचते कि साधारण मन द्वार है। हम सोचते है कि कोई महान मन, कोई बुद्ध या जीसस का मन प्रवेश कर सकता है। हम सोचते है कि बुद्ध या जीसस के पास कोई असाधारण मन है। और यह सूत्र कहता है कि तुम्हारा साधारण मन ही द्वार है। यही मन जो सपने देखता है। कल्पनाएं करता है। ऊलजलूल सोच-विचार करता है। यही मन द्वार है जो कुरूप कामनाओं और वासनाओं से क्रोध और लोभ से खचाखच भरा है। जिसमें यह सब है जो निंदित है। जो तुम्हारे बस के बाहर है। जो तुम्हें यहां सक वहां भटकाता रहता है। जो सतत एक पागलखाना है। यही मन द्वार है। ‘’जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है.....।‘’
इस जहां कहीं को स्मरण रखो। भटकने का विषय महत्वपूर्ण नहीं है।
जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है। भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।‘’

बहुत सी बातें समझने जैसी है। एक कि साधारण मन उतना साधारण नहीं
है जितना हम समझते है। साधारण मन जागतिक मन से असंबद्ध नहीं है। वह उसका ही अंश है। उसकी जड़ें अस्तित्व के केंद्र तक चली गई है। अन्यथा तुम अस् तित्व में नहीं हो सकते हो। एक पापी भी परमात्मा में आधारित है; अन्यथा यह अस्तित्व में नहीं हो सकता था। वह जो शैतान है ह भी परमात्मा के सहारे के बिना नहीं हो सकता है। अस्तित्व ही इसलिए संभव है। क्योंकि वह परमात्मा में प्रतिष्ठित है।
तुम्हारा मन स्वप्न देखता है। कल्पना करता है, भटकता है; वह तनावग्रस्त है, दुःखी है। संताप में है। वह जैसे भी गति करता है, जहां भी जाता है, वह समग्र से जुड़ा रहता है। अन्यथा संभव नहीं है। तुम अस्तित्व से भाग नहीं सकते। वह असंभव है। इसी क्षण तुम्हारे जड़ें अस्तित्व में गड़ी है। तब क्या किया जाएं?
अगर इसी क्षण हमारी जड़ें अस्तित्व में गड़ी है तो अहंकारी मन को लगेगा कि फिर तो कुछ कना नहीं है। हम तो परमात्मा में ही है। फिर इतनी आपा धापी की क्या जरूरत है। तुम्हारी जड़ें तो परमात्मा में है। लेकिन तुम इस तथ्य के प्रति मूर्छित हो। जब मन भटकता है तो दो चीजें होती है: मन और भटकाव;मन के विषय और मन; आकाश में तैरते बादल और आकाश। वहां दो चीजें है: बादल और आकाश। कभी ऐसा भी हो सकता है। कि बादल इतने हो जाते है कि आकाश छिप जाता है। तुम उसे देख नहीं सकते हो।
लेकिन जब तुम नहीं देख पाते हो तब भी आकाश विलीन नहीं होता है। वह विलीन नहीं हो सकता है। आकाश के विलीन होने का कोई उपाय नहीं है। वह है; आच्छादित या प्रकट, दृश्य आ अदृश्य है। अगर तुम बादलों पर ही ध्यान देते हो तो आकाश भूल जाता है। और अगर तुम आकाश पर ध्यान देते हो तो बादल गौण हो जाते है। वे आते और जाते है, तुम्हें बादलों की बहुत चिंता लेने की जरूरत नहीं लेनी चाहिए। वे आते जाते रहते है। तुम्हें पता होना चाहिए की इन बादलों ने रति भर भी आकाश को नष्ट नहीं किया है। उन्होंने आकाश को गंदा भी नहीं किया है। उन्होंने उसका स्पर्श भी नहीं किया है। आकाश तो सदा कुंआरा है।
जब तुम्हारा मन भटकता है तो दो चीजें होती है। एक तो बादल है, विचार है, विषय है, बिंब है। और दूसरी चेतना है, खुद मन है। जब तुम बादलों पर विचारों पर, बिंबों पर बहुत ध्यान देते हो तो तुम आकाश को भूल जाते हो। तब तुम मेजबान को भूल गए और मेहमान में ही बुरी तरह से उलझ गये। वे विचार, वे बिंब, जो भटक रहे है। केवल मेहमान है। अगर तुम मेहमानों पर सब ध्यान लगा देते हो तो तुम अपनी आत्मा ही भूल बैठे।
अपने ध्यान को मेहमानों से हटाकर मेजबान पर लगाओ; बादलों से हटाकर आकाश पर केंद्रित करो। और इसे व्यावहारिक ढंग से करो। कामवासना उठती है। वह बादल है। या बड़ा घर पाने को लोभ पैदा होता है। यह भी बादल है। तुम इससे इतने ग्रस्त हो जा सकते हो कि तुम भूल ही जाओ कि यह किस में उठ रहा है। यह किसी को घटित हो रहा है। कौन इसके पीछे है। किस आकाश में यह बादल उठ रहे है। उस आकाश को स्मरण करो; और अचानक बादल विदा हो जाएगा। सिर्फ बदलने की जरूरत है। परिप्रेक्ष्य बदलने की जरूरत है। दृष्टि को विषय से विषयी पर, बाहर से भीतर पर, बादल से आकाश पर, अतिथि से आतिथेय पर ले जाने की जरूरत है। सिर्फ दृष्टि को बदलना है। फोकस को बदलना है।
एक झेन सदगुरू लिंची प्रवचन कर रहा था। भीड़ में से किसी ने कहा: मेरे एक प्रश्न का उत्तर दें, मैं कौन हूं? लिंची ने बोलना बंद कर दिया। सब लोग चौकन्ने हो गए। लिंची क्या उत्तर देने जा रहा है। सब यही सोच रहे थे। लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुर्सी से नीचे उतरा, आगे बढ़ा और उस आदमी के पास पहुंचा। पूरी भीड़ चकित और सजग हो उठी। लोगों की श् वासें तक रूक गई। लिंची क्या करने जा रहा है। उसे कुर्सी पर बैठे-बैठे

ही जवाब देना था; कुर्सी से उठने की क्या जरूरत थी? और प्रश्नकर्ता तो बहुत भयभीत हो गया। लिंची अपनी बेधक दृष्टि उस व्यक्ति पर जमाए पास आया। उसने उस आदमी का गला पकड़ लिया, उसे झकझोरा और कहा; आंखे बंद करो और उसका स्मरण करो जो यह प्रश्न पूछ रहा है।
उस आदमी ने आंखें बंद की—हांलाकि डरते-डरते। वह अपने भीतर खोजने
गया कि किसने यह प्रश्न पूछा था। और वह वापस नहीं आया। भीड़ प्रतीक्षा करती रही। प्रतीक्षा करती रही,उस आदमी का चेहरा मौन और शांत हो गया। तब लिंची ने उसे फिर झकझोरा: ‘’अब बहार आओ, और सब को बताओ कि तुम कौन हो। वह आदमी हंसने लगा और कहा: जवाब देने का आपका खूब अद्भुत ढंग है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति अभी मुझसे यही पूछे तो मैं भी वह भी वहीं करूंगा। ‘’मैं उत् तर नहीं दे सकता।‘’
यह दृष्टि की, परिप्रेक्ष्य की बदलाहट थी। तुम पूछते हो कि मैं
कौन हूं। और तुम्हारा मन प्रश्न पर केंद्रित है, जब कि उत्तर प्रश्न के ठीक पीछे प्रश्न कर्ता में छिपा है। दृष्टि को बदलों; अपने पर लौट आओ। यह सूत्र कहता है: ‘’जहां-जहां तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर,
उसी स्थान पर यह।‘’
तुम सोचते हो कि बादल मेरी संपदा है। तुम सोचते हो कि जितनी ज् यादा बादल होंगे, मैं उतना ही बेहतर, उतना ही ज्यादा समृद्ध हो जाऊँगा। और तुम्हारा सारा आकाश सारा आंतरिक आकाश उनसे आच्छादित है, ढंका है। एक अर्थ में, बादलों में आकाश खो गया है। और बादल ही तुम्हारा जीवन है। और बादलों का जीवन ही संसार है।
यह बात एक क्षण में घट सकती है। यह दृष्टि सदा अचानक ही घटती है।
में यह नहीं कह रहा हूं कि तुम कुछ भी मत करो और अचानक घटेगी। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। लेकिन यह क्रमिक ढंग से नहीं घटता। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। तब करते-करते एक दिन वह क्षण आता है जब तुम भाप बनने के सही तापमान पर पहुंच जाते हो। अचानक पानी-पानी नहीं रहता है; वह भाप बन गया। अचानक तुम विषय से बाहर हो गए। तुम्हारी आंखें अब बादलों पर नहीं अटकती है। अब अचानक तुम आंतरिक आकाश की तरफ भीतर मुड़ जाते हो।
ऐस कभी क्रमिक रूप से नहीं होता। तुम्हारी आँख का एक अंश भी तर की
और मुड़ जाता है और उसका दूसरा अंश बाहर बादलों पर लगा रहता है। नहीं, यह अंशों में नहीं घटित होता। कि तुम अस दस प्रतिशत भीतर हो और नब्बे प्रतिशत बाहर, कि बीस प्रतिशत भीतर हो और अस्सी प्रतिशत बाहर। नहीं जब यह घटित होता है तो शत प्रतिशत होता है। क्योंकि तुम अपनी दृष्टि को खंड-खंड नहीं कर सकते हो। या तो तुम विषयों को देखते हो या अपने को; या तो संसार को या ब्रह्म को।
फिर तुम संसार में वापस आ सकते हो। तुम फिर अपनी दृष्टि बदल सकते
हो। अब तुम मालिक हो। सच तो यह है कि तुम तभी मालिक होते हो जब स्वेच्छा से अपनी दृष्टि बदल सकते हो।
मुझे एक तिब्बती संत मारपा का स्मरण आता है। जब वह ज्ञान को उपलब्
ध हुआ—(जब वह बुद्ध हुआ, जब वह अंतस की और मुड़ गया, जब उसने अंतराकाश का, अनंत का साक्षात्कार किया—तो किसी ने उससे पूछा: मारपा अब कैसे हो? तो मारपा ने अत्तर दिया वह अपूर्व है, अप्रत्याशित है। अब तक किसी बुद्ध ने वैसा उत्तर नहीं दिया था। मारपा ने कहा: पहले जैसा ही दुःखी।
वह आदमी तो भौचक्का रह गया; उसने पूछा: पहले जैसा ही दुखी? लेकिन मारपा हंसा, उसने कहा: हां, लेकिन एक फर्क के साथ। और फर्क यह है कि अब मेरा दुःख स्वैच्छिक है। अब मैं कभी-कभी बस संसार का स्वाद लेने के लिए अपने से बहार लौट सकता हूं। लेकिन मैं मालिक हूं। मैं किसी भी क्षण भीतर लौट सकता हूं। और दोनों ध्रुवों के बीच गति कर सकता हूं। तभी कोई जीवित रह सकता है। कभी में दुखों में लौट सकता हूं, लेकिन अब दुख मुझे नहीं

घटित होते है, मैं ही उन्हें घटित होता हूं। और मैं उनसे अछूता रह सकता हूं।
निश्चित ही, जब तुम स्वेच्छा से गति करते हो एक बार तुमने जान लिया
कि दृष्टि को अंतर्मुखी कैसे किया जाए,तुम संसार में वापस आ सकते हो। सभी बुद्ध पुरूष संसार में वापस आए है। वे दृष्टि को फिर संसार में ले जाते है। लेकिन अब आंतरिक मनुष्य की गुणवता भिन्न है। वह जानता है कि यह उसकी स्वतंत्र दृष्टि है; वह बादलों को भी गति करने की इजाजत दे सकता है। अब बादल मालिक न रहे। वे तुम पर हावी नहीं हो सकते है। वे अब तुम् हारी मर्जी से घूमते है।
और यह सुंदर है। कभी-कभी बादलों से भरा आकाश सुंदर होता है। बादलों की हलचल सुंदर होती है। अगर आकाश-आकाश बना रहे तो बादलों को तैरने दिया जा सकता है। समस्या तो तब खड़ी होती है। जब आकाश अपने को भूल जाता है। और वहां बादल ही बादल रह जाते है। तब सब कुछ कुरूप हो जाता है। क्योंकि स्वतंत्रता खो गई।
यह सूत्र सुंदर है: ‘’जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।‘’
झेन परंपरा में इस सूत्र का गहरा उपयोग हुआ है। झेन कहते है कि साधारण मन ही बुद्ध-मन है। भोजन करते हुए तुम बुद्ध हो; सोते हुए तुम बुद्ध हो। कुएं से पानी ले जाते हुए तुम बुद्ध हो। तुम हो, कुएं से पानी ले जाते हुए। भोजन करते हुए। विस्तर पर लेटे हुए तुम बुद्ध हो। यह पहेली जैसा लगता है। लेकिन यह सच है। अगर पानी ढोते हुए तुम सिर्फ पानी ढोते हो। तुम उसे समस्या नहीं बनाते और सिर्फ पानी ढोते हो। अगर तुम् हारा मन बादलों से मुक्त है। और आकाश खाली है। अगर तुम केवल पानी ढोते हो, तो तुम बुद्ध हो। तब भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करते हो और कुछ नहीं करते।
लेकिन हम जब भोजन करते है तो उसके साथ हजारों चीजें करते-रहते है।
हो सकता है तुम्हारा मन भोजन में बिलकुल न हो; तुम्हारा शरीर यंत्र की भाती भोजन कर रहा हो। तुम्हारा मन कहीं और हो सकता है।
किसी विश्वविद्यालय का एक छात्र कुछ दिन पहले आया था। उसकी परीक्षा करीब थी। इसलिए वह कुछ पूछने आया था। उसने कहा: में बहुत उलझन में हूं। समस्या यह है कि मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ गया हूं। तो परीक्षा की सोचता रहता हूं और जब पढ़ता रहता हूं तो लड़की के विषय में सोचता रहता हूं। पढ़ते समय मैं वहां नहीं होता। मैं कल्पना में अपनी प्रेमिका के साथ होता हूं। और जब प्रेमिका के साथ होता हूं तो कभी उसके साथ नहीं होता हूं। मैं अपनी समस्याओं के बारे में, नजदीक आती परीक्षा के बारे में चिंता करता रहता हूं। नतीजा यह है किसब कुछ गुड-मुड़ हो गया है।
यह लड़का ही नहीं ऐसे ही हर कोई गुड़-मुड़ है। जब तुम दफ्तर जाते हो तो तुम्हारा मन घर में होता है। तुम जब घर में होते हो तो तुम्हारा मन दफ्तर में होता है। और तुम ऐसा जादुई करिश्मा कर नहीं सकते;घर में होकर तुम घर में ही हो सकते हो, दफ्तर में नहीं हो सकते। और अगर तुम दफ्तर में हो तो तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है, तुम पागल हो। तब हर चीज दूसरी चीज में उलझ जाती है। गुत्थमगुत्था हो जाती है। तब कुछ भी स् पष्ट नहीं है। और यही मन समस्या है।
कुएं से पानी खींचते हुए, कुएं से पानी ढोते हुए तुम अगर मात्र यही
काम कर रहे हो तो तुम बुद्ध हो। अगर तुम झेन सदगुरूओं के पास जाओ और उसने पूछो कि आप क्या करते है? आपकी साधना क्या है? ध्यान क्या है? तो वे कहेंगे: जब नींद आती है तो हम सो जाते है। जब भूख लगती है तो हम भोजन करते है। बस यही हमारी साधना है और कोई साधना नहीं है।

लेकिन यह बहुत कठिन है। हालांकि आसान मालूम होती है। अगर भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करो, अगर बैठे हुए तुम सिर्फ बैठो और कुछ न करो। कोई विचार न हो, अगर तुम वर्तमान क्षण के साथ रह सको, उससे हटो नहीं, अगर तुम वर्तमान क्षण में डूब सको, न कोई अतीत हो, न कोई भविष्य हो, अगर वर्तमान क्षण ही एकमात्र अस्तित्व हो, तो तुम बुद्ध हो। तब यही मन बुद्ध मन बन जाता है।

तो जब तुम्हारा मन भटकता है तो उसे रोकने की चेष्टा मत करो, बल्कि आकाश को स्मरण करो। जब मन भटकता है तो उसे रोको मत। उसे किसी बिंदु पर लाने की, एकाग्र करने की चेष्टा मत करो। नहीं, उसे भटकने दो। लेकिन भटकाव पर बहुत अवधान मत दो—न पक्ष में, ने विपक्ष में, क्योंकि तुम चाहे उसके पक्ष में रहो या विपक्ष में, तुम उससे बंधे रहते हो। आकाश को स्मरण करो। भटकन को चलने दो। और इतना ही कहो; ठीक है, पर चलती हुई राह है; अनेक लोग इधर-उधर चले जा रहे है। मन एक चलती हुई राह है। मैं आकाश हूं बादल नहीं।

इसी स्मरण को याद रखो। इस भाव में उतरो; इसमें ही स्थिर रहो। देर अबेर तुम देखोगें कि बादलों की गति बंद पड़ गई है। बादलों के बीच में अंतराल आने लगा है। वे अब उतने घने नहीं रहे है। उनकी गति मंद पड़ गई है। उनके पीछे का आकाश दिखाई पड़ने लगा है। अपने को आकाश की भांति अनुभव करते रहो; बादलों की भांति नहीं। देर-अबेर किसी दिन, किसी सम्यक क्षण में, जब तुम्हारी दृष्टि सचमुच भीतर लौट गई है। बादल विलीन हो जाएंगे। और तब तुम शुद्ध आकाश हो, सदा से शुद्ध, सदा से अस्पर्शित आकाश हो।

और एक बार तुमने इस कुंआरी पन को जान लिया तो फिर बादलों में, बादलों के संसार में वापस आ सकते हो। तब संसार का अपना ही सौदर्य है, तब तुम इसमे रह सकते हो। लेकिन अब तुम मालिक हो।

संसार बुरा नहीं है। मालिक की तरह संसार समस्या नहीं है। जब तुम ही मालिक हो तो तुम उसमें रह सकते हो। तब संसार का अपना ही सौदर्य है; वह सुंदर है। प्यारा है। लेकिन तुम उसे सौंदर्य को, उस माधुर्य को अपने भीतर मलिक होकर ही जान सकते हो।

□□□ □□□□□□□□ □□□□ □□□□□□, □□□-□□□ □□□□□□□-39

□□□□□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□—63 (□□□)

‘’□□ □□□□ □□□□□□□□-□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□□□ □□□ □□, □□□ □□□ □□□ □□□□□ □□□□‘’

तुम अपनी आँख के द्वारा देखते हो। ध्यान रहे, तुम अपनी आँख के द्वारा देखते हो। आंखे नहीं देख सकती। उनके द्वारा तुम देखते हो। द्रष्टा पीछे छिपा है। भीतर छिपा है; आंखें बस द्वार है। झरोखे है। लेकिन हम सदा सोचते है कि हम आँख से देखते है। हम सोचते है कि हम कान से सुनते है। कभी किसी ने कान से नहीं सुना है। तुम कान के द्वारा सुनते हो। कान से नहीं। सुननेवाला पीछे है। कान तो रिसीवर है।

मैं तुम्हें छूता हूं, मैं बहुत प्रेमपूर्वक तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं। यह हाथ नहीं है। जो तुम्हें छूता है। यह मैं हूं, जो हाथ के द्वारा तुम्हें छू रहा है। हाथ यंत्र है। और स्पर्श से बचना भी दो भांति का है। एक, जब मैं सच ही तुम्हें स्पर्श करता हूं। और दूसरा, जब मैं स्पर्श से बचना चाहता हूं। मैं तुम्हें छूकर भी स्पर्श से बच सकता हूं। मैं अपने हाथ में न रहूँ। मैं हाथ से अपने को अलग कर सकता हूं।

इसे प्रयोग करके देखो, तुम्हें एक भिन्न अनुभव होगा। एक दूरी का अनुभव होगा1 किसी पर अपना हाथ रखो और अपने को अलग रखो; यहां सिर्फ मुर्दा हाथ होगा। तुम नहीं। और अगर दूसरा व्यक्ति संवेदनशील है तो उसे मुर्दा हाथ का एहसास हो जायेगा। वह अपने का अपमानित महसूस करेगा, आपके इस व्यवहार से। क्योंकि तुम उसे धोखा दे रहे हो। तुम छूने का दिखाव कर रहे हो।
स्त्रियां इस मामले में बहुत संवेदनशील है; तुम उन्हें धोखा नहीं
दे सकते हो। स्पर्श के प्रति, शारीरिक स्पर्श के प्रति वे ज्यादा सजग है; वे जान जाती है। हो सकता है पति मीठी-मीठी बातें कर रहा हो। वह फूल ले आया हो। और कह रहा हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। लेकिन उसका स्पर्श कह देगा कि वह वहां नहीं है। और स्त्रियों को सहज बोध हो जाता है। कि कब तुम उनके साथ हो और कब नहीं। अगर तुम अपने मालिक नहीं हो तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। अगर तुम्हें अपने ऊपर मलकियत नहीं है तो तुम उन् हें धोखा नहीं दे सकते। और जो अपना मालिक है वह पति होना नहीं चाहेगा। वह कठिनाई है। तुम जो भी कहोगे तुम्हारा स्पर्श उसे झुठला देगा।
यह सूत्र कहता है कि इंद्रियाँ द्वार भर है—एक माध्यम, एक यंत्र,
एक रिसीविंग स्टेशन और तुम उनके पीछे हो।
‘’जब किसी इंद्रिय-विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्
थित होओ।‘’
संगीत सुनते हुए अपने को कान में मत खो दो। मत भूला दो; उस चैतन्य
को स्मरण करो। जो पीछे छिपा है। होश रखो। किसी को देखते हुए इस विधि को प्रयोग करो। तुम यह प्रयोग मुझे देखते हुए अभी और यही कर सकते हो। क्या हो रहा है?
तुम मुझे आँख से देख सकते हो। और जब मैं कहता हूं आँख से तो उसका मतलब है कि तुम्हें इसका बोध नहीं है कि तुम आँख के पीछे छिपे हो। तुम मुझे आँख के द्वारा देख सकते हो। आँख एक यंत्र है। तुम आँख के पीछे खड़े हो। आँख के द्वारा देख रहे हो। जैसे किसी खिड़की या ऐनक के द्वारा देखता है।
तुमने बैंक में किसी क्लर्क को अपने ऐनक के ऊपर से देखते हुए देखा होगा। ऐनक उसकी नाक पर उतर आयी है। और वह देख रहा है। उसी ढंग से मुझे देखो, मेरी तरफ देखो, ऐसे देखो जैसे आँख से ऊपर से देखते हो। मानो तुम् हारी आंखें सरककर नीचे नाक पर आ गई हों और तुम उनके पीछे से मुझे देख रहे हो। अचानक तुम्हें गुणवत्ता में फर्क मालूम पड़ेगा तुम्हारा परिप्रेक्ष्य बदलता है। आंखे महज द्वार बन जाती है। और यह ध्यान बन जाता है।
सुनते समय कानों के द्वारा मात्र सुनो और अपने आंतरिक केंद्र के प्रति जागे रहो। स्पर्श करते हुए हाथ के द्वारा मात्र छुओ और आंतरिक केंद्र को स्मरण रखो जो पीछे छिपा है। किसी भी इंद्रिय से तुम्हें आंतरिक केंद्र की अनुभूति हो सकती है। और प्रत्येक इंद्रिय आंतरिक केंद्र तक जाती है। उसे सूचना देती है।
यहीं कारण है कि जब तुम मुझे देख और सुन रहे हो—जब तुम आँख के द्वारा देख रहे हो और कान के द्वारा सुन रहे हो—तो तुम जानते हो कि तुम उसी व्यक्ति को देख रहे हो। जिसे सुन भी रहे हो। अगर मेरे शरीर में कोई गंध है। तो तुम्हारी नाक उसे भी ग्रहण करेगी। उस हालत में तीन-तीन इंद्रियाँ एक ही केंद्र को सूचना दे रही है। इसी से तुम संयोजक कर पाते हो। अन्यथा संयोजन कठिन होता।
अगर तुम्हारी आंखे ही देखती है और कान ही सुनते है तो यह जानना कठिन होता है कि तुम उसी व्यक्ति को सुन रहे हो जिसे देख रहे हो। या दो भिन्न व्यक्तियों को देख और सुन रहे हो; क्योंकि दोनों इंद्रियाँ भिन्न

है। और वे आपस में नहीं मिलती है। तुम्हारी आंखों को तुम्हारे कान का पता नहीं है। और तुम्हारे कान को तुम्हारी आंखों का कुछ पता नहीं है। वे एक दूसरे को नहीं जानते है। वे आपस में कभी मिले नहीं है। उनका एक दूसरे से परिचय भी नहीं है। तो फिर सारा समन्वय, सारा संयोजन कैसे घटित होता है?
कान सुनते है, आंखें देखती है, हाथ छूते है, नाक सूँघती है। और अचानक तुम्हारे भीतर कहीं कोई जान जाता है कि यह वही आदमी है जिसे में सुन रहा हूं। देख रहा हूं। सभी इंद्रियाँ इस ज्ञाता को ही सूचना देती है। और इस ज्ञाता में, इस केंद्र में सब कुछ सम्मिलित होकर, संयोजित होकर एक हो जाता है। यह चमत्कार है।
मैं एक हूं; तुम्हारे बहार से मैं एक हूं। मेरी शरीर, मेरे शरीर की उपस्थिति, उसकी गंध मेरा बोलना,सब एक है। लेकिन तुम्हारी इंद्रियाँ मुझे विभाजित कर देंगी। तुम्हारे कान मेरे बोलने की खबर देंगे। तुम् हारी नाक मेरी गंध की खबर देगी। और तुम्हारी आंखें मेरी उपस्थिति की खबर देंगी। वे इंद्रियाँ मुझे टुकड़ों में बांट देंगी। लेकिन फिर तुम् हारे भीतर कहीं पर मैं एक हो जाऊँगा। जहां तुम्हारे भीतर में एक होता है, वह तुम्हारे होने का केंद्र है। वह तुम्हारा बोध है। चैतन्य है। तुम उसे बिलकुल भूल गए हो। यह विस्मरण ही अज्ञान है। और बोध का चैतन्य आत्मा ज्ञान को द्वार खोलता है। तुम और किसी उपाय से अपने को नहीं जान सकते हो।
‘’जब किसी इंद्रिय-विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो। उसी होश में स्
थित होओ।‘’
उसी बोध में रहो; उसी बोध में स्थित रहो। होश पूर्ण होओ।
आरंभ में यह कठिन है। हम बार-बार सो जाते है। और आँख के द्वारा देखना कठिन मालूम पड़ता है। आँख से देखना आसान है। आरंभ में थोड़ा तनाव अनुभव होगा और तुम आँख के द्वारा देखने की चेष्टा करोगे। और न केवल तुम तनाव अनुभव करोगे। वह व्यक्ति भी तनाव अनुभव करेगा जिसे तुम देखोगें। अगर तुम किसी आँख के द्वारा देखोगें तो उसे लगेगा कि तुम अनुचित
रूप से दखल दे रहे हो। कि तुम उसके साथ अभद्र व्यवहार कर रहे हो। तुम अगर आँख के द्वारा देखोगें तो दूसरे को अचानक अनुभव होगा कि तुम उसके साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे हो। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि बेधक बन जाएगी। तुम्हारी दृष्टि गहराई में उतर जाएगी। अगर यह दृष्टि तुम्हारी गहराई से आती है। वह उसकी गहराई में प्रवेश कर जाएगी।
यही कारण है कि समाज ने एक बिल्ट-इन सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी
है। समाज कहता है कि जब तक तुम किसी के प्रेम में नहीं हो, उसे बहुत घूरकर मत देखो। अगर तुम प्रेम में हो तो देख सकते हो। तब तुम उसके अंतर्तम तक प्रवेश कर सकते हो। क्योंकि वह तुमसे भयभीत नहीं है। तब दूसरा तुम्हारे प्रति नग्न हो सकता है। समग्रता: नग्न हो सकता है। वह तुम्हारे प्रति खुला हो सकता है। लेकिन साधारणत: अगर तुम प्रेम में नहीं हो। तो किसी को घूरने की, बेधक दृष्टि देखने की मनाही है।
भारत में हम ऐसे आदमी को, जो दूसरे को घूरता है, लुच्चा कहते है। लुच्चा का अर्थ है, देखने वाला। लुच्चा शब्द लोचन से आता है। लुच्चा का अर्थ हुआ कि जो आँख ही बन गया है। इसलिए इस विधि का प्रयोग किसी अपरिचित पर मत करना। वह तुम्हें लुच्चा समझेगा। पहले इस विधि का प्रयोग ऐसे विषयों के साथ करो। जैसे फूल है, पेड़ है, रात के तारे है। वे इसे अनुचित दखल नहीं मानेंगे। वे एतराज नहीं उठाएंगे। बल्कि वे इसे पंसद करेंगे। उन्हें बहुत अच्छा लगेगा। वे इसका स्वागत करेंगे।
तो पहले उनके साथ प्रयोग करो और फिर अपनी पत्नी, अपने बच्चे, अपने प्रियजनों के साथ। कभी अपने बच्चे को गोद में उठा लो और उसको आँख के

द्वारा देखो। बच्चा इसे समझेगा , सराहेंगे। वह अन्य किसी से भी ज्यादा समझेगा। क्योंकि अभी समाज ने उसे पंगु नहीं बनाया है। विकृत नहीं किया है। वह अभी सहज है। तुम अगर उसे आँख के द्वारा देखोगें तो उसे प्रगाढ़ प्रेम की अनुभूति होगी। उसे तुम्हारी उपस्थिति का एहसास होगा।

अपने प्रेमी या प्रेमिका को ऐसे देखो। और फिर जैसे -जैसे तुम्हें इस बात की पकड़ आएगी। जैसे -जैसे तुम इसमें कुशल होगे वैसे -वैसे तुम धीरे -धीरे दूसरों को भी देखने में समर्थ हो जाओगे। क्योंकि तब किसी को पता नहीं चलेगा कि तुमने इस गहराई से उसे देखा । और जब अपनी इंद्रियों के पीछे सतत सजग होकर खड़े होगे की कला तुम्हारे हाथ आ जायेगी। तो इंद्रियाँ तुम्हें धोखा न दे पाएंगी। अन्यथा इंद्रियाँ धोखा देती है। ऐसे संसार में , जो सिर्फ भासता है। इंद्रियों ने तुम्हें उसे सच मानने का धोखा दिया है।

अगर तुम इंद्रियों के द्वारा देख सके। और सजग रह सके तो धीरे -धीरे संसार माया मालूम पड़ने लगेगा। स्वप्नवत मालूम पड़ने लगेगा। और तब तुम उसके तत्व में उसके मूल तत्व में प्रवेश कर सकोगे। यह मूल तत्व ही ब्रह्म है।

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-41

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—64 ([illegible])

‘‘[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]’’

यह विधि देखने में बहुत सरल मालूम पड़ती है। छींक के आरंभ में , भय में , चिंता में , भूख के पहले या भूख के अंत में सतत बोध रखो।

बहुत सी बातें समझने जैसी है। छींकने जैसे बहुत सरल कृत्य भी उपाय की तरह काम में लाए जा सकते है। क्योंकि वे कितने ही सरल दिखे , दरअसल वे बहुत कठिन और जटिल होते है। और जो आंतरिक व्यवस्था है , वह बहुत नाजुक चीज है।

जब भी तुम्हें लगे कि छींक आ रही है , सजग हो जाओ। संभव है कि सजग होने पर छींक न आए , चली जाए। कारण यह है कि छींक गैर -स्वैच्छिक चीज है। अचेतन ,गैर -स्वैच्छिक। तुम स्वेच्छा से , चाह कर नहीं छींक सकते हो। तुम जबरदस्ती नहीं छींक सकते हो। चाह कर कैसे छींक सकते हो ?

मनुष्य कितना असहाय है। तुम चाह कर एक छींक भी नहीं ला सकते हो। तुम कितनी ही चेष्टा करो। तुम छींक नहीं ला सकते हो। एक मामूली सी छींक भी तुम चाह कर नहीं पैदा कर सकते हो। यह गैर -स्वेच्छा से , चाह कर नहीं आती। यह तुम्हारे मन के कारण नहीं घटित होती। यह तुम्हारे समग्र संस्थान से , समग्र शरीर से घटित होती है।

और दूसरी बात कि जब तुम छींक के आने के पूर्व सजग हो जाते हो —तुम उसे ला नहीं रहे हो। लेकिन जब वह अपने आप ही आ रही हो। तो केवल तुम सजग हो जाते हो। तो संभव है कि वह न आए। क्योंकि तुम उसकी प्रक्रिया में कुछ नयी चीज जोड़ रहे हो। सजगता जोड़ रहे हो। वह खो जा सकती है। लेकिन जब छींक खो जाती है। और तुम सावचेत रहते हो , तो एक तीसरी बात घटित होती है।

पहली तो बात कि छींक गैर -स्वैच्छिक है। तुम उसमें एक नयी चीज जोड़ते हो , सजगता जोड़ते हो। और जब सजगता आती है तो संभव है कि छींक न आए। अगर तुम सचमुच सजग होगे। तो वह नहीं आएगी। शायद छींक एकदम खो जाए।

तब तीसरी बात घटित होती है। जो ऊर्जा छींक की राह से निकलने वाली थी वह अब कहां जाएगी।
वह ऊर्जा तुम्हारी सजगता से जुड़ जाती है। अचानक बिजली सी कौंधती
है, और तुम ज्यादा सावचेत हो जाते हो। जो ऊर्जा छींक बनकर बाहर निकलने जा रही थे वही ऊर्जा तुम्हारी सजगता में जुड़ जाती है। और तुम अचानक अधिक सावचेत हो जाते हो। बिजली की उस कौंध में बुद्धत्व भी संभव है। यही कारण है कि मैं कहता हूं कि ये चीजें इतनी सरल है कि व्यर्थ मालूम पड़ती है। उनके द्वारा होने वाली उपलब्धियों की चर्चा असंभव सी लगती है। सिर्फ छींक के जरिए कोई बुद्ध कैसे हो सकता है? लेकिन छींक सिर्फ छींक ही नहीं है; तुम भी उसमें पूरी तरह सम्मिलित हो। तुम जो भी करते हो या तुम्हें जो भी होता है, उसमें तुम भी पूरी तरह मौजूद होते हो। इसे फिर से देखा,इसका निरीक्षण करो। जब भी छींक आती है तो उसमें तुम समग्रता: होते हो—पूरे शरीर से होते हो, पूरे मन से होते हो। छींक सिर्फ तुम्हारी नाक में ही घटित नहीं होती। तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं उसमे सम्मिलित रहता है। एक सूक्ष्म कंपन, एक सूक्ष्म सिहरन पूरे शरीर पर फैल जाती है। और उसके साथ पूरा शरीर एकाग्र हो जाता है। और जब छींक तो सारा शरीर एक राहत महसूस करता है। विश्राम अनुभव करता है।
लेकिन छींक के साथ सजगता रखनी कठिन है। और यदि तुम उसमें सजगता जोड़ दोगे तो छींक नहीं आएगी। और यदि छींक आए तो जानना कि तुम सजग नहीं हो।
तो तुम्हें सजग रहना पड़ेगा।
‘’छींक के आरंभ में....।‘’
क्योंकि छींक यदि आ ही गयी तो कुछ नहीं किया जा सकता है। तीन यदि
चल चुका तो तुम अब उसे बदल नहीं सकते हो। यंत्र चालू हो गया। ऊर्जा अब बाहर जाने के रास्ते पर है; उसे अब रोका नहीं जा सकता है। क्या तुम छींक को बीच में रोक सकते हो। तुम उसे बीच में नहीं रोक सकते हो।
आरंभ में ही सजग हो जाओ। जि क्षण तुम्हें उतैजना अनुभव हो, लगे की छींक आने वाली है। तभी सावचेत हो जाओ। अपनी आंखे बंद कर लो और ध्यानस्थ हो जाओ। अपनी समग्र चेतना को उस बिंदू पर ले जाओ जहां छींक की उत्तेजना अनुभव होती हो। ठीक आरंभ में ही सजग हो जाओ। छींक गायब हो जायेगी। और चूंकि छींक में तुम्हारा सारा शरीर सम्मिलित है, पूरा संयंत्र सम् मिलित है—और तुम उसी क्षण से सजग हो—वहां मन नहीं होगा। विचार नही होगा। ध्यान नहीं होगा। छींक में विचार ठहर जाते है।
यही कारण है कि अनेक लोग सुँघनी पसंद करते है। यह उन्हें निर्भार
कर देता है। उनका मन ज्यादा विश्राम पूर्ण हो जाता है। क्यों? क्योंकि क्षण भर के लिए विचार ठहर जाते है। सुँघनी उन्हें निर्विचार की एक झलक देती है। सुँघनी सूंघने से जो छींक आती है। उसमे वह मन नी रह जाते है। शरीर ही हो जाते है। एक क्षण के लिए सिर विदा हो जाता है। और उन्हें बहुत अच्छा लगता है।
अगर तुम सुँघनी के आदी हो जाओ तो उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता
है। यह धूम्रपान से भी ज्यादा गहरा व्यसन है; धूम्रपान उसके सामने कुछ भी नहीं है। सुँघनी ज्यादा गहरे जाती है। क्योंकि धूम्रपान सचेतन है और छींक अचेतन हे। इसलिए धूम्रपान छोड़ने से भी ज्यादा कठिन सुँघनी छोड़ना है। और धूम्रपान को बदलकर कोई दूसरा व्यसन ग्रहण किया जा सकता है। धूम्रपान के पर्याय है, लेकिन सुँघनी के पर्याय नहीं है। कारण यह है कि छींक सच में शरीर है, धूम्रपान के पर्याय है। लेकिन सुँघनी के पर्याय नहीं है। कारण यह है कि छींक सच में शरीर की एक अनूठी घटना है। इसके जैसी दूसरी चीज केवल काम कृत्य है, संभोग है।

शरीर शास्त्र की भाषा में जो लो सोचते है वे कहते है, कि संभोग कमेंद्रिय द्वारा छींकने जैसा ही है। और दोनों में समानता है। यद्यपि यह शत-प्रतिशत सही नहीं है। क्योंकि संभोग में और भी बहुत सी बातें सम् मिलित है। लेकिर आरंभ में,सिर्फ आरंभ में समानता है। तुम कुछ चीज नाक से बाहर निकलते हो और राहत महसूस करते हो। वैसे ही कुछ चीज कमेंद्रिय से बाहर निकालते हो और राहत अनुभव करते हो। दोनों ही कृत्य गैर-स्वैच्छिक है।
तुम संभोग में संकल्प के द्वारा नहीं उतर सकते हो। अगर कोशिश करोगे तो निष्फलता हाथ आयेगी। विशेषकर पुरूष तो जरूर निष्फल होगे। क् योंकि उनकी कमेंद्रिय को कुछ करना पड़ता है। पुरूष की कमेंद्रिय सक्रिय है। लेकिन तुम चाह कर उसे सक्रिय नहीं कर सकते हो। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही असंभव होता जायेगा। यह अपने आप होता है। इसे तुम सचेत होकर नहीं कर सकते हो।
यही कारण है कि पश्चिम में संभोग एक समस्या बन गया है। पिछली आधी
सदी के दौरान पश्चिम में काम संबंधी ज्ञान बहुत विकसित हुआ है। और हर एक आदमी इसके संबंध में इतना सचेत है कि संभोग अधिकाधिक असंभव हो रहा है। अगर तुम सचेत हो तो संभोग असंभव हो जाएगा। अगर कोई व्यक्ति संभोग
के समय सचेत रहे, तो वह जितना सचेत होगा उतना ही उसके लिए संभोग कठिन होगा। उसकी जननेंद्रिय में उत्तेजना ही नहीं होगी। उसे प्रयास से नहीं किया जा सकता है। और तुम जितना अधिक प्रयास करोगे उतनी ही मुश्किल हो जाएगी।
इस विधि का उपयोग काम-संभोग में भी किया जा सकता है। आरंभ में हीं,
जब तुम्हें उतैजना आती मालूम हो, लेकिन वह अभी आयी नहीं हो, सिर्फ उसकी तरंगें मालूम पड़ती हो। तभी तुम सावचेत हो जाओ। तरंगें खो जायेगी। और वही ऊर्जा सजगता में गति कर जाएगी।
तंत्र ने इसका उपयोग किया है। तंत्र ने इसका कई ढंग से उपयोग किया
है। एक सुंदर नग्न स्त्री ध्यान के विषय में रूप में बैठी होगी। और साधक उन नग्न स्त्री के सामने बैठकर उसके शरीर उसके रूप और अंग-सौष्ठव पर ध् यान करेगा। और अपने काम-केंद्र पर उतैजना उठने की प्रतीक्षा करेगा। और ज्यों ही जरा सी उत्तेजना महसूस होगी। वह अपनी आंखें बद कर लेगा। और उस स्त्री को भूल जायेगा। वह साध आंखें बंद कर लेगा और उत्तेजना के प्रति सजग हो जायेगा। और तब काम उर्जा सजगता में रूपांतरित हो जाती है। उसे नग्न स्त्री पर तभी तक ध्यान करना है जहां उत्तेजना महसूस हो। उसके बाद उसे आँख बद कर अपनी उत्तेजना पर आ जाना है। और वहीं सजग रहना है। ठीक वैसे ही जैसे छींक के प्रति किया जा सकता है।
और यह कौंध सी क्यों घटित होती है? कारण यह है कि वहां मन नहीं है। बुनियादी बात यह है कि अगर मन नहीं है। और तुम सजग हो, तो सतोरी घटित होगी;तुम्हें समाधि की पहली झलक मिलेगी।
विचार ही बाधा है। किसी भी ढंग से यदि विचार विलीन हो जाए तो बात
बन जाती है। लेकिन सजगता के लिए विचार का विदा होना जरूरी है। विचार नींद में भी विलीन हो जाते है। तुम्हारे मूर्छित हो जाने पर भी विचार ठहर जाते है। इन हालातों में भी विचार विदा हो जाता है। लेकिन तब विचार के पीछे जो तत्व छिपा है उसके प्रति सजगता नहीं रहती है। इसलिए मैं ध् यान को निर्विचार चेतना कहता हूं। तुम निर्विचार और मूर्च्छित एक साथ हो सकते हो। लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है। और तुम विचार के साथ सचेतन भी हो सकते हो; वह तुम हो ही। इन दो चीजों को, चेतना और निर्विचार को इकट्ठा करो; जब वे मिलते है तो ध्यान घटित होता है,ध्यान का जन्म होता है।

और तुम इसका प्रयोग छोटी-छोटी चीजों के साथ भी कर सकते हो। सच तो
यह है कि कोई भी चीज छोटी नहीं है। एक छींक भी अस्तित्वगत घटना है। अस् तित्व में कुछ भी बड़ा नहीं है, कुछ भी छोटा नहीं है। एक नन्हा सा परमाणु भी पूरे जगत को मिटा सकता है। और वैसे ही छींक है। जो कि अत्यंत छोटी चीज है। तुम्हें रूपांतरित कर सकती है।
तो चीजों को छोटी बड़ी की तरह मत देखो। न कुछ बड़ा है और न कुछ छोटा। अगर तुम्हारे पास गहरे देखने की दृष्टि है तो बहुत छोटी चीजें भी महत्वपूर्ण हो सकती है। परमाणुओं के बीच में ब्रह्मांड छिपे है। और तुम नहीं कह सकते हो कि परमाणु और बह्मांड़ में कौन बड़ा है। और कौन छोटा है। एक अकेला परमाणु अपने आप में ब्रह्मांड है, और बड़े से बड़ा बह्मांड़ भी परमाणुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
‘’छींक के आरंभ में, भय में......।‘’
जब तुम भयभीत अनुभव करते हो और भय प्रवेश करता है, जब तुम भय को प्रवेश करते देखो, ठीक उसी क्षण सजग हो जाओ। और भय विलीन हो जाएगा। बोध के साथ भय नहीं रह सकता है। जब तुम सावचेत हो तो भय भीत कैसे हो सकते? तुम तभी भयभीत होते हो जब होश खो देते हो। सच में कायर वह नह है जो डरा हुआ है; कायर वह है जो सोया हुआ है। और बहादुर वह है जो भय के क्षणों में बोध को जगा लेता है। और तब भय विदा हो जाता है।
जापान में वे योद्धा ओर को सजगता का प्रशिक्षण देते है। उनका बुनियादी प्रशिक्षण सजगता है। शेष सब चीजें गौण है। तलवार चलाना, तीर चलाना, सब गौण है।
झेन सदगुरू रिंझाई के संबंध में कहा जाता है कि वह कभी भी तीर चलाने में, तीन को ठीक निशाने पर मारने में सफल नहीं हुआ। उनका तीर सदा ही चूकता रहा। और वह महान धनुर्विद माने जाते थे।
तो पूछा जाता है कि रिंझाई सबसे महान धनुर्विद कैसे कहलाए। जब कि
वे कभी लक्ष्य पर नहीं पहुंचे और सदा निशाना चूकते रहे। रिंझाई को मानने वाले कहते है: ‘’अंत नहीं आरंभ महत्वपूर्ण है। हम इसमे उत्सुक नहीं है कि तीर लक्ष्य पर पहुंच जाए। हम उसमें उत्सुक है जहां से तीन अपनी यात्रा शुरू करता है। हम रिंझाई में उत्सुक है। जब तीन धनुष से निकलता है तो वे सजग है; बस पर्याप्त है। परिणाम से कोई लेना-देना नहीं है।‘’
यह सूत्र कहता है: ‘’भय में चिंता में.....।‘’
जब तुम चिंता अनुभव करो, बहुत चिंताग्रस्त होओ। तब इस विधि का प्रयोग करो। इसके लिए क्या करना होगा? जब साधारणत: तुम्हें चिंता घेरती है। तब तुम क्या करते हो? सामान्यत: क्या करते हो? तुम उसका हल ढूंढते हो; तुम उसके उपाय ढूंढते हो। लेकिन ऐसा करके तुम और भी चिंताग्रस्त हो जाते हो, तुम उपद्रव को बढ़ा लेते हो। क्योंकि विचार से चिंता का समाधान नहीं हो सकता। विचार के द्वारा उसका विसर्जन नहीं हो सकता। कारण यह है कि विचार खुद एक तरह कि चिंता है। विचार करके दलदल और भी धँसते जाओगे। यह विधि कहती है। कि चिंता के साथ कुछ मत करो;सिर्फ सजग होओ। बस सावचेत रहो। मैं तुम्हें एक दूसरे झेन सदगुरू बोकोजू के संबंध मे एक पुरानी कहानी सुनाता हूं। वह एक गुफा में अकेला रहता था। बिलकुल अकेला लेकिन दिन में या कभी-कभी रात में भी, वह जोरों से कहता था, ‘’बोकोजू।‘’ यह उसका अपना नाम था और फिर वह खुद कहता, ‘’हां महोदय, मैं मौजूद हूं।‘’ और वहां कोई दूसरा नहीं होता था। उसके शिष्य उससे पूछते थे, ‘’क्यों आप अपना ही नाम पुकारते हो। और फिर खुद कहते हो, हां मौजूद हूं?
बोकोजू ने कहा, जब भी मैं विचार में डूबने लगता है। तो मुझे सजग होना पड़ता है। और इसीलिए मैं अपना नाम पुकारता है। बोकोजू। जिस क्षण

मैं बोकोजू कहता हूं,और कहता हूं कि हां महाशय, मैं मौजूद हूं, उसी क्षण विचारण, चिंता विलीन हो जाती है।
फिर अपने अंतिम दिनों में, आखरी दो-तीन वर्षों में उसके कभी अपना
नाम नहीं पुकारा, और न ही यह कहा कि हां, मैं मौजूद हूं। तो शिष्यों ने पूछा, गुरूदेव, अब आप ऐसा क्यों करते है। बोकोजू ने कहा: ‘’ अब बोकोजू सदा मौजूद रहता है। वह सदा ही मौजूद है। इसलिए पुकारने की जरूरत रही। पहले मैं खो जाया करता था। और चिंता मुझे दबा लेती थी। आच्छादित कर लेती थी। बोकोजू वहां नहीं होता था। तो मुझे उसे स्मरण करना पड़ता था। और स्मरण करते ही चिंता विदा हो जाती है।
इसे प्रयोग करो। बहुत सुंदर विधि है। अपने नाम का ही प्रयोग करो।
जब भी तुम्हें गहन चिंता पकड़े तो अपना ही नाम पुकारों—बोकोजू या और कुछ, लेकिन अपना ही नाम हो—और फिर खुद ही कहो कि हां महोदय, मैं मौजूद हूं। और तब देखो कि क्या फर्क है। चिंता नही रहेगी। कम से कम एक क्षण के लिए तुम्हें बादलों के पार की एक झलक मिलेगी। और फिर वह झलक गहराई जा सकती है1 तुम एक बार जान गए कि सजग होने पर चिंता नहीं रहती। विलीन हो जाती है। तो तुम स्वयं के संबंध में, अपनी आंतरिक व्यवस्था के संबंध में गहन बोध को उपलब्ध हो गए।
‘’खाई-खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख
के आरंभ में और भूख के अंत में। सतत बोध रखो।‘’
किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। भूख लगी है, सजग हो जाओ। जब तुम्
हें भूख महसूस होती है। तो तुम क्या करते हो। तुम्हें क्या होता है? जब तुम्हें भूख लगती है तो तुम उसे कभी ऐसे नहीं देखते कि तुम्हें कुछ हो रहा है; तुम भूख ही हो जाते हो। तब तुम समझते हो कि मैं भूख हूं। ऐसा ही लगता है कि मैं भूख हूं। लेकिन तुम भूख नहीं हो। तुम्हें सिर्फ भूख का बोध होता है। भूख कहीं परिधि पर घटित होती है। और तुम केंद्र हो; तुम्हें भूख घटित हो रही है। तुम तब भी थे जब भूख नहीं थी। और तुम जब भी रहोगे जब भूख नहीं होगी। भूख एक घटना है; वह तुम्हें घटित हो रही है। उसके प्रति सजग होओ। तब तुम भूख से तादात्म्य नहीं करोगे। अगर तुम्हें भूख लगी है तो उसके प्रति सजग होओ। भूख उतनी ही तुम्हें दूर मालूम पड़ेगी। और जितनी सजगता कम होगी भूख उतनी ही पास मालूम पड़ेगी। और अगर तुम बिलकुल सजग नहीं हो तो तुम ठीक केंद्र पर अनुभव करोगे कि मैं भूख हूं। सजग होते ही भूख तुम से दूर हट जाती है। भूख वहां है और तुम वहां हो। भूख विषय है; तुम साक्षी हो।
इसी विधि के लिए उपवास का प्रयोग किया जा सकता है। और जैन सिर्फ उपवास कर रहे है, इस विधि के बिना ही उपवास कर रहे है। तब यह मूढ़ता है। तब तुम सिर्फ भूखे मर रहे हो। और इससे कोई लाभ नहीं मिल सकता है। तुम महीनों भूखे रह सकते हो। और भूख से जुड़े रह सकते हो। कि मैं भूख हूं। तब वह व्यर्थ है, हानिकर है।
उपवास करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम रोज ही भूख को अनुभव कर सकते
हो। लेकिन कठिनाइयां है। और इसीलिए उपवास उपयोगी हो सकता है। सामान्यत: हम भूख लगने के पहले ही अपने को भोजन से भर लेते है। आधुनिक संसार मे भूख लगने की जरूरत ही नहीं पड़ती है। तुम्हारे भोजन के समय निश्चित है। और तुम भोजन कर लेते हो। तुम कभी नहीं पूछते कि शरीर को भूख लगी है। या नहीं; निश्चित समय पर तुम भोजन कर लेते हो। नहीं तुम कहोगे की जब एक बजता है तो मुझे भूख लग जाती है। वह झूठी भख हो सकती है। वह इसलिए लगती है क् योंकि यह तुम्हारे खाने का समय है, एक बजा है। किसी दिन एक खेल करो; अपनी पत्नी या अपने पति को कहो कि घड़ी का समय बदल दे। अभी बाहर बजा है और घड़ी एक का समय बता रही है। तुम्हें तुरंत भूख लग जाती है। तुम्हें घड़ी

देख कर भूख लगती है। यह कृत्रिम भूख है। झूठी भूख है ; यह भूख सच्ची नहीं है।

इसीलिए उपवास सहयोगी हो सकता है। अगर तुम उपवास करोगे तो दो तीन दिन तक झूठी भूख मालूम होगी। तीसरे या चौथे दिन के बाद ही सच्ची भूख का पता चलेगा। तब वह मांग तुम्हारे शरीर की होगी। मन की नहीं। जग मन मांग करता है। तो वह झूठी मांग है , शरीर की मांग ही सच्ची होती है। और जब तुम सच्ची भूख के प्रति सजग होते हो तो अपने शरीर से सर्वथा भिन्न हो जाते हो। भूख एक शारीरिक घटना है। और जब एक बार तुम जान लेते हो कि भूख मुझसे भिन्न है , मैं उसका साक्षी हूं , तो तुम शरीर के पार चले गए।

लेकिन तुम किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। ये तो उदाहरण मात्र है। यह विधि अनेक ढंगों से प्रयोग में लाई जा सकती है। तुम अपना अलग ढंग भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन किसी एक ही चीज पर सतत प्रयोग करते रहो। अगर तुम भूख के साथ प्रयोग कर रह हो तो कम से कम तीन महीने तक भूख के साथ प्रयोग करो। तो ही तुम किसी दिन शरीर से तादात्म्य तोड़ सकेत हो। रोज -रोज विधि मत बदलो , क्योंकि विधि का गहरे जाना जरूरी है। तीन महीने के लिए किसी विधि को चुन लो और उससे लगन से लगे रहो। विधि का प्रयोग करो ; और प्रयोग जारी रखो।

और सदा स्मरण रखो कि आरंभ में बोधपूर्ण होना है। बीच में बोधपूर्ण होना बहुत कठिन होगा। क्योंकि इस तादात्म्य के स्थापित होते ही कि मैं भूखा हूं। तुम उसे फिरा बदल नहीं सकोगे। मन के तल पर तुम बदलाहट कर सकत हो , तुम कह सकते हो कि नहीं , मैं भूख नहीं हूं , साक्षी हूं। लेकिन वह झूठ होगा। वह मन ही बोल रहा है। वह तुम्हारे प्राण नहीं बोल रहे हे। और यह भी स्मरण रहे कि तुम्हें यह कहना नहीं है कि मैं भूख नहीं हूं। यह भी मन का धोखा देने का ढंग है। तुम कह सकते हो : ‘’भूख है , लेकिन मैं भूखा नहीं हूं। मैं शरीर नहीं हूं। मैं ब्रह्म हूं। ‘’

तुम्हें कुछ भी कहना नहीं है। तुम जो भी कहोगे गलत होगा। क्योंकि तुम गलत हो। यह दोहराना कि मैं शरीर हूं। किसी काम का नह है। तुम कहते रहो कि मैं शरीर हूं , क्योंकि तुम जानते हो कि मैं शरीर हूं। किसी काम का नहीं है। अगर तुम सच ही जानते हो कि मैं शरीर नहीं हूं , तो यह कहने की क्या जरूरत है। कोई जरूरत नहीं है , यह मूढ़ता मालूम होगी। बोधपूर्ण होओ,और तब उस बोध में यह भाव प्रगाढ़ होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। यह विचार नहीं होगा , भाव होगा। यह तुम्हारे सिर की नहीं , तुम्हारे पूरे प्राणों की अनुभूति होगी। तुम दूरी महसूस करोगे। कि शरीर बहुत दूर है। और मैं उससे बिलकुल भिन्न हूं। और दोनों के मिश्रण की संभावना भी नहीं है। तुम दोनों को मिला नह सकते हो। शरीर -शरीर है , पदार्थ है ; और तुम चैतन्य हो। वे दोनों साथ रह सकते है 1 लेकिन एक दूसरे में घुल मिल नहीं सकते है। उनका मिश्रण नहीं हो सकता है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-41

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—65 ([illegible])

‘’[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]‘’

यह तंत्र का एक बुनियादी संदेश है। तुम्हारे लिए यह बड़ी कठिन धारणा होगी; क्योंकि यह बिलकुल ही गैर-नैतिक धारणा है। मैं इसे अनैतिक नहीं कहूंगा। क्योंकि तंत्र को नीति-अनीति से कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र कहता है कि शुद्धि-अशुद्धि से कोई मतलब नहीं है। इसकी देशना तुम् हें शुद्ध-अशुद्धि के उपर उठने में, दरअसल विभाजन के, द्वंद्व और द्वैत के पार जाने में सहयोग देने के लिए है।
तंत्र कहता है कि अस्तित्व अखंड है, अस्तित्व एक है। और जो द्वंद्व है वह सब-स्मरण रहे, सब के सब—मनुष्य के बनाए हुए है। द्वंद्व नैतिक-अनैतिक, पाप-पूण्य ये सारी धारणाएं मनुष्य ने निर्मित की है। ये मनुष्य की मान्यताएं है, ये यथार्थ नहीं है। क्या शुद्ध है और क्या अशुद्ध है। यह तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर करता है।
नीत्से ने कहीं कहा है कि सब नैतिकता व्याख्या है।
तो कोई चीज इस देश में नैतिक हो सकती है और वही चीज पड़ोसी देश में अनैतिक कहो सकती है। एक ही चीज मुसलमान के लिए नैतिक हो सकती है और हिंदू के लिए अनैतिक हो सकती है। एक ही चीज ईसाई के लिए नैतिक और जैन के लिए अनैतिक हो सकती है। या जो चीज पुरानी पीढ़ी के लिए नैतिक था, नई पीढ़ी के लिए अनैतिक हो सकती है। यह दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह रुझान की बात है। बुनियादी रूप से ये एक मान्यता है। झूठ है। तथ्य बस तथ्य है। वह न नैतिक होता है, न अनैतिक होता है। न शुद्ध और न ही अशुद्ध। अगर विभाजन संसार को ही नहीं बाँटता है, विभाजन करने वाले को भी बांट देता है। अगर तुम बांटते हो तो उसमें तुम खुद भी बंट जाते हो। और जब तक तुम बह्म विभाजनों को नहीं भूलते,तब तक तुम अपने आंतरिक विभाजनों को अतिक्रमण नहीं कर सकते हो। जो कुछ तुम संसार के साथ करते हो, तुम उसे अपने साथ पहले ही कर लेते हो।
सिद्ध योग के महान सदगुरू नरोपा ने कहा है: ‘’इंच भर विभाजन भी किया, तो स्वर्ग और नरक अलग-अलग हो जाते है। इंच भर का विभाजन। लेकिन हम बांटते है, नाम देते है, निंदा करते है। औचित्य सिद्ध करते है। आस्तित्व के शुद्ध तथ्य को देखो। और कोई नाम मत दो, कोई लेबल मत दो। केवल तभी तंत्र की देशना को समझ सकते हो। तथ्य को भला या बुरा मत कहो। तथ्य पर अपने चित को मत उतारों। ज्यों ही तुम तथ्य पर अपनी धारणा आरोपित करते हो, तुम झूठ का निर्माण कर लेते हो। अब यह तथ्य न रहा, सत्य न रहा; यह तुम् हारा प्रक्षेपण हो गया।
यह सूत्र कहता है: ‘’अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे
लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानो।
तंत्र कहता है कि जो चीज अन्य देशनाओं के लिए बहुत शुद्ध मानी जाती है, पुण्य मानी जाती है। वह हमारे लिए पाप है। क्योंकि उनकी शुद्धता की धारणा बाँटती है; उनके लिए कुछ शुद्ध है कुछ अशुद्ध।
अगर तुम किसी को संत कहते हो तो तुमने किसी को पापी बना दिया। अब तुम्हें कहीं ने कहीं किसी न किसी को निंदित करना होगा। क्योंकि संत पापी के बिना हो नहीं सकता। अब हमारे प्रयत्नों की व्यर्थता देखो। हम पापियों को मिटाने में लगे है। और हम एक ऐसी दुनियां की आशा करते है जहां पापी नहीं होगें। सिर्फ संत होगे। यह अर्थ हीन है। क्योंकि संत पापी के बिना नहीं हो सकता। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। तुम सिक्के के एक पहलू को नहीं मिटा सकते; दोनों साथ ही रहेगें। पापी और पुण्यात्मा भी संसार में विदा हो जायेंगे। लेकिन घबराओ मत; उन्हें विदा होने दो। वे किसी मूल्य के नहीं सिद्ध हुए है।
पापी और संत एक ही व्याख्या के, जगत के प्रति एक ही दृष्टिकोण के
अंग है। यह दृष्टि कहता है कि यह शुभ है और वह अशुभ है। और तुम यह नहीं कह

सकते कि यह अच्छा है। अगर तुम यह न कहो कि यह बुरा है। शुभ की परिभाषा के लिए अशुभ जरूरी है। शुभ अशुभ पर निर्भर करता है। पुण्य पाप पर निर्भर करता है। तुम्हारे महात्मा असंभव है, वे पापियों के बिना नहीं हो सकते। उन्हें तो पापियों का अहसान मानना चाहिए; वे उनके बिना जी नहीं सकते। वे चाहे पापियों की जितनी भी निंदा क्यों न करे। वे और पापी एक ही घटना के अंग है। पापी संसार से तभी विदा होंगे जब महात्मा विदा होंगे। उनके पहल नहीं और पूण्य की धारण के बिना पाप नहीं टिक सकता है।
तंत्र कहता है कि तथ्य असली बात है; और व्याख्या झूठ है। व्याख्या
मत करो।
वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध सत्य पर थोपी गई हमारी व्याख् याएं है। हमारे दृष्टिकोण है। इसे प्रयोग करो। यह विधि कठिन है, सरल नहीं है। कारण यह है कि हम द्वैत मूलक विचारण से इतने ग्रस्त है। उसमे इतने डूबे है कि हमें इसका भी पता नहीं रहता कि हम किसकी निंदा कर रहे है। और किसको उचित कह रहे है। अगर कोई व्यक्ति यहां धूम्रपान करने लगे तो तुम सचेतन रूप से कुछ जाने बिना ही उसे निंदित कर दोगे; तुम अपने अंतस में उसकी निंदा कर डालोगे। तुम्हारी दृष्टि में निंदा हो चाहे न हो। तुमने व्यक्ति पर नजर भी नहीं डाली हो, लेकिन तुमने निंदा कर दी।
यह विधि कठिन होगी। क्योंकि हमारी इतनी गहन आदत है। प्रगाढ़ है।
तुम महज अपनी भाव-भंगिमा से, अपने बैठने-उठने से किसी को निंदित कर देते हो। किसी को सही बताते हो, और इसका होश भी नहीं रहता कि तुम क्या कर रहे हो। तुम जब किसी आदमी को देखकर मुस्कराते हो या नहीं मुस्कराते हो। जब तुम किसी को देखते हो या नहीं देखते हो, तुम उसकी उपेक्षा करते हो, तो तुम क्या कर रहे हो। तुम अपनी पंसद-नापसंद आरोपित कर रहे हो। जब तुम कहते हो कि कोई चीज सुंदर है तो तुम्हें किसी चीज को कुरूप कहना ही होगा। और यह बांटने वाली दृष्टि साथ ही साथ तुम्हें भी बांट रही है। तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति हो जाएंगे।
अगर तुम कहते हो कि कोई व्यक्ति क्रोध मे है और क्रोध बुरा है तो
तुम तब क्या करोगे। तुम कहोगे कि क्रोध बुरा है। तब समस्याएं खड़ी होंगी। क्योंकि तुम कहते हो कि यह बुरा है, मुझमें जो क्रोध है यह बुरा है। तब तुम अपने को दो व्यक्तियों में बांटने लगे। एक बुरा व्यक्ति होगा। पापी होगा। और दूसरा भला व्यक्ति होगा। महात्मा होगा। निश्चित ही, तुम अपने को भीतर का महात्मा मानोगे। और भीतर के पापी की निंदा करोगे। तुम दो में विभाजित हो गए। अब निरंतर लड़ाई चलेगी। संघर्ष होगा। अब तुम व्यक्ति न रहे, अब तुम भीड़ हो गये। तुम्हारे भीतर एक गृह युद्ध चलेगा। अब मौन गया, शांति गई। तुम तनाव और संताप से भर जाओगे। यही तुम् हारी हालत है। लेकिन तुम्हें पता नहीं है कि ऐसा क्यों है? विभाजित व्यक्ति शांत नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? तुम अपने शैतान को कहां रखोगे? तुम्हें उसे मिटाना होगा। लेकिन यह तुम ही हो; तुम उसे मिटा नहीं सकते। तुम दो नहीं हो; सच्चाई एक है, यथार्थ एक है। लेकिन अपनी बांटने वाल दृष्टि के कारण तुमने बाह्म यथार्थ को बांट दिया, और उसके अनुसार भीतरी यथार्थ भी बंट गया। इसलिए हर एक आदमी स्वयं से ही लड़ रहा है।
यह ऐसा ही है जैसे कि हम अपने ही दोनों को लड़ाएं। बायां हाथ दाएं
हाथ से लड़े। दायां हाथ बाएं हाथ से लड़े। और ऊर्जा एक ही है। और बाएं दाएं हाथों मे एक ही ऊर्जा बह रही है। मैं ही दोनों हाथों में बह रहा हूं। और एक ही संघर्ष,एक झूठा संघर्ष खड़ा कर रहा हूं। कभी में अपने बाएं हाथ को धोखा दे सकता हूं, और मेरा दायां हाथ जीत सकता है। और कभी में दाएं हाथ को हरा सकता हूं। परंतु सच में दोनों मैं ही हूं।
तो तुम कितना ही सोचो कि मेरे भीतर का संत जीत गया और शैतान हार गया,स्मरण रहे कि तुम किसी भी क्षण जगहें बदल सकते हो, और तब संत नीचे

होगा और शैतान ऊपर होगा। इससे ही भय पैदा होता है, असुरक्षा का भाव पैदा होता है; क्योंकि तुम जानते हो कि कुछ भी निश्चित नहीं है। तुम जाने हो कि इस समय मैं प्रेमपूर्ण हूं और अपनी घृणा को दबा दिया है। लेकिन तुम जानते हो कि घृणा क्षण भर में उपर आ जायेगी। और प्रेम नीचे दब जायेगा।
क्योंकि भीतर तुम दो हो।
तंत्र कहता है कि खंड मत करो। और केवल तभी तुम जीत सकते हो।
अखंड कैसे हुआ जाए? निंदा मत करो; मत कहो कि यह अच्छा है और वह बुरा
है। शुद्धता और अशुद्धता की सभी धारणाओं को विदा कर दो। संसार को देखो।
लेकिन मत कहो कि यह क्या है। अज्ञानी रहो। बहुत बुद्धिमानी मत दिखाओं। कुछ धारणा मत बनाओ। चुप रहो; न निंदा करो और न प्रशंसा। अगर तुम संसार के संबंध में मौन रह सकते हो धीरे-धीरे यह मौन तुम्हारे भीतर भी प्रवेश कर जाएगा। और अगर बाहर का विभाजन समाप्त हो जाए तो भीतर का विभाजन भी समाप्ति हो जाएगा। क्योंकि दोनों साथ ही हो सकते है। लेकिन यह बात समाज के लिए खतरनाक है। यही कारण है कि तंत्र का दमन हुआ, उसे दबाया गया। समाज के लिए यह दृष्टि खतरनाक है। कुछ भी अनैतिक नहीं है। कुछ भी नैतिक नहीं है। कुछ शुद्ध नहीं है, कुछ भी अशुद्ध नहीं है। चीजें जैसी है वैसी है। एक सच्चा तांत्रिक यह नहीं कहेगा कि चोर बुरा है; वह इतना ही कहेगा कि वह चोर है; बस। और उसे चोर कहने में उसके मन में निंदा नहीं होगी। अगर कोई कहता है कि यह आदमी महान संत है तो तांत्रिक कहेगा; हां यह संत है। लेकिन उसे संत कहने में कोई मूल्यांकन नहीं है; वह यह नहीं कहेगा कि यह अच्छा है। यह कहेगा; ठीक है, यह संत है और वह चोर है। यह कहना ऐसा ही है जैसे यह कहना कि यह गुलाब है और वह गुलाब नहीं है। यह वृक्ष बड़ा है,वह छोटा है। कि रात काली है और दिन उजला है। इसमें कोई तुलना नहीं है।
लेकिन यह खतरनाक है। समाज एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता है। समाज नहीं रह सकता। क्योंकि समाज द्वैत पर खड़ा है। इसलिए तंत्र का दमन किया गया। उसे समाज विरोधी समझा गया। तंत्र समाज-विरोधी नहीं है। बिलकुल नहीं है। लेकिन अद्वैत कि दृष्टि सामाजिक धारणाओं का अतिक्रमण कर जाती है। वह समाज विरोधी नहीं है। वह समाज का अतिक्रमण है। समाज के पार उठ जाना है।
इसे प्रयोग करो। किसी मूल्यांकन के बिना, केवल स्वाभाविक तथ्यों
के साथ, कि अमुक यह है और अमुक वह है। संसार में चलो। और धीरे-धीरे तुम् हें अपने भीतर एक अखंडता अनुभव होगी, तुम्हारे विपरीत शब्द, तुम्हारे विरोध, तुम्हारी अच्छाई-बुराई सब इकट्ठे हो जाएंगे। वे एक में मिल जाएंगे। और तुम एक इकाई बन जाओगे। तब न कुछ शुद्ध होगा और न कुछ अशुद्ध होगा। तुम यथार्थ को सीधे जानते हो।
‘’अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है।‘’
तंत्र कहता है कि जो दूसरों के लिए बुनियादी बात है वह हमारे लिए
जहर है। उदाहरण के लिए। अहिंसा पर आधारित देशनाएं है। जो कहती है कि हिंसा अशुभ है। और अहिंसा शुभ है। तंत्र कहता है कि हिंसा-हिंसा है। और अहिंसा-अहिंसा है। न कुछ बुरा है और न कुछ भला। कुछ देशनाएं ब्रह्मचर्य पर आधारित है। वे कहती है ब्रह्मचर्य शुभ है। लेकिन यह तथ्य मात्र है। इनका मूल्यों से कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा कि ब्रह्मचारी अच्छा है। और जो कामवासना में डूबा है वह बुरा है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा। चीजें जैसी है तंत्र उन्हें वैसे ही स्वीकार करता है। और क्यों? सिर्फ तुम्हारे भीतर अखंडता निर्मित करने के लिए।
यह विधि तुम्हारे भीतर एक अखंडता निर्मित करने के लिए है। तुम्
हारे भीतर एक समग्र,अखंड, द्वंद्व रहित ओर विरोध रहित सत्ता पैदा करने

के लिए है। केवल तब ही मौन संभव है। जो व्यक्ति किसी वृति से भागता है वह कभी शांत नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? और जो अपने भीतर खंडित है, स् वयं से ही लड़ रहा है। वह जीत कैसे सकता है। यह असंभव है। तुम ही दोनों हो, फिर जीत किसकी होगी? किसी कि भी जीत नहीं होगी। तुम्हारी ही हार होगी। क्योंकि लड़ने में तुम्हारी ऊर्जा नष्ट होगी।
यह विधि तुम में एक अखंडता निर्मित करेगी। मूल्यों को जाने दो; निर्णय मत लो। जीसस ने कहीं कहा है: ‘’दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में भी निर्णय न लिया जाए।‘’ लेकिन यहूदियों के लिए इसे समझना असंभव हो गया। क्योंकि यहूदियों का सारा चिंतन नैतिकता पर निर्भर है। यह शुभ है और वह अशुभ है। जीसस इस उपदेश में—कोई निर्णय मत लो। तंत्र की भाषा बोल रहे है। यदि उनकी हत्या कर दी गई, उन् हें सूली पर लटकाया गया, तो उसका कारण यह उपदेश था। उनकी दृष्टि तंत्र की दृष्टि थी: ‘’कोई निर्णय मत लो।‘’
तो मत कहो कि वेश्या बुरी है। कौन जानता है? और मत कहो कि महात्मा अच्छा है कौन जानता है? और अंतत: तो दोनों एक ही खेल के अंग है। वे एक दूसरे पर निर्भर है, परस्पर जुड़े है। इसलिए जीसस कहते है: कोई निर्णय मत लो। और यही शिक्षा इस सूत्र में है: ‘दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में निर्णय न लिया जा सके।‘
अगर तुम कोई निर्णय नहीं लेते हो, कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते हो तो, तथ्यों को वैसे ही देखते हो जैसे वे है। अपने हिसाब से उनकी व्याख्या नहीं करते हो, तो तुम्हारे संबंध में भी निर्णय नहीं लिया जाएगा।
तुम पूरी तरह रूपांतरित हो गए हो। अब कोई सत्ता तुम्हारे संबंध
में निर्णय नहीं लेगी; उसकी जरूरत न रही। तुम स्वयं दिव्य हो गए; तुम स् वयं परमात्मा हो गए।
तो साक्षी बनो, न्यायाधीश नहीं।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-43

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—66 (ओशो)

‘मित्र और अजनबी के प्रति, मान और अपमान में, असमता और समभाव रखो।’
‘असमता के बीच समभाव रखो।’ यह आधार है। तुम्हारे भीतर क्या घटित हो
रहा है। दो चीजें घटित हो रही है। तुम्हारे भीतर कोई चीज निरंतर वैसी ही रहती है; वह कभी नहीं बदलती। शायद तुमने इसका निरीक्षण न किया हो। शायद तुमने अभी इसका साक्षात्कार न किया हो। लेकिन अगर निरीक्षण करोगे तो जानोंगे कि तुम्हारे भीतर कुछ है जो निरंतर वही का वही रहता है। उसी के कारण तुम्हारा एक व्यक्तित्व होता है। उसी के कारण तुम अपने को केंद्रित अनुभव करते हो; अन्यथा तुम एक अराजकता हो जाओगे।
तुम कहते हो; ‘मेरा बचपन।’ अब इस बचपन का क्या बच रहा है? यह कौन है
जो कहता है: ‘मेरा बचपन’ यह मेरा, मुझे, मैं कौन है। तुम्हारे बचपन का तो कुछ भी शेष नहीं बचा है। यदि तुम्हारे बचपन के चित्र तुम्हें पहली दफा दिखाए जाये तो तुम उन्हें पहचान भी नहीं सकोगे। सब कुछ इतना बदल गया है। तुम्हारा शरीर अब वही नहीं है। उसकी एक कोशिश भी वही नहीं है।
शरीर शास्त्री कहते है कि शरीर एक प्रवाह है—सरित-प्रवाह। प्रत्
येक क्षण अनेक पुरानी कोशिकाएं मर रही है। और अनेक नई कोशिकाएं बन रही

है। सात वर्षों के भीतर तुम्हारा शरीर बिलकुल बदल जाता है। अगर तुम सत् तर साल जीने वाल हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदल जायेगा। पूरा का पूरा बदल जाता है। प्रत्येक क्षण तुम्हारा शरीर बदल रहा है।
और तुम्हारा मन बदल रहा है। जैसे तुम अपने बचपन के शरीर का चित्र नहीं पहचान सकते हो वैसे ही यदि तुम्हारे बचपन के मन का चित्र बनाना संभव हो तो तुम उसे भी नहीं पहचान पाओगे। तुम्हारा मन तो तुम्हारे शरीर से भी ज् यादा प्रवाहमान है। हर एक क्षण में बदल जाता है। एक क्षण के लिए भी कुछ स्थाई नहीं है। ठहरा हुआ नहीं है। मन के तल पर सुबह तुम कुछ थे; शाम तुम बिलकुल ही भिन्न व्यक्ति हो जाते हो।

जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध से मिलने आता था तो उसे विदा होते समय
बुद्ध उससे कहते थे: ‘’स्मरण रहे, जो व्यक्ति मुझ से मिलने आया था वही आदमी वापस नहीं जा रहा है। तुम अब बिलकुल भिन्न आदमी हो। तुम्हारा मन बदल गया है।

बुद्ध जैसे व्यक्ति से मिलकर तुम्हारा मन वही नहीं रह सकता, उसकी बदलाहट अनिवार्य है—वह बदलाहट चाहे भले के लिए हो या बुरे के लिए। तुम एक मन लेकिर वही गये थे; तुम भिन्न ही मन लेकिर वहां सक वापस आओगे। कुछ बदल गया है। कुछ नया उससे जुड़ गया है। कुछ पुराना उससे अलग हो गया है।

और अगर तुम किसी से नहीं भी मिलते हो, बस अपने साथ अकेले रहते हो,
तो भी तुम वही नहीं रह सकते। पल-पल नदी वह रही है। हेराक्लाइटस ने कहा है कि तुम एक ही नदी में दो बार नहीं प्रवेश कर सकते। यही बात मनुष्य के संबंध में सही है। तुम एक ही मनुष्य से दो बार नहीं मिल सकते । असंभव है यह। और इसी तथ्य के कारण—और इसके प्रति हमारे अज्ञान के कारण—हमारा जीवन संताप बन जाता है। क्योंकि तुम्हारी अपेक्षा रहती है। कि दूसरा सदा वही रहेगा।

तुम अपने शरीर को देखो, वह बदल रहा है। तुम अपने मन को समझो, वह भी
बदल रहा है। कुछ भी वही का वही नहीं रहता है। वहां तक की लगातार दो क्षणों के लिए भी कुछ तुमने अपने मित्र को अजनबी की भांति नहीं देखा है तो तुमने देखा ही नहीं है। अपनी पत्नी को देखा; क्या तुम सच ही उसको जानते हो? हो सकता है तुम उसके साथ बीस वर्षों से, या उसे भी ज्यादा समय से रह रहे हो। लेकिन वह अजनबी ही रहती है। तुम जितना ज्यादा उसके साथ रहते हो उतनी ही संभावना है अपरिचित ही रहो। तुम उससे कितना ही प्रेम करते हो उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

सच तो यह है कि तुम उसे जितना ज्यादा प्रेम करोगे वह उतनी ही रहस्
यमय मालूम पड़ेगी। कारण यह है कि तुम उसे जितना ज्यादा प्रेम करोगे। तुम उतने ही अधिक गहरे उसमे प्रवेश करोगे। और तुम्हें मालूम पड़ेगा कि वह कितनी नदी जैसी प्रवाहमान है, परिवर्तनशील है, जीवंत है और प्रति पल नई और भिन्न है।

अगर तुम गहरे नहीं देखते हो, अगर तुम इसी तल से बंधे हो कि वह तुम् हारी पत्नी है, कि उसका यह नाम है, तो तुमने एक हिस्से को पकड़ लिया है, और उस हिस्से को तुम अपनी पत्नी की भांति देखते रहते हो। और तब जब भी

तुम्हारी पत्नी में कुछ बदलाहट होगी, वह उस बदलाहट को तुमसे छिपायेगी। जब वह प्रेमपूर्ण नहीं होगी तब भी तुमसे प्रेम का अभिनय करेगी, क्योंकि तुम्हें उससे प्रेम की अपेक्षा है। और तब उसके कुछ नकली और झूठ रूप तुम् हारे सामने होंगे। क्योंकि उसे बदलने कि इजाजत नहीं है। उसे स्वयं होने की इजाजत नहीं है। कुछ ऊपर से लादा जा रहा है और तब सारा संबंध मुर्दा हो जाता है।
तुम जितना ही प्रेम करोगे, उतना ही परिवर्तन का पहलू दिखाई
देगा। तब तुम प्रत्येक क्षण अजनबी हो; जब तुम भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि तुम्हारा पति कल सुबह कैसे भविष्यवाणी कर सकती है। भविष्यवाणी तो तभी हो सकती है। यदि तुम्हारा पति मुर्दा हो; तब तुम भविष्यवाणी कर सकती है। केवल वस्तुओं के संबंध में भविष्यवाणी हो सकती है। व्यक्तियों के संबंध में भविष्यवाणी नहीं हो सकती। अगर किसी व्यक्ति के संबंध में भविष्यवाणी की जा सके तो जान लो कि वह मुर्दा है, वह मर चुका है। उसका जीवित होना झूठ है। इसीलिए उसके बारे में भविष्यवाणी हो सकती है। व्यक् तियों के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है। क्योंकि बदलाहट संभव है।
अपने मित्र को अजनबी की भांति देखो; वह अजनबी ही है। और डरों
मत। हम अजनबी से डरते है; इसलिए हम भूल जाते है। कि मित्र भी अजनबी है। अगर तुम अपने मित्र में भी अजनबी को देख सको तो तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी। क्योंकि अजनबी से तुम अपेक्षा नहीं होती है। मित्र के संबंध में तुम सदा निश्चित होते है। तुम उससे जो कुछ चाहोगे। वह नहीं होता है। इससे ही अपेक्षा पैदा होती है। और निराशा हाथ लगती है। क्योंकि कोई व् यक्ति तुम्हारी अपेक्षाओं को नहीं पूरा कर सकता है। कोई यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। सब यहां अपने अपेक्षाएं पूरी करने के लिए है। कोई तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। लेकिन तुम्हें अपेक्षा है कि दूसरे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करें। और दूसरों को अपेक्षा है कि तुम उनकी अपेक्षाएं पूरी करो। और तब कलह है, संघर्ष है, हिंसा है
और दुःख है।
अपने मित्र को अजनबी की भांति देखो; वह अजनबी ही है। और डरों मत।
हम अजनबी से डरते है; इसलिए हम भूल जाते है कि मित्र भी अजनबी है। अगर तुम अपने मित्र में भी अजनबी को देख सको तो तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी। क्योंकि अजनबी से तुम्हें अपेक्षा नहीं होती है। मित्र के संबंध में तुम सदा निश्चित होते हो कि तुम उससे जो कुछ चाहोगे वह पूरा करेगा; इससे ही अपेक्षा पैदा होती है। और निराशा हाथ लगती है। क्योंकि कोई व् यक्ति तुम्हारी अपेक्षाओं को नहीं पूरा कर सकता है। कोई यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। सब यहां अपनी अपेक्षा है। कि दूसरे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करें,और दूसरों को अपेक्षा है कि तुम उनकी अपेक्षाएं पूरी करो। और कब कलह है, संघर्ष हिंसा है और दूःख है। अजनबी को सदा स्मरण रखो। मत भूलों कि तुम्हारा घनिष्ठ मित्र भी अजनबी है। दूर से भी दूर है। अगर यह भाव, यह ज्ञान घटित हो जाए, तो फिर तुम अजनबी में भी मित्र को देख सकते हो। यदि मित्र अजनबी हो सकता है तो अजनबी भी मित्र हो सकता है।
किसी अजनबी को देखो; उसे तुम्हारी भाषा नहीं आती है। वह तुम्हारे
देश का नहीं है। तुम्हारे धर्म का नहीं है। तुम्हारे रंग का नहीं है। तुम गोरे हो और वह काला है। या तुम काले हो और वह गोरा है। भाषा के जरिए तुम्हारे और उसके बीच कोई संवाद संभव नहीं है। तुम्हारे और उसके पूजा स्थल भी एक नहीं है। राष्ट्र, धर्म, जाति, वर्ण, रंग—कहीं भी कोई समान भूमि नहीं है। वह बिलकुल अजनबी है। लेकिन उसकी आंखों में झांको, वहां एक

ही मनुष्यता मिलेगी। वह समान भूमि है। उसके भीतर वहीं जीवन है जो तुममें है; वह समान भूमि है। और अस्तित्व भी वहीं है; वह तुम दोनों के मित्र होने का आधार है। तुम उसकी भाषा भले हीन समझो, लेकिन उसको तो समझ सकते हो। मौन से भी संवाद घटित होता है। उसकी आँखो में गहरे, झांकने भर से प्रकट हो सकता है।
और अगर तुम गहरे देखना जान लो तो शत्रु भी तुम्हें धोखा नहीं दे सकता; तुम उसके भीतर मित्र को देख लोगे। वह यह नहीं सिद्ध कर सता कि वह तुम्हारा मित्र नहीं है। वह तुमसे कितना ही दूर हो, तुम्हारे पास ही है; क्योंकि तुम उसी अस्तित्व की धारा में हो, उसी नदी में हो, जिसमे वह है।
तुम दोनों अस्तित्व के तल पर एक ही जमीन पर खड़े हो।
और अगर वह भाव प्रगाढ़ हो तो एक वृक्ष भी तुमसे बहुत दूर नहीं है।
तब एक पत्थर भी बहुत अगल नहीं है। एक पत्थर कितना अजनबी है। उसके साथ तुम्हारा कोई तालमेल नहीं है; उसके साथ संवाद की कोई संभावना नहीं है।
लेकिन वहां भी वही अस्तित्व है; पत्थर का भी अस्तित्व है, वह भी अस्तित् व का अंश है। वह भी होने के जगत में भागीदार है। वह है। उसमें भी जीवन है। वह भी स्थान घेरता है; वह भी समय में जीता है। सूरज उसके लिए भी उगता है। जैसे तुम्हारे लिए उगता है। एक दिन वह नहीं था। जैसे तुम नहीं थे। और एक दिन जैसे तुम मर जाओगे। वह भी मर जाएगा। पत्थर भी एक दिन विदा
हो जाएगा।
अस्तित्व में हम मिलते है; यह मिलन ही मित्रता है। व्यक्तित्व में
हम भिन्न है, अभिव्यक्ति में हम भिन्न है; लेकिन तत्वत: हम एक ही है। अभिव्यक्ति में रूप में हम अजनबी है; उस तल पर हम एक दूसरे के कितने ही करीब आएं, लेकिन दूर ही रहेंगे। तुम पास-पास बैठ सकते हो, एक दूसरे को आलिंगन में ले सकत हो; लेकिन इससे ज्यादा निकट आने की संभावना नहीं है। जहां तक तुम्हारे बदलते व्यक्तित्व का संबंध है, तुम एक नहीं हो सकते हो। तुम कभी समान नहीं हो। तुम सदा भिन्न हो, अजनबी हो। उस तल पर तुम नहीं मिल सकते क्योंकि मिलने के पले ही तुम बदल जाते हो। मिलन की कोई संभावना नहीं है। जहां तक शरीर का संबंध है, मन का संबंध है, मिलन संभव नहीं है। क्योंकि इसके पहले कि तुम मिलो तुम वही नहीं रहते।
क्या तुमने कभी ख्याल किया है। तुम्हें किसी के प्रति प्रेम उमगता है। गहन प्रेम तुम उस प्रेम से भर जाते हो; लेकिन जैसे ही तुम जाते हो और कहते हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, वह प्रेम विलीन हो जाता है। क्या तुमने निरीक्षण किया है कि वह प्रेम अब नहीं रहा, उसकी स्मृति भर शेष है। अभी वह था और अभी वह नहीं है। तुमने उसे अभिव्यक्त किया, उसे प्रकट किया; यही तथ्य उसे परिवर्तन के जगत में ले आया। जब उसकी प्रतीति हुई थी, हो सकता है वह प्रेम तुम्हारे प्राणों का हिस्सा रहा हो; लेकिन जब तुम उसे अभिव्यक्त करते हो तो तुम उसे समय और परिवर्तन के जगत में ले आते है; अब वह सरित प्रवाह में प्रविष्ट हो रहा है। जब तुम कहते हो कि मैं तुम्हें करता हूं, तब तक शायद वह बिलकुल ही गायब हो चुका हो। यह बहुत कठिन है; लेकिन अगर तुम निरीक्षण करोगे तो यह तथ्य बन जाएगा।
तब तुम देख सकते हो कि मित्र में अजनबी है और अजनबी ने मित्र है।
और तब तुम ‘असमानता के बीच समभाव’ रख सकते हो। परिधि पर तुम बदलते रहते हो, लेकिन केंद्र पर, प्राणों में वही बन रहते हो।
‘मान और अपमान में......।‘
कौन सम्मानित होता है। और कौन अपमानित होता है? तुम? कभी नहीं। जो
सतत बदल रहा है और जो तुम नहीं हो, सिर्फ वहीं मान अपमान अनुभव करता है। कोई तुम्हारा सम्मान करता है। और अगर तुमने समझा कि यह व्यक्ति मेरा सम्मान कर रहा है। तो तुम कठिनाई में पड़ोगे। वह तुम्हें नहीं, तुम् हारी किसी खास अभिव्यक्ति को, किसी रूप विशेष को सम्मानित कर रहा है। वह

तुम्हें कैसे जान सकता है? तुम स्वयं अपने को नहीं जानते हो। वह तुम् हारे सतत बदलते व्यक्तित्व के किसी रूप विशेष का सम्मान कर रहा हूं; वह तुम्हारी किसी अभिव्यक्ति का सम्मान कर रहा है। तुम दयावान हो, प्रेमपूर्ण हो; वह उसका सम्मान कर रहा है। लेकिन वह दया, वह प्रेम परिधि पर है। अगले क्षण तुम घृणा से भर सकते हो। हो सकता है फूल न रहें; कांटे ही कांटे हों। तुम इतने प्रसन्नन रहो; उदास और दुःखी होओ। तुम कठोर हो सकते हो, क्रोध में हो सकते हो। तब वह तुम्हारा अपमान करेगा। और हो सकता है। और दूसरे दिन साधु कर सकते है। आज वे तुम्हें महात्मा कह सकते है। और कल वे तुम्हारे खिलाफ हो सकते हो। तुम्हें पत्थर मार सकते है।
यह क्या है? वे तुम्हारी परिधि से परिचित होते है। वे कभी तुमसे परिचित नहीं होते। यह स्मरण रहे कि जो कुछ भी कह रहे है। वह तुम्हारे संबंध में नहीं है। तुम बाहर छूट जाते हो; तुम परे रह जाते हो। उसकी निंदा, उसकी प्रशंसा,वह जो भी करते है, उसका तुम्हारे साथ कोई भी संबंध नहीं है।
गांव में एक लड़की गर्भवती हो गई। उसने अपने मां बाप से कहा कि उसके गर्भ के लिए यह साधु ही जिम्मेदार है। और सारा गांव उसके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। लोग आए और उन्होंने उसके झोंपड़े में आग लगा दी। सुबह का समय था। और बड़ी सर्द सुबह थी—जाड़े की सुबह। उन्होंने नवजात शिशु को उस भिक्षु के ऊपर फेंक दिया। और लड़की के पिता ने भिक्षु से कहा: ‘यह तुम् हारा बच्चा है; इसे सम्हालो।’ भिक्षु ने इतना ही कहा: ‘ऐसा है क्या?’ और तभी बच्चा रोने लगा। तो भिक्षु भीड़ को भूल कर,बच्चे को सम्हालने लगा। भीड़ भिक्षु के झोंपड़े को जलाकर वापस लौट गई। इधर बच्चे को भूख
लगी, लेकिन भिक्षु के पास दूध खरीदने के पैसे नही थे। तो वह नगर में बच् चे के लिए भीख मांगने गया। लेकिन अब उसे कौन भीख देता? वह जहां भी गया, लोगों ने अपने घरों के दरवाजे बंद कर लिए। सब जगह उसे निंदा और गालियां ही मिली।
आखिर में भिक्षु उसी घर के सामने पहुंचा जो उस बच्चे की मां का घर
था। वह लड़की बहुत संताप में थी। तभी उसे बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी। वह द्वार पर खड़ा भिक्षु कह रहा था। ‘मुझे मत दो, मैं पापी हूं, लेकिन यह बच्चा तो पापी नहीं है। इसके लिए थोड़ा दूध दे दरो।’ तब उस लड़की से नहीं रहा गया। उसने कबूल कर लिया कि बच्चे के असली पिता को छिपाने के लिए उसने इस भिक्षु का नाम लिया था। वह बिलकुल बेकसूर है।
अब पूरा नगर फिर साधु के पास जमा हो गया। लोग उसके पैरों में गिरकर क्षमा मांगने लगे। और लड़की के पिता ने आकर भिक्षु से बच्चे को वापस ले लिया और आंसुओं से भरी आंखों से कहा: ‘ऐसा है क्या? आपने सुबह ही इनकार क्यों नही किया? कि यह बच्चा आपका नहीं है। भिक्षु ने केवल इतना ही कहा कि ऐसा है क्या?’
अगर तुम अनासक्त रहने का प्रयत्न करते हो तो तुम परिधि पर ही हो; तुम्हें अभी केंद्र का कुछ पता नहीं है। केंद्र अनासक्त है। वह सदा अनासक्त है। वह पार है; वह सदा अस्पर्शित है। नीचे कुछ भी घटे, यह केंद्र सदा अनछुआ ही रहता है। सदा कुंवारा ही रहता है।
तो परस्पर विरोधी स्थितियों में इस विधि का प्रयोग करो; और अपने भीतर उसे अनुभव करते चलो जो सदा समान है। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो अपने ध्यान को उस बिंदू पर ले जाओ जहां तुम सिर्फ उस आदमी को सुन रहे हो, बिना किसी प्रतिक्रिया के बस सुन रहे हो। यह अपमान की स्थिति है। फिर कोई तुम्हारा सम्मान कर रहा है। उसे भी सुनो, सिर्फ सुनो। निंदा- प्रशंसा, मान-अपमान, सब में सिर्फ सुनो। तुम्हारी परिधि बेचैन होगी, उसे भी देखो। केवल देख बदलने की कोशिश मत करो। उसे देखो, और स्वयं केंद्र से

जुड़े रहो। तब तुम्हें वह अनासक्ति उपलब्ध होगी जो आरोपित नहीं है। जो सहज है, स्वाभाविक है।
और एक बार तुमने इस सहज अनासक्ति की प्रतीति हो जाए तो फिर कुछ भी तुम्हें बेचैन नहीं कर सकेगा। तुम शांत बने रहोगे। संसार में कुछ भी होगा तुम अकंप बने रहोगे। तब कोई तुम्हारी हत्या भी करेगा तो सिर्फ शरीर ही स्पर्श करेगा। तुम अस्पर्शित रहोगे। तुम सबके पार रहोगे। और यह पार रहना ही तुम्हें अस्तित्व में प्रवेश देगा। वह पार रहना ही तुम् हें आनंद से, शाश्वत से, सत्य में प्रतिष्ठित करेगा।
शंकर कहते है कि मैं उस व्यक्ति को संन्यासी कहता हूं, जो जानता है
कि क्या अनित्य है और क्या नित्य है। क्या चलायमान है और क्या अचल है। भारतीय दर्शन इसे ही विवेक कहता है। परिवर्तन और सनातन की पहचान ही विवेक है, बोध है।
तुम जो कुछ भी कर रहे हो, उसमे इस सूत्र का प्रयोग बड़ी गहराई के
साथ और बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। तुम्हें भूख लगी है; इसमे दोनों स्थितियों को स्मरण रखो। भूख की प्रतीति परिधि को होती है। क् योंकि परिधि को ही भोजन की जरूरत है। ईंधन की जरूरत है। तुम्हें भोजन की कोई जरूरत नहीं है; तुम्हें ईंधन की कोई जरूरत नहीं है। यह शरीर की जरूरत है।
स्मरण रहे, जब भी भूख लगती है। शरीर को लगती है। तुम बस उसके जानने
वाल हो। अगर तुम नहीं होते तो भूख नहीं जानी जा सकती है। और अगर शरीर नहीं होता तो भूख नहीं होती। शरीर को भूख तो लग सकती है, लेकिन उसे उसका ज्ञान नहीं हो सकता है। और तुम जानते तो हो, लेकिन तुम्हें भूख नहीं लगती।
तो कभी मत कहो कि मुझे भूख लगी है। सदा यही कहो,और महसूस करने का प्रयास करो की किसे भूख लगी है। उपवास की विधि ध्यानी के यही स्थिति उत् पन्न करता है। की मेरा शरीर भूखा है। अपने जानने पर जोर दो। यह विवेक है। तुम बूढ़े हो, कभी मत कहो कि मैं बूढ़ा हूं, इतना ही कहो कि यह शरीर बूढा हो गया है। और तब मृत्यु के क्षण में तुम जान सकोगे की मैं नहीं मर रहा। यह शरीर मर रहा है। मैं केवल शरीर बदल रहा हूं। घर बदल रहा हूं। और अगर यह विवेक प्रगाढ़ हो तो किसी दिन अचानक बुद्धत्व घटित हो जाएगा। ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-43

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—67 (ओशो)

‘यह जगत परिवर्तन का है, परिवर्तन ही परिवर्तन का। परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।’
पहली बात तो यह समझने की है कि तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है, तुम्हारे अतिरिक्त जानने वाले के अतिरिक्त सब कुछ परिवर्तन है। क्या तुमने कोई ऐसी चीज देखी है। जो परिवर्तन न हो। जो परिवर्तन के अधीन न हो। यह सारा संसार परिवर्तन की घटना है।
हिमालय भी बदल रहा है। हिमालय का अध्यन करने वाले वैज्ञानिक कहते
है कि हिमालय बढ़ रहा है। बड़ा हो रहा है। हिमालय संसार का सबसे कम उम्र का पर्वत है। वह अभी बच्चा है और बढ़ रहा है। वह अभी प्रौढ़ नहीं हुआ है। वह अभी उस अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है। जहां पहूंच कर ह्रास या गिरावट शुरू होती है। हिमालय बच्चे जैसा है। विंध्याचल संसार के सबसे पुराने पर्वतों में हैं। कुछ तो उसे दुनियां का सबसे पुराना पर्वत

मानते है। सदियों से वह अपने बुढ़ापे के कारण क्षीण हो रहा है। मर रहा है।
तो इतना स्थिर और अडिग और दृढ़ मालूम पड़ने वाला हिमालय भी बदल
रहा है। वह बस पत्थरों कीं नदी जैसा नहीं है। पत्थर होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। पत्थर भी प्रवाहमान है, बह रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से सब कुछ बदल रहा है। लेकिन ऐसा सापेक्षत: है।
कोई भी चीज, जिसे तुम जान सकते हो बदलाहट के बिना नहीं है। मेरी
बात खयाल में रहे। जिसे तुम जानते हो वह वस्तु नित्य बदल रही है। जाननेवाले के अतिरिक्त कुछ भी नित्य नहीं है। शाश्वत नही है। लेकिन जानने वाला सदा पीछे है। वह सदा जानता है; वह कभी जाना नहीं जाता। वह कभी आब्जेक्ट्स नहीं बन सकता; वह सदा सब्जैक्ट ही रहता है। तुम जो कुछ भी करते हो या जानते हो, जाननेवाला सदा उससे पीछे है। तुम उसे नहीं जान सकते हो।
और जब मैं कहता हूं कि तुम जाननेवाले को नहीं जान सकते, तो इससे परेशान मत होओ। जब मैं कहता हूं कि तुम उसे नहीं जान सकते हो तो उसका मतलब है कि तुम उसे विषय की तरह नहीं जान सकते हो। मैं तुम्हें देखता हूं, लेकिन मैं उसी तरह अपने को कैसे देख सकता हूं। यह असंभव है। क् योंकि ज्ञान के लिए दो चीजें जरूरी है। ज्ञाता और ज्ञेय। तो जब मैं तुम् हें देखता हूं तो तुम ज्ञेय हो और मैं ज्ञाता हूं। और दोनों के बीच ज्ञान सेतु की तरह है। लेकिन ज्ञान का यह सेतु कहां बनेगा। जब मैं अपने को ही देखता हूं। जब मैं अपने को ही जानने की कोशिश करता हूं। वहां तो केवल मैं ही हूं, पूरी तरह अकेला मैं हूं। दूसरा किनारा बिलकुल अनुपस् थित है। फिर सेतु कहां निर्मित किया जाए? स्वयं को जाना कैसे जाएं?
तो आत्मज्ञान एक नेति-नेति प्रक्रिया है। तुम अपने को सीधे-सीधे नहीं जान सकते; तुम सिर्फ ज्ञान के विषयों को हटाते जा सकते हो। ज्ञान के विषयों को एक-एक करके छोड़ते चले जाओ। और जब ज्ञान का कोई विषय न रह जाए, जब जानने को कुछ भी न रह जाए। सिर्फ एक शून्य, एक खाली पन रह जाए—और यही ध्यान है। ज्ञान के विषयों को छोड़ते जाना—तब एक क्षण आता है जब चेतना तो है लेकिन जानने के लिए कुछ नहीं है। जानना तो है, लेकिन जानने को कुछ नहीं बचता है। तब जानने की सहज-शुद्ध ऊर्जा रहती है। लेकिन जानने को कुछ नहीं बचता है। कोई विषय नहीं रहता है। उस अवस्था में जब जानने को कुछ नहीं रहता, तुम एक अर्थों में स्वयं को जानते हो। अपने को जानते हो। लेकिन यह ज्ञान अन्य सब ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। दोनो के लिए एक
ही शब्द का उपयोग करना भ्रामक है। इसीलिए अनेक रहस्यवादियों ने कहा है कि आत्मज्ञान शब्द विरोधाभासी है। ज्ञान सदा दूसरे को होता है। अंत: आत्म ज्ञान संभव नहीं है। जब दूसरा नहीं होता है तो कुछ होता है, तुम उसे आत्म ज्ञान कह सकते हो। लेकिन यह शब्द भ्रामक है।
तो तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है। ये जो दीवारें है, ये भी निरंतर बदल रही है। और भौतिक शास्त्र भी इसका समर्थन करता है। जो दीवार है, ये स्थाई मालूम पड़ती है। ठहरी हुई लगती है। वह भी प्रति पल बदल रही है। एक-एक परमाणु बह रहा है। प्रत्येक चीज बह रही है। लेकिन उसकी गति इतनी तीव्र है कि उसका पता नहीं चलता है। दोपहर भी वह ऐसे लगती थी श्याम भी ऐसे लगती है।
यह सूत्र कहता है कि सभी चीजें बदल रही है। ‘यह जगत परिवर्तन का है.....।’
इस सूत्र पर ही बुद्ध का समस्त दर्शन खड़ा है। बुद्ध कहते है कि प्रत्येक चीज बहाव है, बदल रही है। क्षणभंगुर है। और यह बात प्रत्येक व् यक्ति को जान लेना चाहिए। बुद्ध का सारा जोर इसी एक बात पर है; उनकी पूरी दृष्टि इसी बात पर आधारित है।

तुम्हें एक चेहरा दिखाई देता है, बहुत सुंदर है। और जब तुम सुंदर
रूप को देखते हो तो भाव होता है कि यह रूप सदा ही ऐसा रहेगा। इस बात को ठीक से समझ लो ऐसी अपेक्षा कभी मत करो। और अगर तुम जानते हो कि यह रूप तेजी से बदल रहा है, कि यह इस क्षण सुंदर है और अगले क्षण कुरूप हो जायेगा। तो फिर आसक्ति कैसे पैदा होगी? असंभव है। एक शरीर को देखो,वह जीवित है; अगले क्षण वह मृत हो सकता है। अगर तुम परिवर्तन को समझो तो सब व्यर्थ है।
बुद्ध ने अपना महल छोड़ दिया, परिवार छोड़ दिया। सुंदर पत्नी छोड़
दी, प्यारा पुत्र छोड़ दिया। और जब किसी ने पूछा कि क्यों छोड़ रहे हो, तो उन्होंने कहां: ‘जहां कुछ भी स्थाई नहीं है,वहां रहने का क्या प्रयोजन? बच्चा एक न एक दिन मर जायेगा।’ और बच्चे का जन्म उसी रात हुआ था। उसके जन्म के कुछ घंटे बाद ही उन्होंने उसे अंतिम बार देखा। अपनी पत्नी के कमरे में गये। पत्नी की पीठ दरवाजे की और थी और वह बच्चे को अपनी बांहों में लिए सो रही थी। बुद्ध ने अलविदा कहना चाहा। लेकिन वे झिझके। उन्होंने कहा: ‘एक क्षण उनके मन में यह विचार कौंधा कि बच्चे के जन्म के कुछ घंटे ही हुए है। मैं उसे अंतिम बार देख हूं। तब उनके मन ने कहां, क्या प्रयोजन है, सब तो बदल रहा है। आज बच्चा पैदा हुआ है। कल मर जायेगा। एक दिन पहले यह नहीं था, अभी वह है। और एक दिन फिर नहीं रहेगा। तो क्या प्रयोजन है सब बदल रहा है।’ वे मुड़े और विदा हो गये।
जब किसी ने पूछा कि आपने क्यों सब कुछ छोड़ दिया? मैं अपनी खोज में हूं। जो कभी नहीं बदलता,जो शाश्वत है। यदि मैं परिवर्तनशील के साथ अटका रहूंगा। तो निराशा ही हाथ आयेगी। क्षण भंगुर से आसक्त होना मूढ़ता है। वह कभी ठहरने वाला नहीं है। मैं मूढ़ नहीं हूं। मैं तो उसकी खोज कर रहा हूं जो कभी नहीं बदलता, जो नित्य है। अगर कुछ शाश्वत है तो ही जीवन में अर्थ है, जीवन में मूल्य है। अन्यथा सब व्यर्थ है।
यह सूत्र सुंदर है। यह सूत्र कहता है। ‘परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।‘’
बुद्ध कभी दूसरा हिस्सा नहीं कहते। यह दूसरा हिस्सा बुनियादी रूप
से तंत्र से आया है। बुद्ध इतना ही कहेंगे। कि सब कुछ परिवर्तनशील है। इसे अनुभव करो। और तुम्हें आसक्ति नहीं होगी। और जब आसक्ति नहीं होगी तो धीरे-धीरे अनित्य को छोड़ते-छोड़ते तुम अपने केंद्र पर पहुंच जाओगे। जो नित्य है। शाश्वत है। परिवर्तन को छोड़ते जाओ और तुम अपरिवर्तन पर केंद्र पर, चक्र के केंद्र पर पहुंच जाओगे।
इस लिए बुद्ध ने चक्र को अपने धर्म का प्रतीक बनाया है। क्योंकि चक्र चलता रहता है। लेकिन उसकी धुरी, जिसके सहारे चक्र चलता है, ठहरी रहती है। स्थाई है। तो संसार चक्र की भांति चलता रहता है। तुम्हारा व् यक्तित्व चक्र की भांति बदलता रहता है। धुरी अचल रहती है।
तंत्र कहता है कि जो परिवर्तनशील है उसे छोड़ो मत, उसमे उतरो, उसमें जाओ। उससे आसक्त मत होओ। लेकिन उसमें जीओं। उससे डरना क्या है? उसे घटित होने दो। और तुम उसमें गति कर जाओ। उसे उसके द्वारा ही विसर्जित करो। डरों मत; भागों मत। भागकर कहां जाओगे। इससे बचोगे कैसे? सब जगह तो परिवर्तन है। तंत्र कहता है,बदलाहट ही मिलेगी। सब भागना व् यर्थ है। भागने की कोशिश ही मत करो। तब करना क्या है?
आसक्ति मत निर्मित करो। तुम परिवर्तन हो जाओ। उसके साथ कोई संघर्ष मत खड़ा करो। उसके साथ बहो। नदी बह रही हे। उसके साथ बहो। तेरो भी मत। नदी को ही तुम्हें ले जाने दो। उसके साथ लड़ों मत; उससे लड़ने से तुम्हारी शक्ति बरबाद होगी। और जो होता है, उसे होने दो। नदी के साथ बहो।

इससे क्या होगा? अगर तुम नदी के साथ बिना संघर्ष किए बह सके; बिना किसी शर्त के बह सके, अगर नदी की दिशा ही तुम्हारी दिशा हो जाए, तो तुम् हें अचानक यह बोध होगा कि मैं नदी नहीं हूं, तुम्हें यह बोध होगा कि मैं नदी नहीं हूं, इसे अनुभव करो; किसी दिन नदी में उतर कर इसका प्रयोग करो। नदी में उतरो, विश्राम पूर्ण रहो और अपने को नदी के हाथों में छोड़ दो। उसे तुम्हें बहा ले जाने दो। लड़ों मत, नदी के साथ एक हो जाओ। तब अचानक तुम्हें अनुभव होगा कि चारों तरफ नदी है, लेकिन मै नदी नहीं हूं।
यदि नदी में लड़ोगे तो तुम यह बात भूल जा सकते हो। इसीलिए तंत्र कहता है: ‘परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।’ लड़ो मत, लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि परिवर्तन तुममें नहीं प्रवेश कर सकता है। डरो नहीं; संसार में रहो। डरो मत;क्योंकि संसार तुममें प्रवेश नहीं कर सकता है। उसे जीओं। कोई चुनाव मत करो।
दो तरह के लोग है। एक वे जो परिवर्तन के जगत से चिपके रहते है। और
एक वे है जो उससे भाग जाते है। लेकिन तंत्र कहता है कि जगत परिवर्तन है, इसलिए उससे चिपकना नहीं है। दोनों व्यर्थ है। इससे भागने को। वह बदल ही रहा है। तुम नहीं थे तब यह बदल रहा था। तुम नहीं रहोगे तब भी यह बदलता रहेगा। फिर इसके लिए इतना शोर गूल क्यो?
‘परिवर्तन को परिवर्तन से विसर्जित करो।’
यह एक बहुत गहन संदेश है। क्रोध को क्रोध से विसर्जित करो; काम को
काम से विसर्जित करो; लोभ को लोभ से विसर्जित करो, संसार को संसार से विसर्जित करो। उससे संघर्ष मत करो, विश्रामपूर्ण रहो। क्योंकि संघर्ष से तनाव पैदा होता है; तनाव से चिंता और संताप पैदा होता है। विश्रामपूर्ण रहो। तुम नाहक उपद्रव में पड़ोगे। संसार जैसा है उसे वैसा ही रहने दो।
दो तरह के लोग है जो संसार को वैसा ही नहीं रहने देना चाहते जैसा
वह है। वे क्रांतिकारी कहलाते है। वे उसे बदलेंगे ही; वे उसे बदलने के लिए जद्दोजहद करेंगे। वे उसे बदलने में अपना सारा जीवन लगा देंगे। और यह जगत अपने आप बदल रहा है। उनकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपने को नष्ट करेंगे। दुनिया को बदलने में वे खुद खत्म होंगे। और संसार बदल ही रहा है; इसके लिए किसी क्रांति की जरूरत नहीं है। संसार स्वयं एक क्रांति है; वह बदल ही रहा है।
तुम्हें आश्चर्य होगा। की भारत में महान क्रांतिकारी क्यों नहीं पैदा हुए। यह इसी अंतदृष्टि का परिणाम है कि सब अपने आप ही बदल रहा है। उसके लिए क्रांति की कोई जरूरत नहीं है। तुम उसे बदलने के लिए क्यों परेशान होते हो। तुम न उसे बदल सकते हो और न बदलाहट को रोक सकते हो।
एक तरह का व्यक्तित्व सदा संसार को बदलने की चेष्टा करता है। धर्म
की दृष्टि में वह मानसिक तल पर रूग्ण है। सच तो यह है अपने साथ रहने में उसे भय लगता है। इसलिए वह भागता फिरता है। और संसार में उलझा रहता है। राज्य को बदलना है, सरकार को बदलना है; समाज , व्यवस्था, अर्थनीति, सब कुछ को बदलना है। और इसी सब में वि मर जाएगा। और उसे आनंद का, उस समाधि का एक कण भी नहीं उपलब्ध होगा। जिसमें वह जान सकता था कि मैं कौन हूं। और संसार चलता रहेगा। संसार चक्र घूमता रहेगा। संसार चक्र ने अनेक क्रांतिकारी देखे है। और वह घूमता ही जाता है। तुम न तो इसे रोक सकते हो, और न तुम उसकी बदलाहट को तेज ही कर सकते हो।
रहस्यवादियों की, बुद्धों की यह दृष्टि है। वे कहते है कि संसार
को बदलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बुद्धों की भी दो कोटियां है। कोई कह सता है कि संसार को बदलने की जरूरत नहीं है, लेकिन अपने को बदलने की जरूरत तो है। वह भी परिवर्तन में विश्वास करता है। वह जगत को बदलने में नहीं, लेकिन अपने में बदलने में विश्वास करता है।

लेकिन तंत्र कहता है। कि किसी को भी बदलने की जरूरत नहीं है—न संसार को और न अपने को। रहस्य का, अध्यात्म का यह गहनत्म तल है। यह उसका अंतरतम केंद्र है। तुम्हें किसी को भी बदलने की जरूरत नहीं है—न संसार को और न अपने को। तुम्हें इतना ही जानना है कि सब कुछ बदल रहा है, और तुम् हें उस बदलाहट के साथ बहाना है, उसे स्वीकार करना है।
और जब बदलने को कोई परिवर्तन नहीं है, तो तुम समग्ररतः: विश्रामपूर्ण हो सकते हो। जब तक प्रयत्न है। तुम विश्रामपूर्ण नहीं हो सकते। तब तक तनाव बना रहेगा। क्योंकि तुम्हें अपेक्षा है कि भविष्य में कुछ होने वाला है, जगत बदलने वाला है। संसार में साम्यवाद आने वाला है। या पृथ्वी पर स्वर्ग उतरने वाला है। या भविष्य में कोई ऊटोपिया आने वाला है। या तुम प्रभु के राज्य में प्रवेश करने वाले हो। स्वर्ग में देवदूत तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार खड़े है—जो भी हो; तुम भविष् य में कही अटके हो। इस अपेक्षा के साथ तुम तनावपूर्ण रहोगे।
तंत्र कहता है, इन बातों को भूल जाओ। संसार बदल ही रहा है। और तुम
भी निरंतर बदल रहे हो। बदलाहट ही अस्तित्व है। इसलिए बदलाहट की चिंता मत करो। तुम्हारे बिना ही बदलाहट हो रही है। तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम भविष्य की कोई चिंता किए बिना उसमे बहो; और तब अचानक तुम्हें अपने भीतर के उस केंद्र का बोध हो गा जो कभी नहीं बदलता है, जो सदा वही का वही रहता है।
ऐसा क्यों होता है? क्योंकि जब तुम विश्रामपूर्ण होते हो तो बदलाहट की पृष्ठभूमि में विपरीत दिखाई पड़ता है। परिवर्तन की पृष् ठभूमि में तुम्हें सनातन का, शाश्वत का बोध होता है। अगर तुम संसार को या अपने को बदलने का प्रयत्न में लगे हो तो तुम अपने भीतर छोटे से अकंप, स्थिर ठहरे हुए केंद्र को नहीं देख पाओगे। तुम बदलाहट में इतने घिरे हो कि तुम उसे नहीं देख पाते हो जो है।
सब तरफ परिवर्तन है। यह परिवर्तन पृष्ठभूमि बन जाता है। कंट्रास्
ट बन जाता है। और तुम शिथिल होते हो। विश्राम में होते हो, इसलिए तुम् हारे मन में भविष्य नहीं होता। भविष्य के विचार नहीं होते। तुम यहां और अभी होते हो। यह क्षण ही सब कुछ होता है। सब कुछ बदल रहा है—और अचानक तुम्हें अपने भीतर उस बिंदू का बोध है जो कभी नहीं बदला है।
‘परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।’
इसका अर्थ यही है। लड़ो मत। मृत्यु के द्वारा अमृत को जान लो; मृत्
यु के द्वारा मृत्यु को मर जाने दो। उससे लड़ाई मत करो।
तंत्र की दृष्टि को समझना कठिन है। कारण है कि हमारा मन कुछ करना चाहता है। और तंत्र है कुछ न करना। तंत्र कर्म नहीं, पूर्ण विश्राम है। लेकिन यह एक सर्वाधिक गुह्म रहस्य है। और अगर तुम इसे समझ सको। अगर तुम् हें अगर तुम्हें इसकी प्रतीति हो जाए,तो तुम्हें किसी अन्य चीज की चिंता लेने की जरूरत नहीं है। ये अकेली विधि तुम्हें सब कुछ दे सकती है। तब तुम्हें कुछ करने की जरूरत नही है। क्योंकि तुमने इस रहस्य को
जान लिया है जो परिवर्तन से परिवर्तन का अतिक्रमण कर रहा हे। मृत्यु से मृत्यु का अतिक्रमण हो सकता है। काम से काम का अतिक्रमण हो सकता है। क्रोध से क्रोध का अतिक्रमण हो सकता है। अब तुम्हें यह कुंजी मिल गई है कि जहर से जहर का अतिक्रमण हो सकता है।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-43

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—68 (ओशो)

[illegible]

इस विधि में मूलभूत बात है: 'यथार्थ में।' तुम भी बहुत चीजों का पालन पोषण करते हो; लेकिन सपने में, सत्य में नहीं। तुम भी बहुत कुछ करते हो; लेकिन सपने में सत्य में नहीं। सपनों को पोषण देना छोड़ दो। सपनों को बढ़ने में सहयोग मत दो। सपनों को अपनी ऊर्जा मत दो। सभी सपनों से अपने को पृथक कर लो।

यह कठिन होगा, क्योंकि सपनों में तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ है। अगर तुम अपने को अचानक सपनों से बिलकुल अलग कर लोगे तो तुम्हें लगेगा कि मैं डूब रहा हूं, मैं मर रहा हूं। क्योंकि तुम हमेशा स्थगित सपनों में रहते आए हो। तुम कभी यहां और अभी नहीं रहे; तुम सदा कहीं और रहते आए हो। तुम आशा करते रहे हो।

क्या तुमने पंडोरा का डब्बा यूनानी कहानी सुनी है। किसी आदमी ने बदला लेने के लिए पंडोरा के पास एक डब्बा भेजा। इस डब्बे में से सब रोग बंद थे जो अभी मनुष्य जाति के बीच फैले है। वे रोग उसके पहले नहीं थे; जब वह डब्बा खुला तो सभी रोग बाहर निकल आए। पंडोरा रोगों को देखकर डर गई ओर उसने डब्बा बंद कर दिया। केवल एक रोग रह गया। ओर वह थी आशा। अन्यथा आदमी समाप्त हो गया होता; ये सारे रोग उसे मार डालते, लेकिन आशा के कारण वह जीवित रहा।

तुम क्यों जी रहे हो? क्या तुमने कभी यह प्रश्न पूछा है? यहां और अभी जीने के लिए कुछ भी नहीं है। सिर्फ आशा है। तुम भी पंडोरा का डब्बा ढो रहे हो। ठीक अभी तुम क्यों जीवित हो? हरेक सुबह तुम क्यों बिस्तर से उठ रहे हो। क्यों तुम रोज-रोज फिर वही करते हो जो कल किया था? यह पुनरूक्ति क्यों? कारण क्या है?

मनुष्य आशा में जीता है। लेकिन यह जीवन नहीं है। अपने को ढोए चला जाता है। जब तक तुम यहां और अभी नहीं जीते हो, तुम जीवन नहीं हो। तुम एक मृत बोझ हो। और वह कल तो कभी आने वाला नहीं है। जब तुम्हारी सब आशाएं पूरी हो जाएंगी। और जब मृत्यु आएगी तो तुम्हें पता चलेगा कि अब कोई कल नहीं है, और अब स्थगित करने का भी उपाय नहीं है। तब तुम्हारा भ्रम टूटेगा; तब तुम्हें लगेगा कि यह धोखा था। लेकिन किसी दूसरे ने तुम्हें धोखा नहीं दिया। अपनी दुर्गति के लिए तुम स्वयं जिम्मेदार हो।

इस क्षण में, वर्तमान में जीने की चेष्टा करो और आशाएं मत पालो—चाहे वे किसी भी ढंग की हों। वे लौकिक हो सकती है, पारलौकिक हो सकती है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है। वे धार्मिक हो सकती है। किसी भविष्य में, किसी दूसरे लोक में, स्वर्ग में, मृत्यु के बाद, निर्वाण में; लेकिन इससे कोई फर्क नही पड़ता। तुम कोई आशा मत करो। यदि तुम्हें थोड़ी निराशा भी अनुभव हो, तो भी यही रहो। यहां और इसी क्षण से मत हटो। हटो ही मत। दुःख सह लो, लेकिन आशा को मत प्रवेश करने दो। आशा के द्वारा स्वप्न प्रवेश करते है। निराशा रहो। अगर जीवन में निराशा है तो निराशा रहो। निराशा को स्वीकार करो। लेकिन भविष्य में होनेवाली किसी घटना का सहारा मत लो।

और तब अचानक बदलाहट होगी। जब तुम वर्तमान में ठहर जाते हो तो सपने भी ठहर जाते है। तब वे नहीं उठ सकते, क्योंकि उनका स्त्रोत ही बद हो जाता है। सपने उठते है। क्योंकि तुम उन्हें सहयोग देते हो। तुम उन्हें पोषण देते हो। सहयोग मत दो; पोषण मत दो।

यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन-पोषण करो।'

विशेष ज्ञान क्या है? तुम भी पोषण देते हो; लेकिन तुम विशेष सिद्धांतों को पोषण देते हो। ज्ञान को नहीं। तुम विशेष शास्त्रों को पोषण देते हो, ज्ञान को नहीं। तुम विशेष मतवादों को, दर्शन शास्त्रों

को, विचार-पद्धतियों को पोषण देते हो। लेकिन विशेष ज्ञान को कभी पोषण नहीं देते। यह सूत्र कहता है कि उन्हें हटाओं, दूर करो, शास्त्र और सिद्धांत किसी काम के नहीं है। अपना अनुभवप्राप्त करो जो प्रामाणिक हो; अपना ही ज्ञान हासिल करो, और उसे पोषण दो। कितना भी छोटा हो, प्रामाणिक अनुभव असली बात है। तुम उस पर अपने जीवन को आधार रख सकते हो। वे जैसे भी हो, जो भी हो। सदा प्रामाणिक अनुभवों की चिंता लो जो तुमने स्वयं जाने है। क्या तुमने स्वयं कुछ जाना है?
तुम बहुत कुछ जानते हो; लेकिन तुम्हारा सब जानना उधार है। किसी से तुमने सुना है; किसी ने तुम्हें दिया है। शिक्षकों ने, मां-बाप ने, समाज ने, तुम्हें संस्कारित किया है। तुम ईश्वर के बारे में जानते हो, तुम प्रेम के बारे में जानते हो, तुम प्रेम के संबंध में जानते है, तुम ध्यान को जानते हो। लेकिन तुम यथार्थत: कुछ भी नहीं जानते। तुमने इनमें से किसी का स्वाद नहीं लिया है। यह सब उधार है। किसी दूसरे ने स्वाद लिया है; स्वाद तुम्हारा निजी नहीं है। किसी दूसरे ने देखा है; तुम्हारी भी आंखें है। लेकिन तुमने उनका उपयोग नहीं किया है। किसी ने अनुभव किसा— किसी बुद्ध ने, किसी जीसस ने—और तुम उनका ज्ञान उधार लिए बैठे हो। उधार ज्ञान झूठा है। और वह तुम्हारे काम का नहीं है। उधार ज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक है। क्योंकि अज्ञान तुम्हारा है, और ज्ञान उधार है। इससे तो अज्ञानी रहना बेहतर है। कम से कम तुम्हारा तो है। प्रामाणिक तो है, सच्चा है, ईमानदार है। उधार ज्ञान मत ढ़ोओ; अन्यथा तुम भूल जाओगे कि तुम अज्ञानी हो; और तुम अज्ञानी के अज्ञानी बने रहोगे। यह सूत्र कहता है: ‘विशेष ज्ञान का पालन-पोषण करो।’
सदा ही जानने की कोशिश इस ढंग से करो कि वह सीधा हो, सच हो, प्रत् यक्ष हो। कोई विश्वास मत पकड़ो;विश्वास तुम्हें भटका देगा। अपने पर भरोसा करो। श्रद्धा करो। और अगर तुम अपने पर ही श्रद्धा नहीं कर सकते तो किसी दूसरे पर कैसे श्रद्धा कर सकते हो?
सारिपुत्र बुद्ध के पास आया और उसने कहा: ‘मैं आपमें विश्वास करने
के लिए आया हूं;मैं आ गया हूं। मुझे आप में श्रद्धा हो, इसमें मेरी सहायता करें।’ बुद्ध ने कहा: ‘अगर तुम्हें स्वयं में श्रद्धा नहीं है तो मुझमें श्रद्धा कैसे करोगे? मुझे भूल जाओ। पहले स्वयं में श्रद्धा करो; तो ही तुम्हें किसी दूसरे में श्रद्धा होगी।’
यह स्मरण रहे, अगर तुम्हें स्वयं में ही श्रद्धा नहीं है। तो किसी
में भी श्रद्धा नहीं हो सकती। पहली श्रद्धा सदा अपने में होती है। तो ही वह प्रवाहित हो सकती है। बह सकती है। तो ही वह दूसरों तक पहुंच सकती है। लेकिन अगर तुम कुछ जानते ही नहीं हो तो अपने में श्रद्धा कैसे करोगे? अगर तुम्हें कोई अनुभव ही नहीं है तो स्वयं में श्रद्धा कैसे होगी? अपने में श्रद्धा करो। और मत सोचो कि हम परमात्मा को ही दूसरों की आंखों से देखते है; साधारण अनुभवों में भी यही होता है। कोशिश करो कि साधारण अनुभव भी तुम्हारे अपने अनुभव हों। वे तुम्हारे विकास में सहयोगी होंगे। वे तुम्हें प्रौढ़ बनाएँगे। वे तुम्हें परिपक्वता देंगे।
बडी अजीब बात है कि तुम दूसरों की आँख से देखते हो तुम दूसरों की जिंदगी से जीते हो। तुम गुलाब को सुंदर कहते हो। क्या यह सच में ही तुम् हारा भाव है। या तुमने दूसरों से सुन रखा है। कि गुलाब सुंदर होता है। क्या यह तुम्हारा जानना है? क्या तुमने जाना है? तुम कहते हो कि चाँदनी अच्छी है, सुंदर है। क्या यह तुम्हारा जानना है? यह कवि इसके गीत गाते रहे है और तुम बस उन्हें दुहरा रहे हो?
अगर तुम तोते जैसे दुहरा रहे हो तो तुम अपना जीवन प्रामाणिक रूप
से नहीं जी सकते हो। जब भी तुम कुछ कहो, जब भी तुम कुछ करो, तो पहल अपने भीतर जांच कर लो कि क्या यह मेरा अपना जानना है? मेरा अपना अनुभव है। उस

सबको बाहर फेंक दो जो तुम्हारा नहीं है; वह कचरा है। और सिर्फ उसको ही मूल्य दो, पोषण दो, जो तुम्हारा है। उसके द्वारा ही तुम्हारा विकास होगा।
‘यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।’
यहां यर्थाथ में, को सदा स्मरण रखो। कुछ करो। क्या कभी तुमने स्
वयं कुछ किया है। या तुम केवल दूसरों के हुक्म बजाते रहे हो? केवल दूसरों का अनुसरण करते रहे हो, कहते है: ‘अपनी पत्नी को प्रेम करो।’ क्या तुमने यथार्थत: अपनी पत्नी को प्रेम किया है? या तुम सिर्फ कर्तव्य निभा रहे हो; क्योंकि तुम्हें कहा गया है, सिखाया गया है कि पत्नी को प्रेम करो, या मां को प्रेम करो। या पिता को प्रेम करो। तुम्हारा प्रेम भी अनुकरण मात्र है। क्या तुमने कभी ऐसा महसूस किया है तुम और प्रेम साथ थे। बिना किसी विचार के या संस्कार के। क्या तुम्हारे प्रेम में ऐसा कभी हुआ है कि तुम्हारे प्रेम मे किसी की सिखावन न काम कर रही हो? क्या कभी ऐसा हुआ है कि तुम किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। क्या तुमने कभी प्रामाणिक रूप से प्रेम किया है।
तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम कह सकते हो कि हां किया है। लेकिन
कुछ कहने के पहले ठीक से निरीक्षण कर लो। अगर तुमने सचमुच प्रेम किया होता तो तुम रूपांतरित हो जाते; प्रेम का यह विशेष कृत्य ही तुम्हें बदल डालता। लेकिन उसने तुम्हें नहीं बदला। क्योंकि तुम्हारा प्रेम झूठा है। और तुम्हारा पूरा जीवन ही झूठ हो गया है। तुम ऐसे काम किए जाते हो जो तुम्हारे अपने नहीं है। कुछ करो जो तुम्हारा अपना हो; और उसका पोषण करो। बुद्ध बहुत अच्छे है; लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते। जीसस बहुत, महावीर बहुत अच्छे है, लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते हो। और अगर तुम अनुसरण करोगे तो तुम कुरूप हो जाओगे। तुम कार्बन कापी हो जाओगे। तब तुम झूठे हो जाओगे। और अस्तित्व तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा। वहां कुछ भी झूठ स्वीकार नहीं है।
बुद्ध को प्रेम करो, जीसस को प्रेम करो; लेकिन उनकी कार्बन कापी मत बनो। नकल मत करो। सदा अपनी निजता को अपने ढंग से खिलनें दो। तुम किसी दिन बुद्ध जैसे हो जाओगे; लेकिन मार्ग बुनियादी तौर पर तुम्हारा अपना होगा। किसी दिन तुम जीसस जैसे हो सकते हो। लेकिन तुम्हारा यात्रा-पथ भिन्न होगा। तुम्हारे अनुभव भिन्न होगे। एक बात पक्की है। जो भी मार्ग हो, जो भी अनुभव हो, वह प्रामाणिक होना चाहिए। असली होना चाहिए। तुम् हारा होना चाहिए। तब तुम किसी ने किसी दिन पहुंच जाओगे।
असत्य से तुम सत्य तक नहीं पहूंच सकते। असत्य तुम्हें और असत्य
में ले जाएगा। जब कुछ करो तो भली भांति स्मरण करो कि यह तुम्हारा अपना कृत्य हो, तुम खुद कर रहे हो। किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। तो एक छोटा सा कृत्य भी, एक मुस्कुराहट भी सतोरी का, समाधि का स्त्रोत बन सकती है। तुम अपने घर लौटते हो और बच्चों को देखकर मुस्कराते हो। यह मुस् कुराहट झूठी है। तुम अभिनय कर रहे हो। तुम इसलिए मुस्कराते हो क्योंकि मुस्कराना चाहिए। यह ऊपर से चिपकायी गई मुस्कुराहट है। यह मुस्कुराहट कृत्रिम है, यांत्रिक है। और तुम इसके इतने अभ्यस्त हो चुके हो कि तुम बिलकुल भूल ही गये हो सच्ची मुस्कुराहट क्या है। तुम हंस सकते हो। लेकिन संभव है वह हंसी तुम्हारे केंद्र से न आ रही हो।
सदा ध्यान रखो कि तुम जो कर रहे हो उसमें तुम्हारा केंद्र सम् मिलित है या नहीं। अगर तुम्हारा केंद्र उस कृत्य मे सम्मिलित नहीं है तो बेहतर है कि उस कृत्य को न करो। उसे बिलकुल भूल जाओ। कोई तुम्हें कुछ करने के लिए मजबूर नहीं कर रहा है। बिलकुल मत करो। अपनी उर्जा को उस घड़ी के लिए बचा कर रखो जब कोई सच्चा भाव तुम्हारे भीतर उठे। और तब तुम उस में डूब कर उसे करो। यो ही मत मुस्कुराओ; उर्जा को बचाकर रखो। मुस्

कुराहट आएगी, जो तुम्हें पूरा का पूरा बदल देगी। वह समग्र मुस्कुराहट होगी। तब तुम्हारे शरीर की एक-एक कोशिका मुस्कुराएगी। तब वह विस्फोट होगा, अभिनय नहीं होगा।
और बच्चे जानते है, तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। और जब तुम उन्हें धोखा दे सको, समझ लेना वे बच्चे नहीं रहे। वे जानते है कि कब तुम् हारी मुस्कुराहट झूठी होती है। वे झट ताड़ लेते है। वे जानते है कि कब तुम्हारे आंसू झूठे है। तुम्हारी हंसी झूठी है। ये छोटे-छोटे कृत्य है, लेकिन तुम छोटे-छोटे कृत्यों से ही बने हो। किसी बड़े कृत्य की मत सोचो; मत सोचो कि किसी बड़े कृत्य में सच्चाई बरतूंगा। अगर तुम छोटी-छोटी चीजों में झूठे हो तो तुम सदा झूठे ही रहोगे। बड़ी चीजों में झूठ होना तो और भी सरल है।
पर यह सब झूठा है। थोड़ी कल्पना करो। कि अगर समाज की दृष्टि बदल
जाए तो क्या होगा। ऐसी ही बदलाहट जब सोवियत रूस में या चीन में हुई तो तुरंत साधु-महात्मा वहां से विदा हो गये। अस वहां उनके लिए कोई आदर नहीं है।
मुझे याद आता है कि मेरे एक मित्र, जो बौद्ध भिक्षु है, स्टैलिन के दिनों में सोवियत रूप गये थे। उन्होंने लौटकर मुझे बताया कि वहां जब भी कोई व्यक्ति उससे हाथ मिलाता था तो तुरंत झिझक कर पीछे हट जाता था। और कहता था कि तुम्हारे हाथ बुर्जआ है। शोषण के हाथ है।
उनके हाथ सचमुच सुंदर थे; भिक्षु होकर उन्हें काम नहीं करना पड़ता
था। वे फकीर थे, शाही फकीर,उनका श्रम से वास्ता नहीं पडा था। उनके हाथ बहुत कोमल थे। सुंदर कोमल और स्त्रैण थे। भारत में जब कोई उनके हाथ छूता तो कहता कि कितने सुंदर हाथ है। लेकिन सोवियत रूस में जब कोई उनके हाथ अपने हाथ में लेता तो तुरंत सिकुड़कर पीछे हट जाता। उसकी आंखों में निंदा भर जाती। और वह उन्हें कहता कि तुम्हारे हाथ बुर्जआ है। शोषक के हाथ है। वे वापस आकर मुझसे बोले कि मैंने इतना निंदित महसूस किया कि मेरा मत होता है कि मजदूर हो जाउं।
रूस में साधु-महात्मा विदा हो गए; क्योंकि आदर न रहा। सब साधुता दिखावटी थी। प्रदर्शन की चीज थी। आज रूस में केवल सच्चा संत ही संत हो सकता हे। झूठे नकली संतों के लिए वहां कोई गुंजाइश नही है। आज तो वहां संत होने के लिए भारी संघर्ष करना पड़ेगा। क्योंकि सारा समाज विरोध में होगा। भारत में तो जीने का सबसे सुगम ढंग साधु-महात्मा होना है। सब लोग आदर देते है। यहां तुम झूठे हो सकते हो। क्योंकि उसमे लाभ ही लाभ है। तो इसे स्मरण रखो। सुबह से ही, जैसे ही तुम आँख खोलते हो,सिर्फ सच्
चे और प्रामाणिक होने की चेष्टा करो। ऐसा कुछ मत करो जो झूठ और नकली हो। सिर्फ सात दिन के लिए यह स्मरण बना रहे कि कुछ भी झूठ और नकली हो। कुछ भी अप्रमाणिक नहीं करना है। जो भी गंवाना पड़े जो भी खोना पड़े खो जाएं। जो भी होना हो, हो जाए;लेकिन सच्चे बने रहो। और सात दिन के भीतर नए जीवन का उन्मेष अनुभव होने लगेगा। तुम्हारी मृत पर्तें टूटने लगेंगी। और नयी जीवंत धारा प्रवाहित होने लगेगी। तुम पहली बार पुनजींवन अनुभव करोगे। फिर से जीवित हो उठोगे।
कृत्य का पोषण करो, ज्ञान का पोषण करो—यथार्थ में, स्वप्न में नहीं। जो भी करना चाहो करो। लेकिन ध्यान रखो कि यह काम सच में मैं कर रहा हूं। या मेरे द्वारा मेरे मां बाप कर रहे है? क्योंकि कब के जा चुके मरे हुए लोग, मृत माता-पिता, समाज, पुरानी पीढ़ियाँ, सब तुम्हारे भीतर अभी सक्रिय है। उन्होंने तुम्हारे भीतर ऐसे संस्कार भर दिए है कि तुम अब भी उनको ही पूरा करने में लगे हो। तुम्हारे मां-बाप अपने मृत मां-बाप को पूरा करते रहे और तुम अपने मृत मां बाप को पूरा करने मे लगे हो। और आश्

चर्य कि कोई भी पूरा नहीं हो रहा है। तुम उसे कैसे पूरा कर सकते हो जो मर चूका है। लेकिन मुर्दे ये सब मुर्दे तुम्हारे बीच जी रहे है।

जब भी तुम कुछ करो तो सदा निरीक्षण करो कि यह मेरे माध्यम से मेरे पिता कर रहे है। या मैं कर रहा हूं। जब तुम्हें क्रोध आए तो ध्यान दो कि यह मेरा क्रोध है या इसी ढंग से मेरे पिता क्रोध किया करते थे जिसे -जिसे में दोहरा भर रहा हूं।

मैंने देखा है कि पीढ़ी दर पीढ़ी वही सिलसिला चलता रहता है। पुराने ढंग ढांचे दोहराते रहते है। अगर तुम विवाह करते हो तो वह विवाह करीब -करीब वैसा ही होगा जैसा तुम्हारे मां -बाप ने किया था। तुम अपने पिता की भांति व्यवहार करोगे। तुम्हारी पत्नी अपनी मां की भांति व् यवहार करेगी। और दोनों मिलकर वही सब उपद्रव करोगे जो उन्होने किया था। जब क्रोध आए तो गौर से देखो कि मैं क्रोध कर रहा हूं या कि कोई दूसरा व् यक्ति क्रोध कर रहा है रहे है। या मैं कर रहा हूं। जब तुम प्रेम करो तो याद रखो ; तुम ही प्रेम कर रहे हो या कोई और , जब तुम कुछ बोलों तो देखो कि मैं बोल रहा हूं या मेरा शिक्षक बोल रहा है। जब तुम कोई भाव -भंगिमा बनाओ तो देखो कि यह तुम्हारी भंगिमा है या कोई दूसरा ही वहां है।

यह कठिन होगा ; लेकिन यही साधना है , यही आध्यात्मिक साधना है। और सारे झूठों को विदा करो। थोड़े समय के लिए तुम्हें सुस्ती पकड़ेगी , उदासी घेरेंगी ; क्योंकि तुम्हारे झूठ गिर जाएंगे। और सत्य को आने में और प्रतिष्ठित होने में थोड़ा समय लगेगा। अंतराल का एक समय होगा ; उस समय को भी आने दो। भयभीत मत होओ। आतंकित मत होओ। देर -अबेर तुम्हारे मुखौटे गिर जाएंगे। तुम्हारा झूठा व्यक्तित्व विलीन हो जाएगा। और उसकी जगह तुम्हारा असली चेहरा तुम्हारा प्रामाणिक व्यक्तित्व अस्तित्व में आएगा। प्रकट होगा। और उसी प्रामाणिक व्यक्तित्व से तुम ईश्वर को साक्षात्कार कर सकते हो।

इसलिए यह सूत्र कहता है : जैसे मुर्गी अपने बच्चों का पालन पोषण करती है। वैसे ही यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन -पोषण करो।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-45

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]- 69 ([illegible])

‘[illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]; [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]’

यह बहुत गहरी विधि है ; यह गहरी से गहरी विधियों में से एक है। और विरले लोगों ने ही इसका प्रयोग किया है। झेन इसी विधि पर आधारित है। यह विधि बहुत कठिन बात कह रही है —समझने में कठिन , अनुभव करने में कठिन नहीं है। परंतु पहले समझना जरूरी है।

यह सूत्र कहता है , कि हम संसार और निर्वाण दो नहीं है। वे एक ही है। स्वर्ग और नरक दो नहीं है। वे एक ही है। वैसे ही बंधन और मोक्ष दो नहीं है , वे भी एक ही है। यह समझना कठिन है , क्योंकि हम किसी चीज को आसानी से तभी सोच पात है जब वह ध्रुवीय विपरीतता में बंटी हो।

हम कहते है कि यह संसार बंधन है ; इससे छूटा जाए और मुक्त हुआ जाए ? तब मुक्ति कुछ है जो बंधन के विपरीत है , जो बंधन नहीं है। लेकिन यह सूत्र

कहता है कि दोनों एक है, मोक्ष और बंधन एक है। और जब तक तुम दोनों से नहीं मुक्त होते, तुम मुक्त नहीं हो। बंधन तो बाँधता ही है,मोक्ष भी बाँधता है। बंधन तो गुलामी है ही मोक्ष भी गुलामी है।
इसे समझने की कोशिश करो। उस आदमी को देखो जो बंधन के पार जाने की चेष्टा में लगा है। वह क्या कर रहा है। वह अपना घर छोड़ देता है, परिवार छोड़ देता है, धन दौलत छोड़ देता है, संसार की चीजें छोड़ देता है। समाज छोड़ देता है। ताकि बंधन के बाहर हो सके, संसार की ज़ंजीरों से मुक्त हो सके। लेकिन तब वह अपने लिए नयी ज़ंजीरें गढ़ने लगता है। और वे ज़ंजीरें नकारात्मक है। परोक्ष है।
मैं एक संत को मिला जो धन नहीं छूते है। वे बहुत सम्मानित संत है। उनका सम्मान वे लोग जरूर करेंगे जो धन के पीछे पागल है। यह व्यक्ति उनके विपरीत ध्रुव पर चला गया है। अगर तुम उनके हाथ में धन रख दो तो वे उसे ऐसे फेंक देंगे जैसे कि वह जहर हो या कि तुमने उनके हाथ पर सांप रख दिया हो। वे उसे फेंक ही नहीं देंगे, वे आतंकित हो उठेंगे। उनका शरीर कांपने लगेगा।
क्या हुआ है? वे धन से लड़ रहे है। वे पहले जरूर ही लोभी, अति लोभी व्यक्ति रहे होंगे। तभी वे दूसरी अति पर पहूंच गए है। उनकी धन की पकड़ आत्यंतिक रही होगी;वे धन के लिए पागल रहे होंगे। वे धन से ग्रस्त रहे होंगे। वे अब भी धन से ग्रस्त है, लेकिन अब उनकी दिशा बदल गई है। वे पहले धन की तरफ भाग रहे थे; अब वे धन के विपरीत भाग रहे है।
मैं एक संन्यासी को जानता हूं जो किसी स्त्री को नहीं देखता। वे
बहुत घबरा जाते है। अगर कोई स्त्री मौजूद हो तो आंखें झुका रखते है। वे सीधे नहीं देखते। क्या समस्या है? निश्चित ही, वे अति कामुक रहे होंगे। कामवासना से बहुत ग्रस्त रहे होंगे। वह ग्रस्तता अभी भी जारी है। लेकिन पहले वे स्त्रियों के पीछे भागते थे अब वे स्त्रियों से दूर भाग रहे है। पर स्त्रियों से ग्रस्तता बनी हुई है; चाहे वे स्त्रियों की और भाग रहे हों या स्त्रियों से दूर भाग रहे हो। उनका मोह बना ही हुआ है।
वे सोचते है कि अब स्त्रियों से मुक्त है, लेकिन यह एक नया बंधन
है। तुम प्रतिक्रिया करके मुक्त नहीं हो सकते। जिस चीज से तुम भागोगे वह पीछे के रास्ते से तुम्हें बाँध लेगी; उससे तुम बच नहीं सकते हो। यदि कोई व्यक्ति संसार के विरोध में मुक्त होना चाहता है तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता; वह संसार में ही रहेगा। किसी चीज के विरोध में होना भी एक बंधन है।
यह सूत्र कहता है: ‘यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है......।’
वे विपरीत नहीं, सापेख है। मोक्ष क्या है? तुम कहते हो, जो बंधन
नहीं है। वह मोक्ष है। और बंधन क्या है? तब तुम कहते हो, जो मोक्ष नहीं है वह बंधन है। तुम एक दूसरे से उनकी परिभाषा कर सकते हो। वे गर्मी और ठंडक की भांति है। विपरीत नही है। गर्मी क्या है और ठंडक क्या है? वे एक ही चीज की कम और ज्यादा मात्राएं है—ताप की मात्राएं है। लेकिन चीज एक ही है; गर्मी और ठंडक सापेक्ष है।
तंत्र कहता है, बंधन और मोक्ष संसार और निर्वाण दो चीजें नहीं है;
वे सापेक्ष है, वे एक ही चीज की दो अवस्थाएं है। इसलिए तंत्र अनूठा है। तंत्र कहता है कि तुम्हें बंधन से ही मुक्त नहीं होना है, तुम्हें मोक्ष से भी मुक्त होना है। जब तक तुम दोनों से मुक्त नहीं होते, तुम मुक्त नहीं हो।
तो पहली बात कि किसी भी चीज के विरोध में जीने की कोशिश मत करो, क् योंकि ऐसा करके तुम उसी चीज की कोई भिन्न अवस्था में प्रवेश कर जाओगे। वह विपरीत दिखाई पड़ता है। लेकिन विपरीत है नहीं। कामवासना से ब्रह्मचर्य में जाने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य कामुकता

के सिवाय और कुछ नहीं होगा। लाभ से अलोभ में जाने की चेष्टा मत करो, क् योंकि वह अलोभ भी सूक्ष्म लोभ ही होगा। इसीलिए अगर कोई परंपरा अलोभ सिखाती है तो उसमें भी तुम्हें कुछ लालच देती है।
जो लोग लोभी है, पर लोभ के लोभी है। वे इस उपदेश से बहुत प्रभावित होंगे। वे इसके लालच में बहुत कुछ छोड़ने को तैयार हो जायेंगे। कि ‘अगर तुम लोभ को छोड़ दोगे तो तुम्हें परलोक में बहुत मिलेगा’। लेकिन पानी की प्रवृति,पाने की चाह बनी रहती है। अन्यथा लोभी आदमी अलोभ की तरफ क्यों जाएगा? उनके लोभ की सूक्ष्म तृप्ति के लिए कुछ अभिप्राय कुछ हेतु तो चाहिए ही।
तो विपरीत ध्रुवों का निर्माण मत करो। सभी विपरीतताएं परस्पर
जुड़ी है। वे एक ही चीज की भिन्न-भिन्न मात्राएं है। ओर अगर तुम्हें इसका बोध हो जाए तो तुम कहोगे कि दोनों ध्रुव एक है। अगर तुम यह अनुभव कर सके, और अगर यह अनुभव तुम्हारे भीतर गहरा हो सके तो तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे। तब तुम न संसार चाहते हो न मोक्ष। वस्तुत: तब तुम कुछ भी नहीं चाहते हो; तुमने चाहना ही छोड़ दिया। और उस छोड़ने में ही तुम मुक्त हो गए। इस भाव में ही कि सब कुछ समान है, भविष्य गिर गया। अब तुम कहां जाओगे?
यदि कामवासना और ब्रह्मचर्य एक है, तो कहां जाना है। यदि लोभ और
अलोभ एक ही है। हिंसा और अहिंसा एक ही है, तो फिर जाना कहा है? कहीं जाने को न बचा। सारी गति समाप्त हुई; भविष्य ही न रहा। तब तुम किसी चीज की भी कामना, कोई भी कामना नहीं कर सकते, क्योंकि सब कामनाए एक ही है। फर्क केवल परिमाण को होगा। तुम क्या कामना करोगे। तुम क्या चाहोगे? कभी-कभी मैं लोगों से पूछता हूं, जब मेरे पास आते है। मैं पूछता
हूं: ‘सच में तुम क्या चाहते हो?’ उनकी चाहत उनसे ही पैदा होती है। वे जैसे है उसमें ही उनकी जड़ होती है। अगर कोई लोभी है। तो वह अलोभ की चाह करता है। अगर कोई कामी है तो वह ब्रह्मचर्य की कामना करता है। कामी कामवासना से छूटना चाहता है। क्योंकि वह उससे पीड़ित है। दुःखी है। लेकिन ब्रह्मचर्य की एक कामना की जड़ उसकी कामुकता में की है।
लोग पूछते है: ‘इस संसार से कैसे छूटा जाए?’
संसार उन पर बहुत भरी पड़ रहा है। वे संसार के बोझ के नीचे दबे जा
रहे है। और वे संसार से बुरी तरह चिपके भी है। क्योंकि जब तक तुम संसार से चिपकते नहीं हो तब तक संसार तुम्हें बोझिल नहीं कर सकता। यह बोझ तुम् हारे सिर में है; और उसका कारण तुम हो बोझ नहीं। तुम इसे ढो रहे हो। लोग सारा संसार उठाए है; और फिर वे दुःखी होते है। और दुःख के इसी अनुभव से विपरीत कामना का उदय होता है। और वे विपरीत के लिए लालायित हो उठते है। पहले वह धन के पीछे भाग रहे थे; अब वे ध्यान के पीछे भाग रहे है।
पहले वह इस लोक में कुछ पाने के लिए भाग दौड़ कर रहे थे; अब वे परलोक में कुछ पाने के लिए भाग दौड़ कर रहे है। लेकिन भाग दौड़ जारी है। और भाग दौड़ ही समस्या है; विषय अप्रासंगिक है। कामना समस्या है; चाह समस्या है। तुम क्या चाहते हो, यह अर्थपूर्ण नहीं है। तुम चाहते हो, यह समस्या है।
और तुम चाह के विषय बदलते रहते हो। आज तुम ‘क’ चाहते हो, कल ‘ख’ चाहते
हो, और तुम समझते हो कि मैं बदल रहा हूं। और फिर परसों तुम ‘ग’ चाह करते हो। और तुम सोचते हो कि मैं रूपांतरित हो गया। लेकिन तुम वही हो। तुमने ‘क’ की चाह की, तुमने ‘ख’ की चाह की। और तुमने ही ‘ग’की चाह की; लेकिन क-ख-ग ये सब तुम नही हो। तुम तो वह हो जो चाहता है। जो कामना करता है। और वह वही का वही रहता है।
तुम बंधन चाहते हो। और फिर उससे निराशा हो जाते हो। ऊब जाते हो। और
तब तुम मोक्ष की कामना करने लगते हो। लेकिन तुम कामना करना जारी रखते

हो। और कामना बंधन है; इसलिए तुम मोक्ष की कामना नहीं करते। चाह ही बंधन है। इसलिए तुम मोक्ष नहीं चाह सकते। जब कामना विसर्जित होती है तो मोक्ष है; चाह का छूट जाना मोक्ष है।
इसी लिए यह सूत्र कहता है: ‘यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है।’
तो विपरीत से ग्रस्त मत होओ।
‘ये केवल विश्व से भयभीत लोगों के लिए है।’
बंधन और मोक्ष, ये शब्द उनके लिए है जो विश्व से भयभीत है।
‘यह विश्व मन का प्रतिबिंब है।’
तुम संसार में जो कुछ देखते हो वह प्रतिबिंब है। अगर वह बंधन जैसा दिखता है तो उसका मतलब है कि वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। और अगर यह विश्व मुक्ति जैसा दिखता है तो भी वह तुम्हारा प्रतिबिंब है।
‘जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे ही बंधन
और मोक्ष को देखा।’
सुबह सूरज ऊगता है। और सरोवर उनके—बड़े और छोटे, सुंदर और
कुरूप,अनेक टुकड़े कर देता है। एक ही सूरज इन अनेक छवियों में प्रतिबिंबित होता है। अनेक रूप और आकारों में कहीं गंदा और कही शुद्ध। लेकिन जो प्रतिबिंब को देख कर यथार्थ को देखेगा उसे एक ही सूर्य दिखाई देगा।
जिस संसार को तुम देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। अगर तुम
कामुक हो तो सारा संसार तुम्हें कामुक मालूम पड़ेगा। और अगर तुम चोर हो तो सारा संसार तुम्हें उसी धंधे में संलग्न मालूम पड़ेगा।
एक बार मुल्ला नसरूद्दीन और उसकी पत्नी, दोनों मछली पकड़ रहे थे।
और वह जगह प्रतिबंधित थी। केवल लाइसेंस लेकर ही लोग वहां मछली पकड़ सकत थे। अचानक एक पुलिस का सिपाही वहां आ गया। मुल्ला की पत्नी ने कहा: ‘मुल् ला, तुम्हारे पास लाइसेंस है, तुम भागों; इस बीच मैं यहां सक खिसक जाऊगी।’ मुल्ला भागने लगा, वह भागता गया। भागता गया। और सिपाही उसका पीछा करता रहा। मुल्ला ने अपनी पत्नी को वही छोड़ दिया और भागने लगा। दौड़ते-दौड़ते मुल्ला को ऐसा लगा की उसकी छाती फट जाएगी। तभी उस सिपाही ने उसे पकड़ लिया। सिपाही भी पसीने से तरबतर था। उसने मुल्ला से पूछा: ‘तुम्हारा लाइसेंस कहां है?’ मुल्ला ने लाइसेंस निकाल कर दिखाया। सिपाही ने गौर से लाइसेंस को देखा और उसे सही पाया। और तब उसने पूछा: नसरूद्दीन,फिर तुम भाग क्यों रहे थे? तुम्हारे पास तो लाइसेंस था। मुल्ला ने कहा: ‘मैं एक डाक्टर के पास जाता हूं, और वह कहता है कि
भोजन के बाद आधा मील दौड़ करो।’ सिपाही ने कहा: ‘लेकिन वह तो ठीक है, लेकिन तुम देख रहे थे कि मैं तुम्हारे पीछे भाग रहा हूं, चिल्ला रहा हूं। तब तुम क्यों नहीं रुके’? मुल्ला ने कहा: ‘मैं समझा कि शायद तुम भी उसी डाक्टर के पास जाते हो।’
बिलकुल तर्कसंगत है; यही हो रहा है। तुम अपने चारों और जो कुछ
देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब ज्यादा है। यथार्थ कम है। तुम अपने को ही सब जगह प्रतिबिंबित देख रहे हो। और जिस क्षण तुम बदलते हो, तुम्हारा प्रतिबिंब भी बदल जाता है। और जिस क्षण तुम समग्ररतः: मौन हो जाते हो, शांत हो जाते हो, सारा संसार भी शांत हो जाता है। संसार बंधन नहीं है, बंधन केवल एक प्रतिबिंब है। संसार मोक्ष भी नहीं है। मोक्ष भी प्रतिबिंब है। बुद्ध को सारा संसार निर्वाण में दिखाई पड़ता है। कृष्ण को सारा जगत नाचता-गाता, आनंद में, उत्सव मनाता हुआ दिखाई पड़ता है। उन् हें कही कोई दुःख नहीं दिखाई पड़ता है।
लेकिन तंत्र कहता है कि तुम जो भी देखते हो वह प्रतिबिंब ही है। जब
तक सारे दृश्य नहीं विदा हो जाते और शुद्ध दर्पण नही बचता— प्रतिबिंबरहित दर्पण। वही सत्य है। अगर कुछ भी दिखाई देता है तो वह

प्रतिबिंब ही है। सत्य एक है। अनेक तो प्रतिबिंब ही हो सकते है। और एक बार यह समझ में आ जाए—सिद्धांत के रूप में नहीं, अस्तित्वगत, अनुभव के द्वारा—तो तुम मुक्त हो, बंधन और मोक्ष दोनों से मुक्त हो।
इसे इस ढंग से देखो। जब तुम बीमार होते हो तो स्वास्थ्य की कामना
करते हो। यह स्वास्थ्य की कामना तुम्हारी बीमारी का ही अंग है। अगर तुम स्वस्थ ही हो तो तुम स्वास्थ्य की कामना नहीं करोगे। कैसे करोगे? अगर तुम सच में स्वस्थ हो तो फिर स्वास्थ्य की चाह कहां है? उसकी जरूरत नहीं है।
अगर तुम यथार्थत: स्वस्थ तो तुम्हें महसूस नहीं होता कि मैं स्वस्
थ हूं। सिर्फ बीमार, रोगग्रस्त लोग ही महसूस कर सकते है कि हम स्वस्थ है। उसकी जरूरत क्या है। तुम कैसे महसूस कर सकते हो की तुम स्वस्थ हो। अगर तुम स्वास्थ ही पैदा हुए और कभी नहीं बीमार हुए, तो क्या तुम कभी अपने स्वास्थ को महसूस कर सकोगे?
स्वास्थ तो है, लेकिन उसका अहसास नहीं हो सकता। उसका अहसास तो
विपरीत के द्वारा, विरोधी के द्वारा ही हो सकता है। विपरीत के द्वारा ही, उसकी पृष्ठभूमि में ही किसी चीज का अनुभव होता है। अगर तुम बीमार हो तो स्वास्थ का अनुभव कर सकते हो; और अगर तुम्हें स्वास्थ्य का अनुभव हो रहा है तो निश्चित जानो कि तुम अब भी बीमार हो।
तो नरोपा ने कहा: ‘हां और नहीं दोनों। हां इसलिए कि अब कोई बंधन
नहीं रहा। और नहीं इसलिए कि बंधन के जाने के साथ मुक्ति भी विलीन हो गई। मुक्ति बंधन का ही हिस्सा थी। अब मैं दोनों के पार हूं; न बंधन में हूं, और न मोक्ष में।’
धर्म को चाह मत बनाओ। धर्म को कामना मत बनाओ। मोक्ष को, निर्वाण को कामना का विषय मत बनाओ। वह तभी घटित होता है जब सारी कामनाए खो जाती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-45

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—70 (ओशो)
‘अपनी प्राण शक्ति को मेरुदंड के ऊपर उठती, एक केंद्र की और गति करती हुई प्रकाश किरण समझो, और इस भांति तुममें जीवंतता का उदय होता है।’
योग के अनेक साधन अनेक उपाय इस विधि पर आधारित है। पहले समझो कि यह
क्या है, और फिर इसके प्रयोग को लेंगे।
मेरुदंड, रीढ़ तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क दोनों का आधार है। तुम्
हारा मस्तिष्क, तुम्हारा सिर तुम्हारे मेरुदंड का ही अंतिम छोर है। मेरुदंड पूरे शरीर की आधारशिला है। और अगर मेरुदंड युवा है तो तुम युवा हो। और अगर मेरुदंड बूढा है तो तुम बढ़े हो। अगर तुम अपने मेरुदंड को युवा रख सको तो बूढा होना कठिन है। सब कुछ इस मेरूदंड पर निर्भर है। अगर तुम्हारा मेरूदंड जीवंत है तो तुम्हारे मन मस्तिष्क में मेधा होगी। चमक होगी। और अगर तुम्हारा मेरूदंड जड़ और मृत है तो तुम्हारा मन भी बहुत जड़ होगा। समस्त योग अनेक ढंग से तुम्हारे मेरूदंड को जीवंत, युवा,ताजा और प्रकाशपूर्ण की चेष्टा करता है।
मेरूदंड के दो छोर है। उसके आरंभ का काम-केंद्र है और उसके शिखर पर सहस्त्रार है—सिर के ऊपर जो सातवां चक्र है। मेरूदंड का जा आरंभ है वह पृथ्वी से जुड़ा है। कामवासना तुम्हारे भीतर सर्वाधिक पार्थिव चीज है। तुम्हारे मेरूदंड के आरंभिक चक्र के द्वारा तुम निसर्ग के संपर्क में

आते हो। जिसे सांख्य प्रकृति कहता है—पृथ्वी,पदार्थ। और अंतिम चक्र से सहस्त्रार से तुम परमात्मा के संपर्क में होते हो।
तुम्हारे अस्तित्व के ये दो ध्रुव है। पहला काम केंद्र है, और
उसके शिखर पर सहस्त्रार है। अंग्रेजी में सहस्त्रार के लिए कोई शब्द नहीं है। ये ही दो ध्रुव है। तुम्हारा जीवन या तो कामोन्मुख होगा या सहस्त्रोन्मुख होगा। या तो तुम्हारी ऊर्जा काम केंद्र से बहकर पृथ्वी में वापस जाएगी,या तुम्हारी ऊर्जा सहस्त्रार से निकलकर अनंत आकाश में समा जाएगी। तुम सहस्त्रार से ब्रह्म में, परम सत्ता में प्रवाहित हो जाते हो। तुम काम केंद्र से पदार्थ जगत में प्रवाहित होते हो। ये दो प्रवाह है; ये दो संभावनाएं है।
जब तक तुम ऊपर की और विकसित नहीं होते, तुम्हारे दुःख कभी समाप्त नहीं होगे। तुम्हें सुख की झलकें मिल सकती है; लेकिन वे झलकें ही होगी और बहुत भ्रामक होंगी। जब ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होगी। तुम्हें सुख की अधिकाधिक सच्ची झलकें मिलने लगेंगी। और जब ऊर्जा सहस्त्रार पर पहुँचेगी तुम परम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे। वही निर्वाण है। तब झलक नहीं मिलती, तुम आनंद ही हो जाते हो।
योग और तंत्र की पूरी चेष्टा यह है कि कैसे ऊर्जा को मेरूदंड के द्वारा ऊध्र्वगामी बनाया जाए,कैसे उसे गुरूत्वाकर्षण के विपरीत गतिमान किया जाये। काम या सेक्स आसान है, क्योंकि वह गुरूत्वाकर्षण के विपरीत नहीं है। पृथ्वी सब चीजों को अपनी ओर खींच रही है। तुम्हारी काम ऊर्जा को भी पृथ्वी नीचे खींच रही है। तुमने शायद यह नहीं सुना हो, लेकिन अंतरिक्ष यात्रियों ने यह अनुभव किया है कि जैसे ही वे पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बाहर निकल जाते है,उनकी कामुकता बहुत क्षण हो जाती है। जैसे-जैसे शरीर का वजन कम होता है। कामुकता विलीन हो जाती है। पृथ्वी तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को नीचे की तरफ खींचती है। और यह स् वाभाविक है। क्योंकि जीवन-ऊर्जा पृथ्वी से आती है। तुम भोजन लेते हो, और उससे तुम अपने भीतर जीवन ऊर्जा निर्मित कर रहे हो। यह ऊर्जा पृथ्वी से आती है। और पृथ्वी उसे वापस खींचती है। प्रत्येक चीज अपने मूल स्त्रोत को लौट जाती है। और अगर यह ऐसे ही चलता रहा, जीवन ऊर्जा फिर-फिर पीछे लौटती रहे, तुम वर्तुल में घुमते रहे। तो तुम जन्मों-जन्मों तक ऐसे ही घूमते रहोगे। तुम इस ढंग से अनंतकाल तक चलते रह सकते हो। यदि तुम अंतरिक्ष यात्रियों की तरह छलांग नहीं लेते। अंतरिक्ष यात्रियों की तरह तुम्हें छलांग लेना है और वर्तुल के पार निकल जाना है। तब पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण का पैटर्न टूट जाता है। यह तोड़ा जा सकता है।
यह कैसे तोड़ा जा सकता है। ये उसकी ही विधियां है। ये विधियां इस
बात की फ्रिक करती है कि कैसे ऊर्जा ऊर्ध्व गति करे, नये केंद्रों तक पहुचे; कैसे तुम्हारे भीतर नई ऊर्जा का आविर्भाव हो और कैसे प्रत्येक गति के साथ वह तुम्हें नया आदमी बना दे। और जिस क्षण तुम्हारे सहस् त्रार से, कामवासना के विपरीत ध्रुव से तुम्हारी ऊर्जा मुक्त होती है। तुम आदमी नहीं रह गए; तब तुम इस धरती के न रहे,तब तुम भगवान हो गए।
जब हम कहते है कि कृष्ण या बुद्ध भगवान है तो उसका यही अर्थ है।
उनके शरीर तो तुम्हारे जैसे है। उनके शरीर भी रूग्ण होंगे और मरेंगे।
उनके शरीरों में सब कुछ वैसा ही होता है जैसे तुम्हारे शरीरों में होता है। सिर्फ एक चीज उनके शरीरों में नहीं होती जो तुम्हारे शरीर में होती है। उनकी ऊर्जा ने गुरूत्वाकर्षण के पैटर्न को तोड़ दिया है। लेकिन वह तुम नहीं देख सकते; वह तुम्हारी आंखों के लिए दृश्य नहीं है।
लेकिन कभी-कभी जब तुम किसी बुद्ध की सन्निधि में बैठते हो तो तुम
यह अनुभव कर सकते हो। अचानक तुम्हारे भीतर ऊर्जा का ज्वार उठने लगता है और तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ यात्रा करने लगती है। तभी तुम जानते हो कि

कुछ घटित हुआ है। केवल बुद्ध के सत्संग में ही तुम्हारी ऊर्जा सहस् त्रार की तरफ गति करने लगती है। बुद्ध इतने शक्तिशाली है कि पृथ्वी की शक्ति भी उनसे कम पड़ जाती है। उस समय पृथ्वी की ऊर्जा तुम्हारी ऊर्जा को नीचे की तरफ नहीं खींच सकती है। जिन लोगों ने जीसस,बद्ध या कृष्ण की सन्निधि में इसका अनुभव लिया है, उन्होंने ही उन्हें भगवान कहा है। उनके पास ऊर्जा का एक भिन्न स्त्रोत है जो पृथ्वी से भी शक्तिशाली है। इस पैटर्न को कैसे तोड़ा जा सकता है। यह विधि पैटर्न तोड़ने में
बहुत सहयोगी है। लेकिन पहले कुछ बुनियादी बातें ख्याल में ले लो।
पहल बात कि अगर तुमने निरीक्षण किया होगा तो तुमने देखा होगा कि तुम्हारी काम ऊर्जा कल्पना के साथ गति करती है। सिर्फ कल्पना के द्वारा भी तुम्हारी काम-ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। सच तो यह है कि कल्पना के बिना वह सक्रिय नहीं हो सकती हे। यही कारण है कि जब तुम किसी के प्रेम में होते हो तो काम-ऊर्जा बेहतर काम करती है। क्योंकि प्रेम के साथ कल् पना प्रवेश कर जाती है। अगर तुम प्रेम में नहीं हो तो बहुत कठिन है; वह काम नहीं करेगी।
इसीलिए पुराने दिनों में पुरूष-वेश्याएं नहीं होती थी। सिर्फ स्
त्री वेश्याएं होती थी। पुरूष वेश्या के लिए काम के तल पर सक्रिय होना कठिन है। अगर वह प्रेम में नहीं है। और सिर्फ पैसे के लिए वह प्रेम कैसे कर सकता है। तुम किसी पुरूष को तुम्हारे साथ संभोग में उतरने के लिए पैसे दे सकती हो; लेकिन अगर उसे तुम्हारे प्रति भाव नहीं है। कल्पना नहीं है तो वह सक्रिय नहीं हो सकता। स्त्रियां यह कर सकती है। क्योंकि उनकी कामवासना निष्क्रिय है,सच तो यह है कि उन्हें कोई भी भाव न हो। उनके शरीर लाश की भांति पड़े रहे सकते है। वेश्या के साथ तुम एक जीवित शरीर के साथ नहीं, एक मृत शरीर या लाश के साथ संभोग करते हो। स्त्रियां आसानी से वेश्या हो सकती है। क्योंकि उनकी काम ऊर्जा निष्क्रिय है। तो काम केंद्र कल्पना से काम करता है। इसीलिए स्वप्नों में तुम्
हें इरेक्शन हो सकता हे। और वीर्यपात भी हो सकता है। वहां कुछ भी वास् तविक नहीं है। सब कुछ कल्पना का खेल है। फिर भी देखा गया है कि प्रत्येक पुरूष को, अगर वह स्वस्थ है, रात में कम से कम दस दफा इरेक्श्न होता है। मन की जरा सी गति के साथ, काम का जरा सा विचार उठने से ही इरेक्शन हो जाएगा।
तुम्हारे मन की अनेक शक्तियां है, अनेक क्षमताएं है; और उनमें से
एक है संकल्प। लेकिन तुम संकल्प से काम कृत्य में नहीं उतर सकते; काम के लिए संकल्प नपुंसक है। अगर तुम संकल्प से किसी के साथ संभोग में उतरते की चेष्टा करोगे तो तुम्हें लगेगा कि तुम नापुंसग हो गए। कभी चेष्टा मत करो। कामवासना में संकल्प नहीं, कल्पना काम करती है। कल्पना करो, ओर तुम्हारा काम केंद्र सक्रिय हो जाएगा।
तुम्हारे मन की अनेक शक्तियां है, अनेक क्षमताएं है। और उनमें से
एक है संकल्प। लेकिन मैं क्यों इस तथ्य पर इतना जौर दे रहा हूं, क्योंकि यदि कल्पना ऊर्जा को गतिमान करने में सहयोगी है तो तुम सिर्फ कल्पना के द्वारा उसे चाहो तो ऊपर ले जा सकते हो। और चाहों तो नीचे ला सकते हो। तुम अपने खून को कल्पना से गतिमान नहीं कर सकते; तुम शरीर में और कुछ कल्पना से नहीं कर सकते। लेकिन काम ऊर्जा कल्पना से गतिमान की जा सकती है। तुम उसकी दिशा बदल सकते हो।
यह सूत्र कहता है: ‘अपनी प्राण-शक्ति को प्रकाश किरण समझो।’ स्वयं
को अपने होने को प्रकाश किरण समझो। योग ने तुम्हारे मेरूदंड को सात चक्रों में बांटा है। पहला काम केंद्र है। और अंतिम सहस्त्रार है। और इन दोनों के बीच पाँच चक्रा है। कोई-कोई साधना पद्धति मेरूदंड को नौ केंद्रों में बाँटती है। कोई तीन में ही और कोई चार में। यह विभाजन बहुत

अर्थ नही रखता है। प्रयोग के लिए पाँच केंद्र प्रर्याप्त है। पहला काम-केंद्र है; दूसरा ठीक नाभि के पीछे है; तीसरा ह्रदय के पीछे है। चौथा केंद्र तुम्हारी दोनों भौंहों के बीच में है—ठीक ललाट के बीच में; और अंतिम केंद्र सहस्त्रार तुम्हारे सिर के शिखर पर है। ये पाँच पर्याप्त है।
यह सूत्र कहता है: ‘अपने को समझो,’ उसका अर्थ है कि भाव करो, कल्पना करो। आंखे बंद कर लो और भाव करो कि मैं बस प्रकाश हूं। यह भाव या कल्पना नहीं है। शुरू-शुरू में कल्पना ही है। लेकिन यथार्थ में भी ऐसा ही है। क्योंकि हरेक चीज प्रकाश से बनी है। अब विज्ञान कहता है कि सब कुछ विद्युत है। तंत्र ने तो सदा से कहा कि सबकुछ प्रकाश कणों से बना है और तुम भी प्रकाश कणों से ही बने हो। इसीलिए कुरान कहता है कि परमात्मा प्रकाश है। तुम प्रकाश हो।
तो पहले भाव करो मैं बस प्रकाश-किरण हूं। और फिर अपनी कल्पना को
काम केंद्र के पास ले जाओ। अपने अवधान को वहां एकाग्र करो और भाव करो कि प्रकाश किरणें काम केंद्र से ऊपर उठ रही है। मानों काम केंद्र से ऊपर उठ रही है। मानो काम केंद्र प्रकाश का स्त्रोत बन गया है। और प्रकाश किरणें वहां से नाभि केंद्र की और ऊपर उठ रही है।
विभाजन इस लिए जरूरी है, क्योंकि तुम्हारे लिए काम केंद्र को
सीधे सहस्त्रार से जोड़ना कठिन है। छोटे-छोटे विभाजन इसलिए उपयोगी है। यदि तुम सीधे सहस्त्रार से जुड़ सको तो किसी विभाजन की जरूरत नहीं हे। तुम काम केंद्र के ऊपर के सभी विभाजन गिरा दे सकते हो। और उर्जा जीवन शक्ति प्रकाश की भांति सीधे सहस्त्रार की और उठने लगेगी।
जब तुम अनुभव करो कि अब नाभि पर स्थित दूसरा केंद्र प्रकाश का स् त्रोत बन गया है। कि प्रकाश किरणें वहां आकर इकट्ठी होने लगी है। तब ह्रदय केंद्र कीओर गति करो। और ऊपर बढ़ो। और जैसे-जैसे प्रकाश ह्रदय केंद्र पर पहुंचता है, वैसे ही तुम्हारे ह्रदय केंद्र की धड़कने बदल जायेगी। तुम्हारी श्वास गहरी होने लगेगी, और तुम्हारे ह्रदय में गरमाहट पहुंचने लगेगी। तब उससे भी और आगे और ऊपर बढ़ो।
और जैसे-जैसे तुम्हें गरमाहट अनुभव होगी,वैसे-वैसे ही, तुम्हारे
भीतर एक जीवंतता का उन्मेष होगा। एक आंतरिक प्रकाश का उदय होगा। काम-ऊर्जा के दो हिस्से है। एक हिस्सा शारीरिक है और दूसरा मानसिक
है। तुम्हारे शरीर में हरेक चीज के दो हिस्से है। तुम्हारे शरीर मन की भांति ही तुम्हारे भीतर प्रत्येक चीज के दो हिस्से है: एक भौतिक है और दूसरा अभौतिक। काम-ऊर्जा के भी दो हिस्से है। वीर्य उसका भौतिक हिस्सा है। वीर्य उपर नहीं उठ सकता। उसके लिए मार्ग नहीं है। इसीलिए पश्चिम के अनेक शरीर शास्त्री कहते है कि तंत्र और योग की साधना बकवास है; वे उन् हें इनकार ही करते है। काम-ऊर्जा ऊपर की और कैसे उठ सकती है। इसके लिए कोई मार्ग नहीं हे। और वह ऊपर नहीं उठ सकती।
वे शरीर शस्त्री सही है। और फिर भी गलत है। काम ऊर्जा का जो भौतिक हिस्सा है, वह जो वीर्य है,वह तो ऊपर नहीं उठ सकता;लेकिन वही सब कुछ नहीं है। सच तो यह है कि वीर्य काम-ऊर्जा का शरीर भर है। वह स्वयं काम ऊर्जा नहीं हे। काम-ऊर्जा तो उकसा अभौतिक हिस्सा है। और यह अभौतिक तत्व ऊपर उठ सकता है। और उसी अभौतिक ऊर्जा के लिए मेरूदंड मार्ग का काम करता है। मेरूदंड और उसके चक्र मार्ग का काम करते है। लेकिन उसका तो अनुभव से जानना होगा। और तुम्हारी संवेदनशीलता मर गई है।
जब कोई हाथ तुम्हें स्पर्श करता है तो हाथ नहीं, दबाव और गरमाहट
अनुभव होती है। हाथ तो अनुभव भर है। वह बुद्धि है, भाव नहीं। गरमाहट और दबाव अनुभूतियां है। हमने अनुभूतियां बिलकुल खो दी है। तुम्हें फिर से उसे विकसित करना होगा। केवल तभी इन विधियों को प्रयोग में ला सकते हो।

अन्यथा ये विधियां काम नहीं करेंगी। तुम केवल बुद्धि से सोचोगे कि मैं अनुभव करता हूं। और कुछ भी घटित नहीं होगा। यही कारण है कि लोग मेरे पास आते है और कहते है कि यह विधि बहुत महत्व पूर्ण है, लेकिन कुछ घटित नहीं होता।
उन्होंने प्रयोग तो किया है परंतु वह एक आयाम चुक गये। वे अनुभव
का आयाम चुक गये। तो तुम्हें पहले इस आयाम को विकसित करना होगा। और उसके कुछ उपाय है जिन्हें तुम प्रयोग में ला सकते हो।
तुम एक काम करो, अगर तुम्हारे घर में कोई छोटा बच्चा है तो
प्रतिदिन एक घंटा उसे बच्चे के पीछे-पीछे चलो। बुद्ध के पीछे चलने से उनके पीछे चलना बेहतर है। और कही ज्यादा तृप्ति दायी हो सकता है। बच्चे को अपने चारों हाथ-पाँव पर चलने को कहो, घुटनों के बल चलने को कहो, बच्चे के पीछे तुम भी चलो।
और पहली बार तुम्हें अपने में एक नव जीवन का उन्मेष होगा। तुम फिर बच्चे हो जाओगे। बच्चे को देखो। और उसके पीछे-पीछे चलो। बच्चा घर के कोने-कोने में जाएगा। वह घर की हरेक चीज को स्पर्श करेगा। न केवल स्पर्श करेगा। वह एक-एक चीज का स्वाद लेगा। वह एक-एक चीज को सूंघेगा। तुम बस उसका अनुकरण करो;वह जो भी करे तुम भी वही करो।
मनुष्य बच्चों से बहुत कुछ सीख सकता है। और देर-अबेर तुम्हारी सच्
ची निर्दोषता प्रकट हो जाएगी। तुम भी कभी बच्चे थे। और तुम जानते हो कि बच्चा होना क्या है। सिर्फ उसका विस्मरण हो गया है।
तो अनुभूति के केंद्रों को फिर से विकसित करो। तो ही ये विधियां
कारगर हो सकती है। अन्यथा तुम सोचते रहोगे कि ऊर्जा ऊपर उठ रही है। लेकिन उसकी कोई अनुभूति नहीं होगी। और अनुभूति के अभाव में कल्पना व् यर्थ है, बांझ है। अनुभूति भरा भाव ही परिणाम ला सकता है।
तुम और भी कई चीजें कर सकते हो। और उन्हें करने में कोई विशेष
प्रयत्न भी नहीं है। जब तुम सोने जाओ तो विस्तर को, तकिए को महसूस, उसकी ठंडक को महसूस करो। तकिए को छुओ उसके साथ खेलो। अपनी आंखें बंद कर लो और सिर्फ एयरकंडीशनर की आवाज को सुनो। घड़ी की आवाज कोया चलती सड़क के शोरगुल को सुनो। कुछ भी सुनो उसे नाम मत दो कुछ कहो ही मत मन का उपयोग की मत करो। बस अनुभूति में जीओं।
सुबह जागने के पहले क्षण में, जब तुम्हें लगे कि नींद जा चुकी है
तो तुरंत सोच-विचार मत करने लगो। कुछ क्षणों के लिए तुम फिर से बच्चे हो सकते हो। निर्दोष और ताजे हो सकते हो। तुरंत सोच-विचार में मत लग जाओ। यह मत सोचो कि क्या-क्या करना है। कब दफ्तर के लिए रवाना होना है, कौन सी गाड़ी पकड़नी है। सोच-विचार मत शुरू करो। उन मूढ़ताओं के लिए तुम्हें काफी समय मिलेगा। अभी रुको और अभी कुछ क्षणों के लिए सिर्फ ध्वनियों पर ध्यान दो। एक पक्षी गाता है। वृक्षों से हवाएँ गुजर रही है। कोई बच्चा रोता है या दूध देने वाला आया है। और पुकार रहा है। या वह पतीले में दूध डाल रहा है। जो भी हो रहा है उसे महसूस करो, उसके प्रति संवेदनशील बनो। खुले रहो। उसकी अनुभूति में डुबो। और तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ जायेगी।
जब स्नान करो तो उसे अपने पूरे शरीर पर अनुभव करो; पानी की प्रत्
येक बूंद को अपने ऊपर गिरते हुए महसूस करो। उसके स्पर्श को, उसकी शीतलता और उष्णता को महसूस करो। पूरे दिन इसका प्रयोग करो; जब भी अवसर मिले प्रयोग करो। और सब जगह अवसर ही अवसर है। श्वास लेते हुए सिर्फ श्वास को अनुभव करो। भीतर जाती और बाहर आती श्वास को महसूस करो। केवल अनुभव करो1 अपने शरीर को ही महसूस करो। तुमने उसे भी नहीं अनुभव किया है।
हम अपने शरीर से भी इतने ही भयभीत है। कभी अपने शरीर को
प्रेमपूर्वक स्पर्श नहीं करता है। क्या तुमने कभी अपने शरीर को ही

प्रेम किया है। समूची सभ्यता इस बात से भयभीत है। कोई अपने को स्पर्श करे। क्योंकि बचपन में स्पर्श वर्जित रहा है। अपने को प्रेमपूर्वक स् पर्श करना हस्तमैथुन जैसा महसूस होता है। लेकिन अगर तुम अपने को ही प्रेम से स्पर्श नहीं कर सकते हो। तो तुम्हारा शरीर जड़ हो जाता है। मृत हो जाता है। वह दरअसल जड़ और मृत हो गया है।
अपनी आंखों को स्पर्श करो। तुम्हारी आंखों तुरंत ताजी और जीविंत
हो उठेगी। अपने पूरी शरीर को महसूस करो; अपने प्रेमी के शरीर को महसूस करो; अपने मित्र के शरीर को महसूस करो। एक दूसरे को सहलाओ; एक दूसरे की मालिश करो। अपने मित्र के शरीर छुओ, उसकी छूआन को महसूस करो। तुम अधिक संवेदन शील हो जाओगे।
संवेदनशीलता और अनुभूति पैदा करो। तभी तुम इन विधियों का प्रयोग सरलता से कर सकते हो। और तब तुम्हें अपने भीतर जीवन ऊर्जा के ऊपर उठने का अनुभव होगा। इस ऊर्जा को बीच में मत छोड़ो। उसे सहस्त्रार तक जाने दो। स्मरण रहे कि जब भी तूम यह प्रयोग करो तो उसे बीच में मत छोड़ो; उसे पूरा करो। यह भी ध्यान रहे कि इस प्रयोग में कोई तुम्हें बाधा न पहुँचाए। अगर तुम इस ऊर्जा को कहीं बीच में छोड़ दोगे तो उससे तुम्हें हानि हो सकती है। इस ऊर्जा को मुक्त करना होगा। तो उसे सिर तक ले जाओ। और भाव करो कि तुम्हारा सिर एक द्वार बन गया है।
इस देश में हमने सहस्त्रार को हजार पंखुड़ियों वाले कमल के रूप
में चित्रित किया है। सहस्त्रार का यही अर्थ है। तो धारणा करो कि हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल रहा है। और उसकी प्रत्येक पंखुडी से यह प्रकाश ऊर्जा ब्रह्मांड में फैल रही है। यह फिर एक अर्थों में संभोग है; लेकिन यह प्रकृति के साथ नहीं, परम के साथ संभोग है। और फिर एक आर्गाज्म घटित होता है।
आर्गाज्म दो प्रकार का होता है। एक सेक्सुअल और दूसरा स्प्रिचुअल सेक्सुअल आर्गाज्म निम्नतम केंद्र से आता है। और स्प्रिचुअल उच्चतम केंद्र से। उच्चतम केंद्र से तुम उच्चतम से मिलते हो और निम्नतम केंद्र से निम्नतम से।
साधारण संभोग में भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो। दोनों लोग यह
प्रयोग कर सकते हो। ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाओ। और तब संभोग तंत्र साधना बन जाता है। तब वह ध्यान बन जाता है।
लेकिन ऊर्जा को कही शरीर में, किसी बीच के केंद्र मत छोड़ो। कोई व् यक्ति बीच में आ सकता है जिसके साथ तुम्हें व्यावसायिक सरोकार हो, या कोई फोन आ जाए और तुम्हें प्रयोग को बीच में ही छोड़ना पड़े। इसलिए ऐसे समय में प्रयोग करो कि कोई तुम्हें बाधा न दे। और ऊर्जा को किसी केंद्र पर न छोड़ना पड़े। अन्यथा वह केंद्र जहां तुम ऊर्जा को छोड़ोगे धाव बन जाएगा और तुम्हें अनेक मानसिक रूग्णताओं का शिकार होना पड़ेगा।
तो सावधान रहो;अन्यथा यह प्रयोग मत करो। इस विधि के लिए नितांत
एकांत आवश्यक है। बाधा रहितता आवश्यक है। और आवश्यक है कि तुम उसे पूरा करो। उर्जा को सिर तक जाना चाहिए। और वहीं से उसे मुक्त होना चाहिए। तुम्हें अनेक अनुभव होंगे। जब तुम्हें लगेगा कि प्रकाश किरणें
काम केंद्र से ऊपर उठने लगी है तो काम केंद्र पर इरेक्शन का ओर उत्तेजना का अनुभव होगा। अनेक लोग बहुत भयभीत और आतंकित स्थिति में मेरे पास आते है। और कहते है कि जब हम ध्यान करते है, जब हम ध्यान में गहरे जाते है। हमें इरेक्शन होता है। और वे चकित होकर पूछते है कि यह क्या है।
वे भयभीत हो जोत है क्योंकि वे सोचते है कि ध्यान मे कामुकता के
लिए जगह नहीं होनी चाहिए। लेकिन तुम्हें जीवन के रहस्यों कापता नहीं है। यह अच्छा लक्षण है। यह बताता है। कि ऊर्जा उठ रही है। उसे गति की जरूरत है। तो आतंकित मत होओ। और यह मत सोचो कि कुछ गलत हो रहा है। यह शुभ

लक्षण है। जब तुम ध्यान शुरू करते हो तो काम-केंद्र ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा जीवंत, ज्यादा उत्तेजित हो जाएगा। वह बिलकुल शीतल हो जाएगा। अब उष्णता सिर में आ जाएगी।
और यह शारीरिक बात है। जब काम केंद्र-उत्तेजित होता है तो वह गरम
हो जाता है। तुम उस गरमाहट को महसूस कर सकत हो। वह शारीरिक है। लेकिन जब ऊर्जा ऊपर उठती है तो काम केंद्र ठंडा होने लगता है। बहुत ठंडा होने लगता है। और उष्णता सिर पर पहुंच जाती है। तब तुम्हें सिर में चक्कर आने लगेगा। जब ऊर्जा सिर में पहुँचेगी तो तुम्हारा सिर घूमने लगेगा। कभी- कभी तुम्हें घबराहट भी होगी;क्योंकि पहली बार ऊर्जा सिर में पहुंची है। और तुम्हारा सिर उससे परिचित नहीं है। उसे ऊर्जा के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ेगा।
सिर में पहुंच जाए तो तुम बेहोश भी हो सकते हो। लेकिन यह बेहोशी एक घंटे से ज्यादा देर तक नहीं रह सकती। घंटे भर के भीतर ऊर्जा अपने आप ही वापस लौट जाएगी। या मुक्त हो जायेगी। तुम उस अवस्था में कभी एक घंटे से ज्यादा देर नहीं रह सकते। मैं कहता तो हूं एक घंटा, लेकिन असल में यह समय अड़तालीस मिनट है। यह उससे ज्यादा नहीं हो सकता,लाखों वर्षों के प्रयोग के दौरान कभी ऐसा नहीं हुआ है।
तो डरो मत; तुम बेहोश भी हो जाओ तो ठीक है। उस बेहोशी के बाद तुम
इतने ताजा अनुभव करोगे कि तुम्हें लगेगा। कि मैं पहली बार नींद से, गहनत्म नींद से गुजरा हुं। योग में इसका एक विशेष नाम है; उसे योग-तंद्रा कहा जाता हे। यह बहुत गहरी नींद है। इसमे तुम अपने गहनत्म केंद्र पर सरक जाते हो। लेकिन डरो मत।
और अगर तुम्हारा सिर गरम हो जाए तो यह भी शुभ लक्षण है। ऊर्जा को मुक्त होने दो। भाव करो कि तुम्हारा सिर कमल के फूल की भांति खिल रहा है। भाव करो कि ऊर्जा ब्रह्मांड में मुक्त हो रही है। फैलती जा रही है। और जैसे-जैसे ऊर्जा मुक्त होगी, तुम्हें शीतलता का अनुभव होगा। इस उष् णता के बाद जो शीतलता आती है। उसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। लेकिन विधि को पूरा प्रयोग करो; उसे कभी आधा अधूरा मत छोड़ा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—71 (ओशो)
‘या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है— ऐसा भाव करो।
थोड़े से फर्क के साथ यह विधि भी पहली विधि जैसी ही है। या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है— ऐसा भाव करो।’
एक केंद्र से दूसरे केंद्र तक ताकी हुई प्रकाश-किरणों में बिजली
के कौंधने का अनुभव करो—प्रकाश की छलांग का भाव करो। कुछ लोगों के लिए यह दूसरी विधि ज्यादा अनुकूल होगी, और कुछ लोगों के लिए पहली विधि ज् यादा अनुकूल होगी। यही कारण है कि इतना सा संशोधन किया गया है।
ऐसे लोग है जो क्रमश: घटित होने वाली चीजों की धारणा नहीं बना रहते; और कुछ लोग है जो छलाँगों की धारणा नहीं बना सकते। अगर तुम क्रम की सोच सकते हो, चीजों के क्रम से होने की कल्पना कर सकते हो, तो तुम् हारे लिए पहली विधि ठीक है। लेकिन अगर तुम्हें पहली विधि के प्रयोग से पता चले कि प्रकाश-किरणें एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर सीधे छलांग

लेती है। तो तुम पहली विधि का प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए यह दूसरी विधि बेहतर है।
‘यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।’
भाव करो कि प्रकाश की एक चिनगारी एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर
छलांग लगा रही है। और दूसरी विधि ज्यादा सच है, क्योंकि प्रकाश सचमुच छलांग लेता है। उसमें कोई क्रमिक, कदम-ब-कदम विकास नहीं होता। प्रकाश छलांग है।
विद्युत के प्रकाश को देखो। तुम सोचते हो कि यह स्थिर है; लेकिन वह भ्रम है। उसमें भी अंतराल है; लेकिन वे अंतराल इतने छोटे है कि तुम्हें उनका पता नहीं चलता है। विद्युत छलाँगों में आती है। एक छलांग, और उसके बाद अंधकार का अंतराल होता है। फिर दूसरी छलांग, और उसके बाद फिर अंधकार का अंतराल होती हे। लेकिन तुम्हें कभी अंतराल का पता नहीं चलता है। क् योंकि छलांग इतनी तीव्र है। अन्यथा प्रत्येक क्षण अंधकार आता है; पहले प्रकाश की छलांग और फिर अंधकार। प्रकाश कभी चलता नहीं, छलांग ही लेता है। और जो लोग छलांग की धारणा कर सकते है। यह दूसरी संशोधित विधि उनके लिए है।
‘या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव
करो।’
प्रयोग करके देखो। अगर तुम्हें किरणों का क्रमिक ढंग से आना अच्
छा लगता है। तो वही ठीक है। और अगर वह अच्छा न लगे। और लगे कि किरणें छलांग ले रही है। तो किरणों की बात भूल जाओ और आकाश में कौंधने वाली विद्युत की, बादलों के बीच छलांग लेती विद्युत की धारणा करो। स्त्रियों के लिए पहली विधि आसान होगी और पुरूषों के लिए दूसरी। स्त्री–चित क्रमिकता की धारणा ज्यादा आसानी से बना सकता है और पुरूष-चित ज्यादा आसानी से छलांग लेगा सकता है। पुरूष चित उछलकूद पसंद करता है; वह एक से दूसरी चीज पर छलांग लता है। पुरूष-चित में एक सूक्ष्म बेचैनी रहती है। स्त्री-चित में क्रमिकता की एक प्रक्रिया है। स्त्री- चित उछलकूद नहीं पसंद करता है। यही वजह है कि स्त्री और पुरूष के तर्क इतने अलग होते है। पुरूष एक चीज से दूसरी चीज पर छलांग लगाता रहता है। स्त्री को यह बात बड़ी बेबूझ लगती है। उसके लिए विकास क्रमिक विकास जरूरी है।
लेकिन चुनाव तुम्हारा है। प्रयोग करो, और जो विधि तुम्हें रास आए
उसे चुन लो।
इस विधि के संबंध में और दो-तीन बातें। बिजली कौंधने के भाव के
साथ तुम्हें इतनी उष्णता अनुभव हो सकती है। जो असहनीय मालूम पड़े। अगर ऐसा लगे तो इस विधि को असहनीय है तो इसका प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए पहली विधि है। अगर वह तुम्हें रास आए। अगर बेचैनी महसूस हो तो दूसरी विधि का प्रयोग मत करो। कभी-कभी विस्फोट इतना बड़ा हो सकता है। तुम भयभीत हो जा सकते हो। और यदि तुम एक दफा डर गए तो फिर तुम दुबारा प्रयोग न कर सकोगे। तब भय पकड़ लेता है।
तो सदा ध्यान रहे कि किसी चीज से भी भयभीत नहीं होना है। अगर तुम्
हें लगे कि भय होगा ओर तुम बरदाश्त न कर पाओगे तो प्रयोग मत करो। तब प्रकाश किरणों वाली पहली विधि सर्वश्रेष्ठ है।
लेकिन यदि पहली विधि के प्रयोग में भी तुम्हें लगे कि अतिशय गर्मी पैदा हो रही है—और ऐसा हो सकता है। क्योंकि लोग भिन्न-भिन्न है—तो भाव करो कि प्रकाश किरणें शीतल है, ठंडी है। तब तुम्हें सब चीजों में उष्णता की जगह ठंडक महसूस होगी। वह भी प्रभावी हो सकता है। तो निर्णय तुम पर निर्भर है; प्रयोग करके निर्णय करो।

स्मरण रहे, चाहे इस विधि के प्रयोग में चाहे अन्य विधियों के
प्रयोग में, यदि तुम्हें बहुत बेचैनी अनुभव हो या कुछ असहनीय लगे। तो मत करो। दूसरे उपाय भी है; दूसरी विधियां भी है। हो सकता है, यह विधि तुम् हारे लिए न हो। अनावश्यक उपद्रवों में पड़कर तुम समाधान की बजाय समस् याएं ही ज्यादा पैदा करोगे।
इसीलिए भारत में हमने एक विशेष योग का विकास किया जिसे सहज योग
कहते है। सहज का अर्थ है सरल, स्वाभाविक, स्वत: स्फूर्त। सहज को सदा याद रखो। अगर तुम्हें महसूस हो कि कोई विधि सहजता से तुम्हारे अनुकूल पड़ रही है। अगर वह तुम्हें रास आए अगर उसके प्रयोग से तुम ज्यादा स्वस्थ,ज् यादा जीवंत,ज्यादा सुखी अनुभव करो, तो समझो कि वह विधि तुम्हारे लिए है। तब उसके साथ यात्रा करो; तुम उस पर भरोसा कर सकते हो। अनावश्यक समस्याएं मत पैदा करो। आदमी की आंतरिक व्यवस्था बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत सी चीजें नष्ट कर दे सकते हो। इसलिए अच्छा है कि किसी ऐसी विधि के साथ प्रयोग करो जिसके साथ तुम्हारा अच्छा तालमेल हो।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—72 (ओशो)
प्रकाश-संबंधी तीसरी विधि—
‘’भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।‘’
अगर तुमने एल. एस. डी. या उसी तरह के मादक द्रव्य का सेवल किया हो,
तो तुम्हें पता होगा कि कैसे तुम्हारे चारों और का जगत प्रकाश ओर रंगों के जगत में बदल जाता है। जो कि बहुत पारदर्शी और जीवंत मालूम पड़ता है। यह एल. एस. डी. के कारण नहीं है। जगत ऐसा ही है। लेकिन तुम्हारी दृष्टि धूमिल और मंद पड़ गई है। एल. एस. डी. तुम्हारे चारों रंगीन जगत नहीं निर्मित करता है, जगत पहले से ही रंगीन है, उसमें कोई भूल नहीं है। यह रंगों के इंद्रधनुष जैसा है; इसीलिए तुम्हें कभी नहीं प्रतीत होता है। कि जगत इतना रंग-भरा है। एल. एस. डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों से धुंध को हटा देता है। वह जगत को रंगीन नहीं बनाता। एल. एस. डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों धुंध को हटा देता है। वह जगत को रंगीन नहीं बनाता।
एक बिलकुल नया जगत तुम्हारे सामने होता है। एक मामूली कुर्सी भी चमत्कार बन जाती है। फर्श पर पडा जूता नए रंगों से, नई आभा से भर जाता है। सज जाता है; तब यातायात का मामूली शोर गूल भी संगीत पूर्ण हो उठता है। जिन वृक्षों को तुमने बहुत बार देखा होगा और फिर भी नहीं देखा होगा, वे मानों नया जन्म ग्रहण कर लेते है। यद्यपि तुम बहुत बार उनके पास गूजरें हो और तुम्हें ख्याल है कि तुमने उन्हें देखा है। वृक्ष का पत् ता-पत्ता एक चमत्कार बन जाता है।
और यथार्थ ऐसा ही है; एल. एस. डी. एक यथार्थ का निर्माण नहीं करता
है। एल. एस डी तुम्हारी जड़ता को, तुम्हारी संवेदनहीनता को मिटा देता है। और तब तुम जगत को ऐसे देखते हो जैसे तुम्हें सच में उसे देखना चाहिए।
लेकिन एल एस डी तुम्हें सिर्फ एक झलक दे सकता है। और अगर तुम एल एस
डी पर निर्भर रहने लगे, देर-अबेर वह भी तुम्हारी आंखों से धुंध का हटाने में असमर्थ हो जाएगा। फिर तुम्हें उसका अधिक मात्रा की जरूरत पड़ेगी, और मात्रा बढ़ती जायेगी और उसका असर करम होता जायेगा। फिर तुम्हें यदि

एल एस डी या उस तरह की चीजें लेना छोड़ दोगे तो जगत तुम्हारे लिए पहले से भी ज्यादा उदास आरे फीका मालूम पड़ेगा। तब तुम और भी संवेदनहीन हो जाओगे।
अभी कुछ दिन पहले एक लड़की मुझसे मिलने आई । उसने कह कि मुझे संभोग
में आर्गाज्म का कोई अनुभव नहीं होता है। उसने अनेक पुरूषों के साथ प्रयोग किया; लेकिन आर्गाज्म का कभी अनुभव नहीं हुआ। वह शिखर कभी आता ही नहीं। और वह लड़की बहुत हताश हो गई।
तो मैंने उस लड़की से कहा कि मुझे अपने प्रेम और काम जीवन के संबंध
में विस्तार से बताओ, पूरी कहानी कहो। और तब मुझे पता चला कि वह संभोग के लिए बिजली के एक यंत्र का,इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर का उपयोग कर रही थी। आजकल पशिचम में इसका बहुत उपयोग हो रहा है। लेकिन तुम अगर एक बार पुरूष जननेंद्रिय के लिए इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर का उपयोग कर लोगे, तो कोई भी पुरूष तुम्हें तृप्त नहीं कर पाएगा। क्योंकि इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर आखिर इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर ही है। तुम्हारी जननेंद्रियां जड़ हो जाएंगी। गुर्दा हो जाएगी। उस हालत मे आर्गाज्म, काम का शिखर अनुभव असंभव हो जाएगा। तुम्हें काम संभोग का शिखर कभी प्राप्त न हो सकेगा। और तब तुम्हें पहलेसे ज्यादा शक्तिशाली इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर की जरूरत पड़ेगी। और यह प्रक्रिया उस अति तक जा सकती है कि तुम्हारा पूरा काम यंत्र पत्थर जैसा हो जाये।
और यही दुर्घटना हमारी प्रत्येक इंद्रिय के साथ घट रही है। अगर
तुम कोई बाहरी उपाय; कृत्रिम काम में लाओगे, तो तुम जड़ हो जाओगे। एल एस डी तुम्हें अंतत: जड़ बना देगा; क्योंकि उससे तुम्हारे विकास नहीं होता है, तुम ज्यादा संवेदनशील नहीं होते हो।
अगर तुम विकसित होते हो तो यह एक भिन्न प्रक्रिया है। तब तुम ज् यादा संवेदनशील होगे। और जैसे-जैसे तुम ज्यादा संवेदनशील होते हो, वैसे-वैसे जगत दूसरा होता जाता है। अब तुम्हारी इंद्रियाँ ऐसी अनेक चीजें अनुभव कर सकती है जिन्हें उन्होंने अतीत में कभी नहीं अनुभव किया था। क्योंकि तुम उनके प्रति खुले नहीं थे। संवेदनशील नहीं थे।
यह विधि आंतरिक संवेदनशीलता पर आधारित है। पहले संवेदनशीलता को बढ़ाओं। अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो। कमरे में अँधेरा कर लो, और फिर एक छोटी सी मोमबत्ती जलाओ। और उस मोमबत्ती के पास प्रेमपूर्ण मुद्रा में बल्कि प्रार्थना पूर्ण भाव दशा में बैठो और ज्योति से प्रार्थना करो: ‘’अपने रहस्य को मुझ पर प्रकट करो।‘’ स्नान कर लो, अपनी आंखों पर ठंडा पानी छिड़क लो और फिर ज्योति के सामने अत्यंत प्रार्थना पूर्ण भाव दशा में होकर बैठो। ज्योति को देखो ओर शेष सब चीजें भूल जाओ। सिर्फ ज्योति को देखो। ज्योति को देखते रहो।
पाँच मिनट बाद तुम्हें अनुभव होगा कि ज्योति में बहुत चीजें बदल
रही है। लेकिन स्मरण रहे, यह बदलाहट ज्योति में नहीं हो रही है; दरअसल तुम्हारी दृष्टि बदल रही है।
प्रेमपूर्ण भाव दशा में सारे जगत को भूलकर, समग्र एकाग्रता के साथ, भावपूर्ण ह्रदय के साथ ज्योति को देखते रहो, तुम्हें ज्योति के चारों और नए रंग, नई छटाएं दिखाई देंगी। जो पहले कभी नही दिखाई दी थी। वे रंग, वे छटाएं सब वहां मौजूद है; पूरा इंद्रधनुष वहां उपस्थिति है। जहां-जहां भी प्रकाश है, वहां-वहां इंद्रधनुष है। क्योंकि प्रकाश बहुरंगी है उसमें सब रंग है। लेकिन उन्हें देखने के लिए सूक्ष्म संवेदना की जरूरत है। उसे अनुभव करो और देखते रहो। यदि आंसू भी बहने लगें तो भी देखते रहो। वे आंसू तुम्हारी आंखों को निखार देंगे, ज्यादा ताजा बना जायेंगे।

कभी-कभी तुम्हें प्रतीत होगा कि मोमबत्ती या ज्योति बहुत रहस् यपूर्ण हो गई है। तुम्हें लगेगा कि यह वही साधारण मोमबत्ती नहीं है जो मैं आपने साथ लाया था। उसने एक नई आभा एक सूक्ष्म दिव्यता, एक भगवत्ता प्राप्त कर ली है। इस प्रयोग को जारी रखो। कई अन्य चीजों के साथ भी तुम इसे कर सकते हो।
मेरे एक मित्र मुझे कह रहे थे कि वे पाँच-छह मित्र पत्थरों के साथ
एक प्रयोग कर रहे थे। मैंने उन्हें कहा था कि कैसे प्रयोग करना, और लोट कर मुझे पूरी बात कह रह थे। वे एकांत में एक नदी के किनारे पत्थरों के साथ प्रयोग कर रहे थे। वे उन्हें फील करने की कोशिश कर रह थे—हाथों से छूकर, चेहरे से लगा कर। जीभ से चक्कर, नाक से सूंघकर—वे उन पत्थरों का हर तरह सक फील करने कि कोशिश कर रहे थे। साधारण से पत्थर, जो उन्हें नदी किनारे मिल गये थे।

उन्होंने एक घंटे तक यह प्रयोग किया—हर व्यक्ति ने एक पत्थर के
साथ। और मेरे मित्र मुझे कह रहे थे एक बहुत अद्भुत घटना घटी। हर किसी ने कहा: ‘’क्या यह पत्थर मैं अपने पास रख सकता हूं।‘’ मैं इसके प्रेम में पड़ गया हूं।
एक साधारण सा पत्थर, अगर तुम सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उससे संबंध
बनाते हो तो तुम प्रेम में पड़ जाओगे। और अगर तुम्हारे पास इतनी संवेदनशीलता नहीं है। तो सुंदर से सुंदर व्यक्ति के पास होकर भी तुम पत्थर के पास ही हो; तुम प्रेम में नहीं पड़ सकते हो।
तो संवेदनशीलता को बढ़ाना है। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय को
ज्यादा जीवंत होना है। तो ही तुम इस विधि का प्रयोग कर सकते हो।
‘’भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।‘’
सर्वत्र प्रकाश है; अनेक-अनेक रूपों और रंगों में प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखो। सर्वत्र प्रकाश है। क्योंकि सारी सृष्टि प्रकाश की आधारशिला पर खड़ी है। एक पत्ते को देखा एक फूल को देखो या एक पत्थर को देखा। आरे देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि उससे प्रकाश की किरणें निकल रही है। बस धैर्य से प्रतीक्षा करो। ज्यादा जल्द मत करो। क्योंकि जल्दी बाजी में कुछ भी प्रकट नहीं होता। तुम जब जल्दी में होते हो तो तुम जड़ हो जाते हो। किसी भी चीज के साथ धीरज से प्रतीक्षा करो। और तुम्हें एक अद्भुत तथ्य से साक्षात्कार होगा। जो सदा से मौजूद था, लेकिन जिसके प्रति तुम सजग नहीं थे। सावचेत नहीं थे।
‘’भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।‘’
और जैसे ही तुम्हें इस शाश्वत अस्तित्व की उपस्थिति अनुभव होगी
वैसे ही तुम्हारा चित बिलकुल मौन और शांत हो जाएगा। तुम तब उसके एक अंश भर होगे। किसी अद्भुत संगीत में एक स्वर भर। फिर कोई चिंता नहीं है। फिर कोई तनाव नहीं है। बूंद समुद्र में गिर गई, खो गई।
लेकिन आरंभ में एक बड़ी कल्पना की जरूरत होगी। और अगर तुम
संवेदनशीलता बढ़ाने के अनय प्रयोग करते हो, तो वह सहयोगी होगा। तुम कई तरह के प्रयोग कर सकते हो। किसी का हाथ अपने हाथ में ले लो। आंखें बंद कर लो। और दूसरे के भीतर के जीवन को महसूस करो; उसे महसूस करो उसे अपनी और बहने दो; गति करने दो। फिर अपने जीवन को महसूस करो, और उसे दूसरे की और प्रवाहित होने दो। किसी वृक्ष के निकट बैठ जाओ और उसकी छाल को छुओ,स् पर्श करो। अपनी आंखें बंद कर लो। और वृक्ष में उठते-जीवन तत्व को अनुभव करो। और स्पर्श करो। तुम्हें तुरंत बदलाहट अनुभव करोगे।

मैंने एक प्रयोग के बारे में सुना है। एक डाक्टर कुछ लोगों पर प्रयोग कर रहा था कि क्या भाव दशा से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते है। अब उसके निष्कर्ष निकाला है कि भाव दशा से शरीर में तत्काल रासायनिक परिवर्तन होते है।

उसने बारह लोगों के समूह पर यह प्रयोग किया। उसने प्रयोग के आरंभ में उन सबकी पेशाब की जांच की। और सबकी पेशाब साधारण, सामान्य पाई गई। फिर हर व्यक्ति को एक भाव दशा के प्रयोग में रखा गया। एक को क्रोध, हिंसा, हत्या, मार-पीट से भरी फिल्म दिखाई गई। तीस मिनट तक उसे भयावह फिल्म दिखाई गई। वह मात्र फिल्म थी। लेकिन वह व्यक्ति उस भाव दिशा में रहा। दूसरे को एक हंसी खुशी की, प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह आनंदित रहा। और उसी तरह से बाहर लोगों पर प्रयोग किया।

फिर प्रयोग के बाद उनकी पेशाब की जांच की गई; और अब सबकी पेशाब अलग थी। शरीर में रसायनिक परिवर्तन हुए थे। जो हिंसा और भय की भाव दशा में रहा वह अब बुझा-बुझा, बीमार था। और हंसी-खुशी की प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह प्रफुल्ल था। उसकी पेशाब अलग थी। उसके शरीर की रासायनिक व्यवस्था अलग थी।

तुम्हें बोध नहीं है। तुम अपने साथ कर रहे हो। जब तुम कोई खून ख़राबे की फिल्म देखने जाते हो तो तुम नहीं जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अपने शरीर की रसायनिक व्यवस्था बदल रहे हो। जब तुम कोई जासूसी उपन्यास पढ़ते हो। तुम अपनी हत्या स्वयं कर रहे हो। तुम उत्तेजित हो जाओगे; तुम भयभीत हो जाओगे। तुम तनाव से भर जाओगे। जासूसी उपन्यास का यही तो मजा है। तुम जितने उत्तेजित होते हो, तुम उसका उतना ही सूख लेते हो। आगे क्या घटित होने वाला है, इस बात को लेकर जितना सस्पेंस होगा; तुम उतने ही अधिक उत्तेजित होगे। और इस भांति तुम्हारे शरीर का रसायन बदल रहा है।

ये सारी विधियां भी तुम्हारे शरीर का रसायन बदलती है। अगर तुम सारे जगत को जीवन और प्रकाश से भरा अनुभव करते हो, तो तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है। और यह एक चेन रिएक्शन है, इस बदलाहट की एक शृंखला बन जाती है। जब तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है और तुम जगत को देखते हो। तो वही जगत ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है। और जब वह ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है तो तुम्हारे शरीर का रासायनिक व्यवस्था और भी बदलती है। ऐसे एक शृंखला निर्मित हो जाती है।

यदि यह विधि तीन महीने तक प्रयोग की जाए, तो तुम भिन्न ही जगत में रहने लगोगे। क्योंकि अब तुम ही भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

□□□

□□□□□□□□ □□□□ □□□□□, □□□-□□□

□□□□□□□-47

□□□□□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□—73 (□□□)

‘□□□□□□□□ □□□ □□□ □□ □□□ □□□□□□ □□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□□□□□ □□□ □□□□, □□ □□□□□□□□□ □□□ □□□□□□□ □□□□’’

मन विभ्रम है; मन उलझन है। उसमें स्पष्टता नहीं है। निर्मलता नहीं है। और मन सदा बादलों से घिरा रहता है। वह कभी निरभ्र, शुन्य आकाश नहीं होता। मन निर्मल हो ही नहीं सकता। तुम अपने मन को शांत-निर्मल नहीं बना सकते हो। ऐसा होना मन के स्वभाव में ही नहीं है। मन अस्पष्ट रहेगा, धुंधला-धुंधला ही रहेगा। अगर तुम मन को पीछे छोड़ सके, अगर तुम मन का

अतिक्रमण कर सके, उसके पार जा सके, तो एक स्पष्टता तुम्हें उपलब्ध होगी। तुम द्वंद्व रहित हो सकते हो। मन नहीं। द्वंद्व रहित मन जैसी कोई चीज होती ही नहीं। न कभी अतीत में थे और न कभी भविष्य में होगी। मन का अर्थ ही द्वंद्व है उलझाव है।
मन की संरचना को समझने की कोशिश करो और तब यह विधि तुम्हें स्पष्ट
हो जाएगी। मन क्या है? मन विचारों की एक प्रक्रिया है, विचारों का एक सतत प्रवाह है—चाहे वे विचार संगत हों या असंगत हो। चाहे वे प्रासंगिक हो या अप्रासंगिक हो। मन सब जगहों से संग्रहित किए गए बहुआयामी प्रभावों का एक लंबा जलूस है। तुम्हारा सारा जीवन एक संग्रह है—धूल का संग्रह। और यह सिलसिला अनवरत चलता रहता है।
एक बच्चा जन्म लेता है। बच्चे की दृष्टि निर्मल है; क्योंकि उसके
पास मन नहीं है। लेकिन जैसे ही मन प्रवेश करता है, उसके साथ ही द्वंद्व और उलझन भी प्रवेश कर जाती है। बच्चा निर्मल है। निर्मलता ही है। लेकिन उसे ज्ञान, सूचना, संस्कृति, धर्म और संस्कारों का संग्रह करना ही पड़ेगा। वे जरूरी है। उपयोगी है, उसे अनेक जगहों से, अनेक स्रोतों से इकट्ठा करेगा। और तब उसका मन एक बाजार बन जाएगा—एक मेला, एक भिड़। और क् योंकि उसके स्त्रोत अनेक है, उलझन और भ्रांति और विभ्रम का होना है। और तुम कितना भी इकट्ठा करो, कुछ भी निश्चित नहीं हो पाता है। क्योंकि ज्ञान सदा बदलता रहता है। और बढ़ता रहता है।
मुझे स्मरण आता है कि किसी ने मुझे एक चुटकला सुनाया था। वह एक बड़ा शोधकर्ता था और यह चुटकला उसके एक प्रोफेसर के बाबत था जिन्होंने उसे मेडिकल कालेज में पाँच वर्षों तक पढ़ाया था। वह प्रोफेसर अपने विषय का भारी विद्वान था। और उसने जो अंतिम काम किया वह यह था कि उसने अपने सारे विद्यार्थियों को जमा किया और कहा: ‘मुझे तुम्हें एक और चीज सिखानी है। मैंने तुम्हें जो कुछ पढ़ाया है उकसा पचास प्रतिशत ही सही है। और शेष पचास प्रतिशत बिलकुल गलत है। लेकिन कठिनाई यह कि मैं नहीं जानता कि कौन सा पचास प्रतिशत सही है और कौन सा पचास प्रतिशत गलत है।’
ज्ञान की सारी इमारत ऐसे ही खड़ी है। कुछ भी निश्चित नही है। कोई नहीं जानता है; हर कोई अंधेरे में टटोल रहा है। ऐसे ही टटोल-टटोल कर हम शास्त्र निर्मित करते है; विचार पद्धतियां बनाते है। और ऐसे ही हजारों- हजारों शास्त्र बन गए है। हिंदू कुछ कहते है; ईसाई कुछ और कहते है। मुसलमान कुछ और कहते है। और सब एक दूसरे का खंडन करते है। उनमें कोई सहमति नहीं है। और कोई भी निश्चित नहीं है। असंदिग्ध नहीं है। और ये सारे स्त्रोत ही तुम्हारे मन के स्त्रोत है। तुम इनसे ही अपना संग्रह निर्मित करते हो। तुम्हारा मन एक कबाड़ खाना बन जाता है। विभ्रम अनिवार्य है; उलझन अनिवार्य है।
केवल वही आदमी निश्चित हो सकता है। जो बहुत जानता है। तुम जितना अधिक जानोंगे, उतने ही भ्रमित होगे। उलझन ग्रस्त होगे। आदिवासी लोग ज् यादा निश्चिंत थे और उनकी आंखें ज्यादा निर्मल मालूम पड़ती है। यह दृष् टि की निर्मलता नहीं थे। यह सिर्फ परस्पर विरोधी तथ्यों के प्रति उनका अज्ञान था। अगर आधुनिक चित ज्यादा भ्रमित है तो उसका कारण है कि आधुनिक चित बहुत ज्यादा जानता है। अगर तुम ज्यादा जानोंगे तो तुम ज्यादा भ्रमित होगे। क्योंकि अब तुम बहुत कुछ जानते हो। और तुम जितना ज्यादा जानोंगे उतने ही ज्यादा अनिश्चित होगे। केवल मूढ़ ही असंदिग्ध होंगे। केवल मूढ़ ही मतांध होंगे; केवल मूढ़ ही कभी झिझक में नहीं पड़ते। तुम जितना ही जानोंगे उतनी ही तुम्हारे पांव के नीचे से जमीन खिसक जाएगी। तुम उतनी ही अधिक उधेड़बुन में पड़ोगे।
मैं यह कहना चाहता हूं कि मन जितना ही बड़ा होगा तुम उतना ही जानोंगे कि भ्रांति मन का स्वभाव है। और जब मैं कहता हूं कि केवल मूढ़

ही निश्चित हो सकते है। तो उसका अर्थ यह नहीं है कि बुद्ध मूढ़ है। क् योंकि वे संदिग्ध नहीं है। इस भेद को स्मरण रखो; बुद्ध ने निश्चित है न अनिश्चित; बुद्ध की दृष्टि स्पष्ट है। मनके साथ अनिश्चय है; मूढ़ मन के साथ निश्चित है; और अ-मन के साथ निश्चय-अनिश्चिय दोनों विदा हो जाते है। बुद्ध परम होश है, शुद्ध बोध है—खुले आकाश जैसे है। वे निश्चित नहीं है; निश्चित होने को क्या है? वे अनिश्चित भी नहीं है; अनिश्चित होने का क्या है? केवल वही अनिश्चित हो सकता है जो निश्चित की खोज में है। मन सदा अनिश्चित रहता है। और निश्चय की खोज करता है। मन सदा कन्फ्यूज रहता है और क्लैरिटी की तलाश करता है। बुद्ध ने मन को ही गिरा दिया है। और मन के साथ सारे विभ्रम को, सारे निश्चय-अनिश्चय को,सब कुछ को गिरा दिया है।
इसे इस तरह देखा। तुम्हारी चेतना आकाश जैसी है और तुम्हारा मन बदलों जैसा है। आकाश बादलों से अछूता रहता है। बादल आते है जाते है, लेकिन आकाश पर उनका कोई चिन्ह नहीं छूटता है। बादलों की कोई स्मृति कुछ भी नहीं पीछे रहता है। बादला आते-जाते है, आकाश अनुद्विग्न शांत रहता है।
तुम्हारे साथ भी यहीं बात है, तुम्हारी चेतना अनुद्विग्न, अक्षुब्ध शांत रहती है। विचार आते है और जाते है, मन उठते है और खो जाते है। ऐसा मत सोचो कि तुम्हारे पास एक ही मन है, तुम्हारे पास अनेक मन है। मनों की एक भीड़ है। और तुम्हारे मन बदलते रहते है।
तुम कम्युनिस्ट हो; तो तुम्हारे पास एक तरह का मन होगा। फिर तुम कम्यूनिज् छोड़कर कम्यूनिज़म विरोधी बन सकते हो। तब तुम्हारे पास भिन् न मन होगा। भिन्न ही नहीं होगा, सर्वथा विपरीत मन होगा। तुम वस्त्रों की भांति अपने मन बदलते रह सकते हो। और तुम बदलते रहते हो; तुम्हें इसका पता हो या न हो। ये बादल आते है जाते है।
निर्मलता तो तब प्राप्त होती है जब तुम अपनी दृष्टि को बादलों से हटाते हो। जब तुम आकाश के प्रति बोधपूर्ण होते हो। अगर तुम्हारी दृष्टि आकाश पर नहीं है तो उसका अर्थ है कि वह बादलों पर लगी है। उसे बादलों से हटाकर आकाश पर केंद्रित करो।
यह विधि कहती है: ‘ग्रीष्म ऋतु में जब तुम समस्त आकाश को अंतहीन निर्मलता में देखो, उस निर्मलता में प्रवेश करो।’
आकाश पर ध्यान करो। ग्रीष्म ऋतु का निरभ्र आकाश, दूर-दूर तक रिक्त
और निर्मल, निपट खाली अस्पर्शित और कुंवारा। उस पन मनन करो। ध्यान करो। उस निर्मलता में प्रवेश करो। वह निर्मलता ही हो जाओ—आकाश जैसी निर्मलता।
अगर तुम निर्मल, निरभ्र आकाश पर ध्यान करोगे तो तुम अचानक महसूस करोगे कि तुम्हारा मन विलीन हो रहा है। विदा हो रहा है। ऐसे अंतराल होंगे। जिनमें अचानक तुम्हें बोध होगा कि निर्मल आकाश तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया है। ऐसे अंतराल होंगे। जिनमें कुछ देर के लिए विचार खो जायेंगे। मानों चलती सड़क अचानक सूनी हो गई है। और वहां कोई नहीं चल रहा है।
आरंभ में यह अनुभव कुछ क्षणों के लिए होगा; लेकिन वे क्षण भी बहुत रूपांतरण कारी होगे। फिर धीरे-धीरे मन की गति धीमी होने लगेगी और अंतराल बड़े होने लगेंगे। अनेक क्षणों तक कोई विचार, कोई बादल नहीं होगा। और जब कोई विचार, कोई बादल नहीं होगा तो बाहरी आकाश और भीतरी आकाश एक हो जाएंगे। क्योंकि विचार ही बाधा है, विचार ही दीवार निर्मित करते है; विचारों के कारण ही बाहर भीतर का भेद खड़ा होता है जब विचार नहीं होते तो बाहरी और भीतरी दोनों अपनी सीमाएं खो देते है। और एक हो जाते

है। वास्तव में सीमाएं वहां कभी नहीं थी। सिर्फ विचार के कारण, विचार के अवरोध के कारण सीमाएं मालूम पड़ती थी।
आकाश पर ध्यान करना बहुत सुंदर है। बस लेट जाओ, ताकि पृथ्वी को भूल सको। किसी एकांत सागर तट पर, या कहीं भी जमीन पर पीठ के बल लेट जाओ और आकाश को देखो। लेकिन इसके लिए निर्मल आकाश सहयोगी होगा—निर्मल और निरभ्र आकाश। और आकाश को देखते हुए,उसे अपलक देखते हुए उसकी निर्मलता को, उसके निरभ्र फैलाव को अनुभव करो। और फिर उस निर्मलता में प्रवेश करो, उसके साथ एक हो जाओ। अनुभव करो कि जैसे तुम आकाश ही हो गए हो।
आरंभ में अगर तुम सिर्फ कुछ और नहीं करो खुले आकाश पर ही ध्यान
करो। तो अंतराल आने शुरू हो जाएंगे। क्योंकि तुम जो कुछ देखते हो वह तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाता है। तुम जो कुछ देखते हो वह तुम्हें भीतर से उद्वेलित कर देता है। तुम जो कुछ देखते हो वह तुममें बिंबित-प्रतिबिंबित हो जाता है।
तुम एक मकान देखते हो। तुम उसे मात्र देखते ही तुम्हारे भीतर कुछ होने भी लगता है। तुम एक पुरूष को या एक स्त्री को देखते हो, एक कार को देखते हो, या कुछ भी देखते हो। वह अब बहार हीन ही; तुम्हारे भीतर भी कुछ होने लगता है। कोई प्रतिबिंब बनने लगता है। और तुम प्रतिक्रिया करने लगते हो तुम जो कुछ देखते हो वह तुम्हें ढालता है, गढ़ता है; वह तुम्हें बदलता है। निर्मित करता है। बाह्म सतत भीतर से जूड़ा है।
तो खुले आकाश को देखना बढ़िया है। उसका असीम विस्तार बहुत सुंदर
है। उस असीम के संपर्क में तुम्हारी सीमाएं भी विलीन होने लगती है; क् योंकि वह असीम आकाश तुम्हारे भी प्रतिबिंबित होने लगता है।
और तुम अगर आंखों को झपके बिना अपलक ताक सको तो बहुत अच्छा है।
अपलक ताकना बहुत अच्छा है। क्योंकि अगर तुम पलक झपकते हो विचार प्रक्रिया चालू रहेगी। तो बिना पलक झपकाए अपलक देखो। शून्य में देखो; उस शून्य में डूब जाओ। भाव करो कि तुम उससे एक हो गए हो। और फिर आकाश तुममें उतर आएगा।
पहले तुम आकाश में प्रवेश करते हो फिर आकाश तुम में प्रवेश करता
है। तब मिलन घटित होता है। आंतरिक आकाश बाह्म आकाश से मिलता है। और उस मिलन में उपलब्धि है। उस मिलन में मन नहीं होता। क्योंकि वह मिलन ही तब होता है जब मन नहीं होता। उस मिलन में तुम पहली दफा मन नहीं होते हो। और इसके साथ सारी भ्रांति विदा हो जाती है। मन के बिना भ्रांति नहीं हो सकती है। सारा दूःख समाप्ति हो जाता है। क्योंकि दूःख भी मन के बिना नहीं हो सकता है।
तुमने क्या कभी इस बात पर ध्यान दिया है। दुःख मन के बिना नहीं हो
सकता हे। तुम मन के बिना दुःखी नहीं हो सकते हो। उसका स्त्रोत ही नहीं रहा। कौन तुम्हें दुःख देगा। कौन तुम्हें दुःखी बनाएगा? और उलटी बात भी सही है। तुम मन के बिना दुःखी नहीं हो सकते हो। तुम मन के रहते आनंदित नहीं रह सकते हो। मन कभी आनंद का स्त्रोत नहीं हो सकता है।
यदि भीतर और बाहरी आकाश क्षण भर के लिए भी मिलते है और मन विलीन हो जाता है। तो तुम एक नए जीवन से भर जाओगे। उस जीवन की गुणवता ही और है। यहीं शाश्वत जीवन है—मृत्यु से अस्पर्शित शाश्वत जीवन।
उस मिलन में तुम यहां और अभी होगे। वर्तमान में होगे। क्योंकि
अतीत विचार का हिस्सा है और भविष्य भी विचार का हिस्सा हे। अतीत और भविष्य मन के हिस्से है; वर्तमान अस्तित्व है; वह तुम्हारे मन का हिस् सा नहीं है। जो क्षण बीत गया वह मन का है, जो क्षण आने वाला है वह मन का है। लेकिन वर्तमान क्षण कभी तुम्हारे मन का हिस्सा नहीं हो सकते है। बल्कि तुम ही इस क्षण के हिस्से हो। तुम यहीं हो, ठीक अभी और यहीं हो।
लेकिन तुम्हारा मन कहीं और होता है। सदा कहीं और होता है।

तो अपने को भार-मुक्त करो। मैं एक सूफी संत की कहानी पढ़ रहा था।
वह एक सुनसान रास्ते से यात्रा कर रहा था। रास्ता निर्जन हो चला था, तभी उसे एक किसान अपनी बैलगाड़ी के पास दिखाई पडा। बैलगाड़ी कीचड़ में फंस गई थी। रास्ता उबड़-खाबड़ था। किसान अपनी गाड़ी में सेब भर कर ला रहा था; लेकिन रास्ते में कहीं गाड़ी का पिछला तख्ता खुल गया था और सेब गिरते गए थे। लेकिन उसे इसकी खबर नहीं थी। किसान को इसका पता नहीं था। जब गाड़ी कीचड़ मे फंसी तो पहले तो उसने उसे निकालने की भरसक चेष्टा कि, लेकिन उसके सब प्रयत्न व्यर्थ गए। तब उसने सोचा कि मैं गाड़ी को खाली कर लूं तो निकालना आसान हो जाएगा।
उसने जब लौटकर देखा तो मुश्किल से दर्जन भर सेब बचे थे। सब बोझ
पहले ही उतर चूका था। तुम उसकी पीड़ा समझ सकते हो। उस सूफी ने अपने संस् मरणों में लिखा है कि थके-हारे किसान ने एक आह भरी: ‘नरक में गाड़ी फंसी और उतारने को कुछ भी नहीं है।’यही एक आशा बची थी कि गाड़ी खाली हो तो कीचड़ से निकल आएगी। पर अब खाली करने को भी कुछ नहीं है।
सौभाग्य से तुम इस तरह नहीं फंसे हो। तुम खाली कर सकते हो। तुम्
हारी गाड़ी बहुत बोझिल है। तुम मन को खाली कर सकते हो। और जैसे ही मन गया कि तुम उड़ सकते हो। तुम्हें पंख लग जाते है।
यह विधि—आकाश की निर्मलता में झांकने और उसके साथ एक होने की विधि—उन विधियों में सक एक है जिनका बहुत उपयोग किया गया है। अनेक परंपराओं ने इसका उपयोग किया है। और खास कर आधुनिक चित के लिए यह विधि बहुत उपयोगी है। क्योंकि पृथ्वी पर कुछ भी नहीं बचा है जिस पर ध्यान किया जा सके। सिर्फ आकाश बचा है। तुम यदि अपने चारों ओर देखोगें तो पाओगे कि प्रत्येक चीज मनुष्य निर्मित है। प्रत्येक चीज सीमित हो गई है; प्रत्येक चीज सीमा में सिकुउ गई है। सौभाग्य से आकाश अब भी बचा है। जो ध्यान करने के लिए उपलब्ध है।
तो इस विधि करो; यह उपयोगी होगी। लेकिन तीन बातें याद रखने जैसी
है। पहली बात की पलकें मत झपकना, अपलक देखो। अगर तुम्हारी आंखें दुखन लगे और आंसू बहने लगें तो भी चिंता मत करना। वे आंसू भी तुम्हारे निर्भार करने में सहयोगी होंगे। वे आंसू तुम्हारी आंखों को ज्यादा निर्दोष और ताजा बना जाएंगे। वे उन्हें नहला देंगे। तुम अपलक देखते जाओ।
दूसरी बात आकाश के बारे में सोच-विचार मत करो। इस बात को ख्याल में
रख लो। तुम आकाश के संबंध में सोच विचार करने लग सकते हो। तुम्हें आकाश के संबंध में अनेक कविताएं, सुंदर-सुंदर कविताएं याद आ सकती है। लेकिन तब तुम चूक जाओगे। तुम्हें आकाश के बारे में सोच-विचार नहीं करना है। तुम्हें तो उसमें डूबना है। तुम्हें उसके साथ एक होना है। अगर तुम उसके संबंध में सोच-विचार करने लगे तो फिर अवरोध निर्मित हो जाएगा। तब तुम आकाश को चूक जाओगे। और अपने ही मन में बंद हो जाओगे।
आकाश के संबंध में सोच-विचार मर करो; आकाश की हो जाओ। बस उसमे
झांको और उसमें प्रवेश करो और उसे भी अपने में प्रवेश करने दो। अगर तुम आकाश में डूबोगे तो आकाश भी तुममें डूबने लगेगा।
यह आकाश में प्रवेश कैसे होगा? यह कैसे संभव होगा कि तुम आकाश में
गति करो? आकाश में गहरे और गहरे अपलक देखते जाओ। मानो तुम उसकी सीमा खोजने की कोशिश कर रहे हो। उसकी गहराई में झाँकते जाओ। जहां तक संभव हो। यह गहराई ही अवरोध को तोड़ देगी। और इस विधि का अभ्यास कम से कम चालीस मिनट तक करना चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। उससे कम समय करना बहुत उपयोगी नहीं होगा।
जब तुम्हें वास्तव में लगे कि तुम आकाश के साथ एक हो गए हो तो तुम आंखें बंद कर सकते हो। जब आकाश तुममें प्रवेश कर जाए तो तुम आंखें बद कर

सकते हो। तब तुम उसे अपने भीतर देखने में भी सामर्थ्य हो सकते हो। तब बहार देखना जरूरी नहीं है। तो चालीस मिनट के बाद जब तुम्हें लगे कि एकता सध गई। संवाद सध गया, तुम उसके हिस्से हो गये। और अब मन नहीं है, तो तुम आंखें बंद कर सकते हो और भीतर आकाश को अनुभव कर सकते हो।
आकाश निर्मल है, शुद्ध है, अस्तित्व की शुद्धतम चीज है। कुछ भी उसे अशुद्ध नहीं करता। संसार आते है, और चले जाते है। पृथ्वीयां बनती है,और खो जाती है। लेकिन आकाश निर्मल का निर्मल बना रहता है। तो शुद्धता है; तुम्हें उसे प्रक्षेपित नहीं करना है। तुम्हें सिर्फ उसे अनुभव करना है,उसके प्रति संवेदनशील होना है। ताकि उसका अनुभव हो सके। निर्मलता तो मौजूद ही है। तुम आकाश को राह दो। तुम उसे जबरदस्ती नहीं ला सकते हो। तुम्हें उसे सिर्फ प्रेमपूर्वक राह देनी हे।
सभी ध्यान सिर्फ प्रेम पूर्वक राह देने की बात है। कभी आक्रमण की
भाषा में मत सोचो; कभी जबरदस्ती मत करो। तुम जबरदस्ती कुछ भी नहीं कर सकते हो। सच तो यह है कि तुम्हारी जबरदस्ती करने की चेष्टा से ही तुम् हारे सभी दुःख निर्मित हुए है। जबरदस्ती कुछ भी नहीं हो सकता है। लेकिन तुम चीजों को घटित होने दे सकते हो। स्त्रैण बनो; चीजों को घटित होने दो। निष्क्रिय बनो। आकाश पूर्णत: निष्क्रिय है, कुछ भी तो नहीं करता है। बस है। तुम भी निष्क्रिय होकर आकाश को देखते रहो। खुल ग्रहण शील, स् त्रैण अपनी और से किसी तरह की भी जल्दबाजी किए बिना। और तब आकाश तुममें उतरेगा।
‘ग्रीष्म ऋतु में जब तुम समस्त आकाश को अंतहीन निर्मलता में देखो,
उस निर्मलता में प्रवेश करो।’
लेकिन अगर ग्रीष्म ऋतु न हो तो तुम क्या करोगे? अगर आकाश में बादल हों,आकाश साफ न हो। तो अपनी आंखे बंद कर लो और आंतरिक आकाश को देखो। आंखे बंद कर लो अगर कुछ विचार दिखाई पड़े तो उन्हें वैसे ही देखा जैसे कि आकाश में तैरते बादल हो। पृष्ठभूमि के प्रति, आकाश के प्रति सजग हो जाओ। और बादलों के प्रति उदासीन रहो।
हम विचारों से इतने जुड़ रहते है कि बीच के अंतरालों के प्रति कभी ध्यान नहीं दे पाते है। एक विचार गुजरता है और इसके पहले कि दूसरा विचार प्रवेश करे, वहां एक अंतराल होता है। उस अंतराल में ही आकाश की झलक है। जब विचार नहीं होता है तो क्या होता है? एक शून्यता होती है। एक खालीपन होता है। अगर आकाश बादलों से आच्छादित है—ग्रीष्मऋतु नहीं है और आकाश साफ नहीं है—तो अपनी आंखें बंद कर लो और पृष्ठभूमि पर मन को एकाग्र करो; उस आंतरिक आकाश पर ध्यान करो जिस पर विचार आते-जाते है। विचारों पर बहुत ध्यान मत दो; उस आकाश पर ध्यान दो जि पर विचार की भाग-दौड़ होती है।
उदाहरण के लिए हम लोग एक कमरे में बैठे है। मैं इस कमरे को दो
ढंगों से देख कसता हूं। एक कि मैं तुम्हें देखू और उस स्थान के प्रति उदासीन रहूँ जिसमें तुम बैठे हो। उस कमरे के प्रति तटस्थ रहूँ जिसमें तुम बैठे हो। मैं तुम्हें देखता हूं, मेरा ध्यान तुम पर है। उस खाली स् थान पर नहीं जिसमें तुम बैठे हो। अथवा मैं अपने दृष्टि कोण बदल लेता हूं और कमरे को, उसके खाली स्थान को देखता हूं और तुम्हारे प्रति उदासीन हो जाता हूं। तुम यही हो, लेकिन मेरा ध्यान, मेरा फोकस कमरे पर चला गया है। तब सारा परिप्रेक्ष्य बदल जाता है।
यही आंतरिक जगत में करो; आकाश पर ध्यान दो। विचार वहां चल रहे है,
उसके प्रति उदासीन हो जाओ। उन पर कोई ध्यान मत दो वह है, चल रहे है, देख लो कि ठीक है, विचार चल रहे है। सड़क पर लोग चल रहे है; देख लो और उदासीन रहो। यह मत देखो कि कौन जा रहा है। इतना भर जानों कि कुछ गुजर रहा है। और

उस स्थान के प्रति सजग होओ जिसमें गति हो रही है। तब ग्रीष्म ऋतु का आकाश भीतर घटित होगा।

ग्रीष्म ऋतु की प्रतीक्षा की जरूरत नहीं है। अन्यथा हमारा मन ऐसा है कि वह कोई भी बहाना पकड़ ले सकता है। वह कहेगा कि अभी ग्रीष्म ऋतु नहीं है। और यदि ग्रीष्म ऋतु भी हो तो वह कहेगा की आकाश निर्मल नहीं है।

□□□

□□□□□□□□ □□□□ □□□□□, □□□-□□□ □□□□□□-49

□□□□□□□□ □□□□ □□□□□ □□□□—74 (□□□)

‘□□ □□□□□, □□□□□ □□□□□□ □□□□□□□□ □□□□ □□□ □□□ □□ □□□□□□ □□, □□□ □□□ □□□□’

अपनी आंखे बंद कर लो। जब इस प्रयोग को करो तो आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सारा अंतरिक्ष मेरे सिर में ही समाहित है।

आरंभ में यह कठिन होगा। यह विधि उच्चतर विधियों में से एक है। इसलिए इसे एक-एक कदम समझना अच्छा होगा। तो एक काम करो। यदि इस विधि को प्रयोग में लाना चाहते हो तो एक-एक कदम चलो, क्रम से चलो।

पहला चरण : सोते समय, जब तुम सोने जाओ तो विस्तर पर लेट जाओ। और आंखे बंद कर लो और महसूस करो कि तुम्हारे पाँव कहां है, अगर तुम छह फिट लंबे हो या पाँच फीट हो, बस यह महसूस करो कि तुम्हारे पाँव कहां है, उनकी सीमा क्या है। और फिर भाव करो कि मेरी लंबाई छह इंच बढ़ गई है। मैं छह इंच और लंबा हो गया हूं। आंखें बंद किए बस यह भाव करो। कल्पना में महसूस करो कि मेरी लंबाई छह इंच बढ़ गई है।

फिर दूसरा चरण : अपने सिर को अनुभव करो कि वह कहां है। भीतर-भीतर अनुभव करो कि वह कहां है। और फिर भाव करो कि सिर भी छह इंच बड़ा हो गया है। अगर तुम इतना कर सके तो बात बहुत आसान हो जाएगी। फिर उसे और भी बड़ा किया जा सकता है। भाव करो कि तुम बारह फीट हो गए हो। और तुम पूरे कमरे में फैल गए हो। अब तुम अपनी कल्पना में दीवारों को छू रहे हो; तुमने पूरे कमरे को भर दिया है। और तब क्रमश: भाव करो कि तुम इतने फैल गये हो कि पूरा मकान तुम्हारे अंदर आ गया है। और एक बार तुमने भाव करना जान लिया तो ये बहुत आसान है। अगर तुम छह इंच बढ़ सकते हो तो कितना भी बढ़ सकते हो। अगर तुम भाव करा सके कि मैं पाँच फीट लंबा हूं तो फिर कुछ भी कठिन नहीं है। तब यह विधि बहुत ही आसान है।

पहले तीन दिन लंबे होने का भाव करो और फिर तीन दिन भाव करो कि मैं इतना बड़ा हो गया हूं कि कमरे में भर गया हूं। यह केवल कल्पना का प्रशिक्षण है। फिर और तीन दिन यह भाव करो कि मैंने फैलकर पूरे घर को घेर लिया है। फिर तीन दिन भाव करो कि मैं आकाश हो गया हुं। तब यह विधि बहुत ही आसान हो जाएगी।

‘हे शक्ति, समस्त तेजोमय अंतरिक्ष मेरे सिर में ही समाहित है, ऐसा भाव करो।’

तब तुम आंखें बंद करके अनुभव कर सकते हो कि सारा आकाश, सारा अंतरिक्ष तुम्हारे सिर में समाहित है। और जिस क्षण तुम्हें यह अनुभव होगा, मन विलीन होने लगेगा। क्योंकि मन बहुत क्षुद्रता में जीता है। आकाश जैसे विस्तार में मन नहीं टिक सकता; वह खो जाता है। इस महाविस्तार में मन असंभव है। मन क्षुद्र और सीमित में ही हो सकता है। इतने विराट आकाश में मन को जीने के लिए जगह कही नहीं मिलती है।

यह विधि सुंदरतम विधियों में से एक है। मन अचानक बिखर जाता हे। और आकाश प्रकट हो जाता है। तीन महीने के भीतर यह अनुभव संभव है और तुम्हारा संपूर्ण जीवन रूपांतरित हो जाएगा।
लेकिन एक-एक कदम चलना होगा। क्योंकि कभी-कभी इस विधि से लोग विक्षिप्त भी हो जाते है। अपना संतुलन खो देते है। यह प्रयोग और इसका प्रभाव बहुत विराट है। अगर अचानक यह विराट आकाश तुम पर टूट पड़े और तुम् हें बोध हो कि तुम्हारे सिर में समस्त अंतरिक्ष समाहित हो गया है और तुम्हारे सिर में चाँद-तारे और पूरा ब्रह्मांड घूम रहा है। तो तुम्हारा सिर चकराने लगेगा। इसलिए अनेक परंपराओं में इस विधि के प्रयोग में बहुत सावधानियां बरती जाती है।
इस सदी में एक संत, राम तीर्थ ने इस विधि का प्रयोग किया था। और अनेक लोगों को, जो जानते है, संदेह है कि इसी विधि के कारण उन्होंने आत् मघात कर लिया। राम तीर्थ के लिए आत्मघात नहीं था। क्योंकि उसने जान लिया था कि सारा अंतरिक्ष उसमें समाहित है। उसके लिए आत्मघात असंभव है — वह आत्मघात नहीं कर सकता। वहां कोई आत्मघात करने वाला ही नहीं बचा। लेकिन दूसरों के लिए, जो बाहर से देख रहे थे, यह आत्मघात है।
राम तीर्थ को ऐसा अनुभव होने लगा कि सारा ब्रह्मांड उनके भीतर, उनके सिर के भीतर घूम रहा हे। उनके शिष्यों ने पहले तो सोचा कि वे काव्य की भाषा में बोल रहे है। लेकिन फिर उन्हें लगने लगा कि वे पागल हो गये है। क्योंकि उन्होंने दावा करना शुरू कर दिया कि मैं ब्रह्मांड हूं और सब कुछ मेरे भीतर है। और फिर एक दिन वे एक पहाड़ की चोटी से नदी में कूद गये।
राम तीर्थ ने नदी में कूदने के पहले एक सुंदर कविता लिखी। जिसमें उन्होंने कहा है: ‘मैं ब्रह्मांड हो गया हूं,अब मेरा शरीर भार हो गया है, इस शरीर को मैं अब अनावश्यक मानता हूं। इसलिए मैं इसे वापस करता हूं। अब मुझ किसी सीमा की जरूरत नहीं है। मैं निस्सीम ब्रह्म हो गया हूं।’ मनोचिकित्सक तो सोचते है कि वे विक्षिप्त हो गए। वह पागल हो गए। लेकिन जिन्हें मनुष्य चेतना के गहन आयामों का पता है, वे कहते है कि मुक्त हो गये। बुद्ध हो गये। लेकिन सामान्य चित के लिए यह आत्मघात है। तो ऐसी विधि से खतरा हो सकता है। इस कारण में कहता हूं उनकी तरफ क्रमश: बढ़ो, धीरे-धीरे चलो। तुम्हें इसका पता नहीं है, अत: कुछ भी संभव है। तुम्हें अपनी संभावनाओं का ज्ञान नहीं है। तुम्हारी कितनी तैयारी है, इसकी भी तुम्हें प्रत्यभिज्ञा नहीं है। ओर कुछ भी संभव है। अंत: सावधानीपूर्वक इस प्रयोग को करने की जरूरत है।
पहले छोटी-छोटी चीजों पर अपनी कल्पना का प्रयोग करो। भाव करो कि शरीर बड़ा हो गया है। छोटा हो रहा है। तुम दोनों तरफ जा सकते हो। तुम यदि पाँच फीट छह इंच के हो तो भाव करो कि चार फीट का हो गया हुं, तीन फीट का हो गया हू....दो फीट का हो गया हूं.....एक फीट का हो गया हूं....एक बिंदू मात्र रह गया हूं।
यह तैयारी भर है, इस बात की तैयारी है कि धीरे-धीरे तुम जो भी भाव करना चाहों वह कर सकते हो। तुम्हारा आंतरिक चित भार करने के लिए बिलकुल स्वतंत्र है। उसे कुछ भी भाव करने में कोई बाधा नहीं है। यह तुम्हारा भाव है, तुम चाहों तो फैल कर बड़े हो सकते हो और चाहो तो सिकुड़कर छोटे हो सकते हो। और तुम्हें वैसा बोध भी होने लगेगा।
और अगर तुम इस प्रयोग को ठीक से करो तो तुम बहुत आसानी से अपने शरीर से बाहर आ सकते हो। अगर तुम कल्पना से शरीर को छोटा-बड़ा कर सकते हो तो तुम शरीर से बहार आने में समर्थ हो। तुम सिर्फ कल्पना करो कि मैं अपने शरीर के बाहर खड़ा हूं, और तुम बाहर खड़े हो जाओगे।

लेकिन यह इतनी जल्दी नहीं होगा। पहले छोटे-छोटे चरणों में प्रयोग करने होगें। और जब तुम्हें लगे कि तुम शांत रहते हो, घबराते नही, तब भाव करो कि तुम्हारे पूरे कमरे को भर दिया है। और तुम वास्तव में दीवारों का स्पर्श अनुभव करने लगोगे। और तब भाव करो कि पूरा मकान तुम्हारे भीतर समा गया है। और तुम उसे अपने भीतर अनुभव कर रहे हो। इस भांति एक-एक कदम आगे बढ़ो। और तब, धीरे-धीरे आकाश को अपने सिर के भीतर अनुभव करो। और जब तुम आकाश को अपने भीतर अनुभव करते हो। जब तुम आकाश को अपने साथ महसूस करते हो, उसके साथ एक हो जाते हो। तो मन एक दम विदा हो जाता है। अब वहां उसका कोई काम नहीं है।
इस विधि को किसी गुरु या मित्र के साथ रह कर करना अच्छा होगा। अकेले में प्रयोग करना खतरनाक भी हो सकता हे। तुम्हारे पास कोई होना चाहिए। जो तुम्हारी देखभाल कर सके। यह समूह विधि है। गुरूकुल या आश्रम में प्रयोग करने की विधि है। किसी आश्रम में जहां अनेक लोग मिलकर काम करते हों। वहां इस विधि का प्रयोग आसान है। कम खतरनाक और कम हानिकारक है। क्योंकि जब भीतर का आकाश विस्फोटित होता है। तो संभव है कि कई दिनों तक तुम्हें अपने शरीर की सुध ही नहीं रहे। तुम भाव में इतने आविष्ट हो जाओ कि तुम्हारा बाहर आना ही संभव न हो। क्योंकि उस विस्फोट के साथ समय विलीन हो जाता है। तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि कितना समय व्यतीत हो गया है। शरीर का पता ही नहीं चलेगा। शरीर का बोध ही नहीं रहता। तुम तो आकाश हो जाते हो।
तो कोई चाहिए जो तुम्हारे शरीर की देखभाल करे। बहुत ही प्रेमपूर्ण देखभाल की जरूरत होगी। इसीलिए किसी गुरू या समूह के साथ प्रयोग करने से यह विधि कम हानिकारक हो जाती हे। कम खतरनाक रह जाती हे। और समूह भी ऐसा होना चाहिए, जो जानता हो कि इस विधि में क्या-क्या संभव है, क्या-क्या घटित हो सकता है और तब क्या किया जा सकता है। क्योंकि मन की इस अवस्था में अगर तुम्हें अचानक जगा दिया जाए तो तुम विक्षिप्त भी हो सकते हो। क्योंकि मन को वापस आने के लिए समय की जरूरत होती है। अगर झटक से तुम्हें शरीर में वापस आना पड़े तो संभव है कि तुम्हारा स्नायु संस्थान उसे बर्दाश्त न कर सके। उसे कोई अभ्यास नहीं है। उसे प्रशिक्षित करना होगा।
तो अकेले प्रयोग न करें;समूह में या मित्रों के साथ एकांत जगह में
यह प्रयोग कर सकते है। और धीरे-धीरे, एक-एक कदम बढ़े, जल्दबाजी न करे। ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-49

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—75 (ओशो)
‘जागते हुए सोते हुए, स्वप्न देखते हुए, अपने को प्रकाश समझो।’
पहले जागरण से शुरू करो। योग ओर तंत्र मनुष्य के मन के जीवन को तीन भागों में बाँटता है—स्मरण रहे, मन के जीवन को। वे मन को तीन भोगों में बांटते है: जाग्रत,सुषुप्ति और स्वप्न। ये तुम्हारी चेतना के नहीं, तुम्हारे में के भाग है।
चेतना चौथी है—तुरीय। पूर्व मैं इसे कोई नाम नहीं दिया गया है। सिर्फ तुरीय या चतुर्थ कहा गया है। तीन के नाम है। वे बादल है जिनके नाम हो सकते है। कोई जागता हुआ बादल है, कोई सोया हुआ बादल है। और कोई स्वप्न देखता हुआ बादल है। और जिस आकाश में वह घूमते है, वह अनाम है, उसे मात्र तुरीय कहां जाता है।

पश्चिम का मनोविज्ञान हाल में ही स्वप्न के आयाम से परिचित हुआ
है। असल में फ्रायड के साथ स्वप्न महत्वपूर्ण हुआ। लेकिन हिंदुओं के लिए यह अत्यंत प्राचीन धारणा है। कि तुम तब तक किसी मनुष्य को सच में नहीं जान सकते जब तक तुम यह नहीं जानते कि वह अपने स्वप्नों में क्या करता है। क्योंकि वह जागते समय में जो भी करता है वह अभिनय हो सकता है। झूठ हो सकता है। क्योंकि वह जागते समय में वह जो करता है बहुत मजबूरी में करता है। वह स्वतंत्र नहीं है; समाज है, नियम है, नैतिक व्यवस्था है। वह निरंतर अपनी कामनाओं के साथ संघर्ष करता है, उनका दमन करता है। उनमें हेर-फेर करता है। समाज के ढांचे के अनुरूप उन्हें बदलता है। और समाज तुम्हें कभी तुम्हारी समग्रता में स्वीकार नहीं करता है। वह चुनाव करता है, काट-छांट करता है।
संस्कृति का यही अर्थ है; संस्कृति चुनाव है। प्रत्येक संस्कृति
एक संस्कार है। कुछ चीजें स्वीकृत है और कुछ चीजें अस्वीकृत है। कहीं भी तुम्हारे समग्र अस्तित्व को, तुम्हारी निजता को स्वीकृति नहीं दी जाती है। कही भी नहीं। कहीं कुछ पहलू स्वीकृत है; कहीं कुछ और पहलू स् वीकृत है। कहीं भी समग्र मनुष्य नहीं है।
तो जाग्रत अवस्था में तुम झूठे, नकली कृत्रिम और दमित होने के लिए मजबूर हो। तुम जागते हुए प्रामाणिक नहीं हो सकते, अभिनेता भर हो सकते हो। तुम सहज नहीं हो सकते। तुम अंत: प्ररेणा से नहीं चलते, बाहर से धकाए जाते हो।
केवल अपने स्वप्नों में तुम प्रामाणिक हो सकते हो। तुम अपने स् वप्नों में जो चाहे कर सकते हो। उससे किसी को लेना-देना नहीं है। वहां तुम अकेले हो। तुम्हारे सिवाय कोई भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता है। कोई भी तुम्हारे स्वप्नों में नहीं झांक सकता है। और किसी को इसकी चिंता भी नहीं है। कि तुम अपने स्वप्नों में क्या करते हो। इससे किसी को क्या लेना-देना। सपने तुम्हारे बिलकुल निजी है। क्योंकि वे बिलकुल निजी है और उनका किसी से कोई लेना देना नहीं है। इसलिए तुम स्वतंत्र हो सकते हो।
तो जब तक तुम्हारे सपनों को नहीं जाना जाता, तुम्हारे असली चेहरे
से भी परिचित नहीं हुआ जा सकता हे। हिंदुओं को इसका बोध था। सपनों में प्रवेश करना अनिवार्य है। लेकिन सपने भी बादल ही है। यद्यपि ये बादल निजी है, कुछ स्वतंत्र है; फिर भी बादल ही तो है। उनके भी पार जाना है। ये तीन अवस्थाएं है: जाग्रत सुषुप्ति और स्वप्न। फ्रायड के साथ सपनों पर काम शुरू हुआ। अब सुषुप्ति पर, गहरी नींद पर काम होने लगा है। पश्चिम में अनेक प्रयोगशालाओं में यह जानने के लिए काम हो रहा है कि नींद क्या है। क्योंकि यह बहुत आश्चर्य की बात लगती है कि हमें यह भी नहीं पता कि नींद क्या है? कि नींद में क्या यथार्थत: घटित होता है। यह अभी वैज्ञानिक ढंग से नहीं जाना गया है।
और अगर हम नींद को नहीं जान सकते तो मनुष्य को जानना बहुत कठिन होगा। क्योंकि मनुष्य अपने जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा नींद से गुजारता है। जीवन का एक तिहाई हिस्सा, अगर तुम साठ साल जीने वाले हो तो बीस साल तुम सौकर गुज़ारते हो। इतना बड़ा हिस्सा है यह। जब तुम सोए हो तो तुम क् या कर रहे हो?
जागरण की अवस्था में तुम समाज के साथ होते हो। स्वप्न के अवस्था
में तुम अपनी कामनाओं के साथ होते हो। और गहरी नींद में तुम प्रकृति के साथ होते हो। प्रकृति के गहन गर्भ में होते हो। योग और तंत्र का कहना है कि इन तीनों के पार जाने पर ही तुम ब्रह्म में प्रवेश कर सकते हो। इन तीनों से गुजरना होगा। इनके पार जाना होगा, इनका अतिक्रमण करना होगा।

एक फर्क है। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान इन अवस्थाओं के अध्ययन में उत्सुक हो रहा है। पूर्व के साधक इन अवस्थाओं में उत्सुक थे। इनके अध् ययन में नहीं। वे इसमे उत्सुक थे कि कैसे इनका अतिक्रमण किया जाए। यह विधि अतिक्रमण की विधि है।
जागते हुए, सोते हुए,स्वप्न देखते हुए, अपने को प्रकाश समझो
बहुत कठिन है। तुम जागरण से शुरू करना होगा। तुम स्वप्नों में कैसे स्मरण रख सकते हो? क्या तुम सचेतन रूप से कोई स्वप्न पैदा कर सकते हो? क्या तुम स्वप्न को व्यवस्था दे सकते हो। उसमें हेर-फेर कर सकते हो? आदमी कितना नापुंसग है। तुम अपने स्वप्न भी नहीं निर्मित कर सकते हो। वे भी अपने आप आते है; तुम बिलकुल असहाय हो।
लेकिन कुछ विधियां है जिनके द्वारा स्वप्न निर्मित किए जा सकते
है। और ये विधियां अतिक्रमण करने में बहुत सहयोगी है। क्योंकि अगर तुम स्वप्न निर्मित कर सकते हो तो तुम उसका अतिक्रमण भी कर सकते हो। लेकिन आरंभ तो जाग्रत अवस्था से ही करना होगा।
जागते समय—चलते समय, खाते समय,काम करते समय। अपने को प्रकाश रूप
में स्मरण रखो। मानो तुम्हारा ह्रदय में एक ज्योति जल रही है और तुम् हारा शरीर उस ज्योति का प्रभामंडल भर है। कल्पना करो कि तुम्हारे ह्रदय में एक लपट जल रही है। और तुम्हारा शरीर उस लपट के चारों और प्रभामंडल के अतिरिक्त कुछ नहीं है; तुम्हारा शरीर उस लपट के चारों और फैला प्रकाश है। इस कल्पना को, इस भाव को अपने मन ओर चेतना की गहराई में उतरने दो। इसे आत्मसात करो।
थोड़ा समय लगेगा। लेकिन यदि तुम यह स्मरण करते रहे,कल्पना करते रहे,तो धीरे-धीरे तुम इसे पूरे दिन स्मरण रखने में समर्थ हो जाओगे। जागते हुए, सड़क पर चलते हुए, तुम एक चलती फिरती ज्योति हो जाओगे। शुरू- शुरू में किसी दूसरे को इसका बोध नहीं होगा; लेकिन अगर तुमने यह स्मरण जारी रखा तो तीन महीनों में दूसरों को भी इसका बोध होने लगेगा।
और जब दूसरों को आभास होने लगे तो तुम निश्चिंत हो सकते हो। किसी
से कहना नहीं है। सिर्फ ज्योति का भा करना है। और भाव करना है कि तुम् हारा शरीर उसके चारों और फैला प्रभामंडल है। यह स्थूल शरीर नहीं हे। विद्युत शरीर है। प्रकाश शरीर है। अगर तुम धैर्य पूर्वक लगे रहे तो तीन महीनों में, करीब-करीब तीन महीनों में दूसरों को बोध होने लगेगा। कि तुम्हें कुछ घटित हो रहा हे। वे तुम्हारे चारों और एक सूक्ष्म प्रकाश महसूस करेंगें। जब तुम निकट जाओगे,उन्हें एक तरह की अलग उष्मा महसूस होगी। तुम यदि उन्हें स्पर्श करोगे तो उन्हें उष्मा स्पर्श महसूस होगी। उन्हें पता चल जायेगा कि तुम्हें कुछ अद्भुत घटित हो रहा है। पर किसी से कहो मत और जब दूसरों को पता चलने लगे तो तुम आश्वस्त हो सकते हो। और तब तुम दूसरे चरण में प्रवेश कर सकते हो। उसके पहले नहीं।
दूसरे चरण में इस विधि को स्वप्नावस्था में ले चलना है। अब तुम स् वप्न जगत में इसका प्रयोग शुरू कर सकते हो। यह अब यथार्थ है, अब यह कल् पना ही नहीं है। कल्पना के द्वारा तुम ने सत्य को उघाड़ लिया है। यह सत् य है। सब कुछ प्रकाश से बना है। सब कुछ प्रकाश मय है। तुम प्रकाश हो; हालांकि तुम्हें इसका बोध नहीं है। क्योंकि पदार्थ का कण-कण प्रकाश है। वैज्ञानिक कहते है कि पदार्थ इलेक्ट्रॉन से बना हे। वह वही बात है। प्रकाश ही सब का स्त्रोत है। तुम भी घनीभूत प्रकाश हो। कल्पना के जरिए तुम सिर्फ सत्य को उघाड़ रहे हो। प्रकट कर रहे हो। इस सत्य को आत्मसात करो। और जब तुम उससे आपूर हो जाओ तो उसे दूसरे चरण में, स्वप्न में ले जा सकते हो। उसके पहले नही।
तो नींद में उतरते हुए ज्योति को स्मरण करते रहो। देखते रहो, भाव करते रहो कि मैं प्रकाश हूं। और इसी स्मरण के साथ नींद में ओर उतर जाओ,

और नींद में भी यही स्मरण जारी रहता है। आरंभ में कुछ ही स्वप्न ऐसे होंगे जिनमें तुम्हें भाव होगा कि तुम्हारे भीतर ज्योति है। कि तुम प्रकाश हो। पर धीरे-धीरे स्वप्न में भी तुम्हें यह भाव बना रहने लगेगा। और जब यह भाव स्वप्न में प्रवेश कर जाएगा। सपने विलीन होने लगेंगे। सपने खोने लगेंगे। सपने कम से कम होने लगेंगे। और गहरी नींद की मात्रा बढ़ने लगेगी। और जब तुम्हारी स्वप्नावस्था में यह सत्य प्रकट हो कि तुम प्रकाश हो, ज्योति हो प्रज्वलित ज्योति हो, तब स्वप्न विदा हो जायेंगे।
और जब स्वप्न विदा हो जाते है, तभी इस भाव को सुषुप्ति में गहन नींद में ल जाया जा सकता है। उसके पहले नहीं। अब तुम द्वार पर हो। जब सपने विदा हो गए है और तुम अपने को ज्योति की भांति स्मरण रखते हो तो तुम नींद के द्वार पर हो। अब तुम इस भा के साथ नींद में प्रवेश कर सकते हो। और यदि तुम एक बार नींद में इस भाव के साथ उतर गये। कि मैं ज्योति हूं। तो तुम्हें नींद में भी बोध बना रहेगा। और अब नींद केवल तुम्हारे शरीर को घटित होगी। तुम्हें नहीं।
कृष्ण गीता में यही कहते है कि योगी कभी नहीं सोते; जब दूसरे सोते
है तब भी वे जागते है। ऐसा नहीं है कि उनके शरीर को नींद नही आती। उनके शरीर तो सोते है। लेकिन शरीर ही। शरीर को विश्राम की जरूरत है। चेतना को विश्राम की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि शरीर यंत्र है। चेतना यंत्र नहीं है। शरीर को ईंधन चाहिए। उसे विश्राम चाहिए। यही कारण है। कि शरीर जन्म लेता है, युवा होता है, वृद्ध होता है। और मर जाता है। चेतना न कभी जन्म लेती है, न कभी बूढी होती है,और न कभी मरती है। उसे न ईंधन की जरूरत है और न विश्राम की। यह शुद्ध ऊर्जा है; नित्य-शाश्वत ऊर्जा।
अगर तुम इस ज्योति के, प्रकाश के बिंब को नींद के भीतर ले जा सके तो
तुम फिर कभी नहीं सोओगे। सिर्फ तुम्हारा शरीर विश्राम करेगा। और जब शरीर सोया है तो तुम यह जानते रहोगे। और जैसे ही यह घटित होता है—तुम तुरीय हो, चतुर्थ हो। स्वप्न ओ सुषुप्ति मन के अंश है। वे अंश है और तुम तुरीय हो गय हो। चतुर्थ हो गए हो। तुरीय वह है जो उनमें से गुजरता है, लेकिन उनमें से कोई भी नहीं।
वस्तुत: यह बिलकुल सरल है। अगर तुम जाग्रत हो ओर फिर तुम स्वप्न देखने लगते हो तो तुम दोनों नहीं हो सकते। अगर तुम जाग्रति हो तो तुम स् वप्न नहीं देख सकते। और अगर तुम स्वप्न हो तो तुम सुषुप्ति में कैसे उतर सकते हो, जहां कोई सपने नहीं होते?
तुम एक यात्रा हो और ये अवस्थाएं पड़ाव है—तभी तुम यहां से वहां
जा सकते हो। और फिर वापस आ सकते हो। सुबह तुम फिर जाग्रत अवस्था में वापस आ जाओगे। ये अवस्थाएं है; और जब इन अवस्थाओं से गुजरता है वह तुम हो। लेकिन वह तुम चतुर्थ हो। और इसी चतुर्थ को आत्मा कहते है। इसी चतुर्थ को भगवता कहते है; इसी चतुर्थ को अमृत तत्व कहते है, शाश्वत जीवन कहते है।
जागते हुए,सोते हुए,स्वप्न देखते हुए, अपने को प्रकाश समझो।
यह बहुत सुंदर विधि है। लेकिन जाग्रत अवस्था से आरंभ करो। और स्
मरण रहे कि जब दूसरों को इसका बोध होने लगे तभी तुम सफल हुए। उन्हें बोध होगा। और तब तुम स्वप्न में और फिर निद्रा में प्रवेश कर सकते हो। और अंत में तुम उसके प्रति जागोगे जो तुम हो—तुरीय।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-49

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—76 (ओशो)

अंधकार—संबंधी पहली विधि
वर्षा की अंधेरी राम में उस अंधकार में प्रवेश करो,जो रूपों का रूप है
अतीत में एक बहुत पुराना गुह्म विधा का संप्रदाय था। जिसके बारे
में शायद तुमने न सुना हो। यह संप्रदाय ‘इसेनी’ नाम से जाना जाता था। जीसस की शिक्षा-दीक्षा उसी संप्रदाय में हुई थी। जीसस उस संप्रदाय के सदस्य थे। इसेनी संप्रदाय संसार में अकेला संप्रदाय है जिसने परमात्मा की धारणा परम अंधकार के रूप में कि है। कुरान कहती है कि परमात्मा प्रकाश है। वेद कहते है कि परमात्मा प्रकाश है। बाइबिल भी कहती है की परमात्मा प्रकाश है। पूरी दुनियां में सिर्फ इसेनी की परंपरा कहती है कि परमात्मा घनघोर अंधकार है। परमात्मा सर्वथा अंधकार है; एक अनंत रात जैसा है।
यह धारणा बहुत सुंदर है। आश्चर्यजनक है, पर बहुत सुंदर है। और बहुत अर्थपूर्ण भी है। तुम्हें इसका अर्थ जरूर समझना चाहिए। और तब यह विधि बहुत सहयोगी हो जाएगी। क्योंकि इस विधि का प्रयोग इसेनी साधक अंधकार में प्रवेश करने के लिए, उसके साथ एक होने के लिए करते थे। थोड़ा इस पर विचार करो कि क्यों परमात्मा को सब जगह प्रकाश की भांति चित्रित किया गया है। इसलिए नहीं क्योंकि परमात्मा प्रकाश है, बल्कि इसलिए क्योंकि मनुष्य अंधकार से भयभीत है। यह मानवीय भय है। हम प्रकाश को पसंद करते है और अंधकार से डरते है। इसलिए हम अंधकार या कालिमा के रूप में ईश्वर की धारणा नही बना सकते। वह मानवीय धारणा है। हम ईश्वर को प्रकाश की भांति सोचते है। क्योंकि हम अंधकार से भयभीत है। हमारे ईश्वर हमारे भय की ही निर्मिति है। हम ही उन्हें आकार और
रूप देते है। और क्योंकि आकार और रूप हम देते है। ये आकार और रूप हमारे संबंध में खबर देते है। परमात्मा के संबंध में नहीं। वे हमारी निर्मिति है। हम अंधकार से भयभीत है; इसलिए परमात्मा प्रकाश है।
लेकिन ये विधियां एक भिन्न संप्रदाय की विधियां है। इसेनी कहते
है कि ईश्वर अंधकार है। और इस बात में कुछ सार है। पहली तो बात की अंधकार शाश्वत है। प्रकाश आता है जाता है। अंधकार सदा है। सुबह सूर्य उगता है। और प्रकाश होता है। अंधकार सदा है। डूबता है और अंधकार छा जाता है। अंधकार के लिए कुछ उदय नहीं होता है; अंधकार सदा है। वह न कभी उगता है और न डूबता हे। प्रकाश आता है जाता है। अंधकार बन रहता है। और प्रकाश का सदा कोई स्त्रोत है। अंधकार स्त्रोत हीन है। और जिसका कोई स्त्रोत है वह शाश्वत नहीं हो सकता है। असीम और शाश्वत तो वही हो सकता है। जिसका कोई स्त्रोत न हो, जो स्त्रोत हीन हो। और प्रकाश में थोड़ा तनाव है। यही कारण है कि तुम प्रकाश में कभी सो नहीं सकते। वह तनाव पैदा करता है। अंधकार विश्राम है—समग्र विश्राम।
लेकिन हम अंधकार से भयभीत क्यों है। कारण यह है कि प्रकाश हमें जीवन जैसा मालूम पड़ता है। वह जीवन है। और अंधकार मृत्यु जैसा प्रतीत होता है; वह मृत्यु है। जीवन प्रकाश से आता हे। और जब तुम मरते हो तो ऐसा लगता है कि तुम शाश्वत अंधकार में गिर रहे हो। यही कारण है हम मृत्यु को काले रंग से चित्रित करते है। और काला रंग शोक का रंग बन गया है। ईश्वर प्रकाश है ओर मृत्यु अंधकार है।
लेकिन ये हमारे भय है—प्रक्षेपित और आरोपित भय। वस्तुत: अंधकार असीम है; प्रकाश सीमित है। अंधकार गर्भ जैसा है। जिसमें सब चीजें जन्म लेती है और जिसमें फिर विलीन हो जाती है।
यह इसेनियों का दृष्टिकोण बहुत सुंदर है। और बहुत सहयोगी भी। क् योंकि अगर तुम अंधकार को प्रेम कर सको तो तुम मृत्यु से निर्भय हो जाओगे। अगर तुम अंधकार में प्रवेश कर सको—और यह प्रवेश तभी हो सकता है

जब भय न हो—तो तुम समग्र विश्राम को उपलब्ध हो जाओगे। अगर तुम अंधकार के साथ एक हो सको तो तुम खो जाओगे। विलीन हो जाओगे। सही समर्पण है। अब कोई भय न रहा। क्योंकि जब तुम अंधकार के साथ एक हो गए तो तुम मृत्यु के साथ एक हो गए। अंग तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती। तुम अब अमृत हो गए। अंधकार अमृत है। प्रकाश जन्मता है और मर जाता है। अंधकार बस है। वह अमृत है।
इस विधियों के संबंध में पहली बात यह स्मरण रखना चाहिए कि तुम् हारे मन में अंधकार के प्रति, कालिमा के प्रति कोई भय न रहे। अन्यथा तुम यह प्रयोग नहीं कर सकोगे। पहले भय को छोड़ना होगा। तो आरंभिक चरण के रूप में एक काम यह करो; अंधकार में बैठ जाओ, रोशनी बुझा दो और अंधकार को अनुभव करो। उसके प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि रखो; अंधकार को तुम्हें छूने दो। उसे देखो। अंधेरे कमरे में या अंधेरी रात में अपनी आंखे खोलों और अंधकार को अनुभव करो। उसके साथ संवाद करो, उससे मैत्री बांधों।
यदि तुम भयभीत हो गए तो ये विधियां तुम्हारे लिए किसी काम की नहीं
है। तब तुम इनका प्रयोग नहीं कर सकोगे। पहले अंधकार के साथ घनिष्ठ मैत्री की जरूरत है। कभी रात में, जब सब लोग सोने के लिए चले जाये,तुम अंधकार के साथ रहो। कुछ मत करो,बस उसके साथ रहो। और उसके साथ मात्र रहना ही तुम्हें उससे प्रति गहन भाव से भर देगा। कारण यह है कि अंधकार बहुत विश्राम दायी है। सिर्फ भय के कारण तुम्हें अंधकार के इस पहलू से परिचित नहीं हुए। अगर रात में तुम नींद न आए तो तुम तुरंत बत्ती जला लोगे और कुछ करने या पढ़ने लगोगे। लेकिन तुम अंधकार के साथ नहीं रह सकते। अंधकार के साथ रहो। और अगर तुम उसके साथ रह सके तो तुम्हारा उसके साथ एक नया संपर्क बनेगा, तुम्हें उसमें एक नया द्वार मिलेगा।
मनुष्य ने अपने को अंधकार के प्रति बिलकुल बंद कर लिया है। उसके कारण थे ऐतिहासिक कारण थे। पुराने जमाने में मनुष्य जंगलों और गुफाओं में रहा करता था। वहां रातें बहुत खतरनाक होती थी। दिन में तो वह सुरक्षित अनुभव करता था। चारो और देख सकता था। दिन में वह अपने को जंगली जानवरों के हमने से बचा सकता था। कम से कम उनसे भाग तो सकता था। लेकिन रात में चारों तरफ अँधेरा होता था। और वह बहुत असहाय हो जाता था। इससे ही वह अंधकार से भयभीत हो गया।
और यह भय उसके अचेतन में गहरा समा गया है। हम अब भी भयभीत है। तुम् हारा अचेतन तुम्हारा अपना अचेतन नहीं है; वह सामूहिक है, वंशानुगत है। वह तुम्हें विरासत में मिला है। वह भय वहां है और उस भय के कारण तुम अंधेरे के साथ संवाद नहीं कर सकते हो।
एक और बात इस भय के कारण ही मनुष्य ने अग्नि को पूजना शुरू कर दिया। जब आग खोजी गई तो आग देवता बन गई। ऐसा नहीं कि आग को पूजना शुरू किया। ऐसा नहीं है कि आग देवता है। पर अंधेरे के डर के कारण वह देवता बन गई। तो जब आग का आविष्कार हुआ तो वह देवता बन गई। वह उस समय सबसे सुरक्षित और विश्वास तुल्य बन गई। पारसी लोग आज भी अग्नि की पूजा करते है। रात के कारण आग आदमी की मित्र और सुरक्षा बन गई—दैवी सुरक्षा बन गई।
यह भय आज भी बना हुआ है। भले ही तुम्हें उसका बोध न हो; क्योंकि उसके प्रति बोधपूर्ण होने की स्थितियाँ नहीं है। लेकिन किसी भी रात रोशनी बुझा दो और अंधकार में बैठो। और वह आदिम भय आज भी तुम्हें घेर लेगा। तुम्हें अपने घर में लगेगा कि चारों और जंगली जानवर खड़े है। कोई आवाज होगी और तुम्हें जंगली जानवरों का भय पकड़ लेगा। प्रयोग कर सकते हो यह अद्भुत है। तब तुम ऐसे प्रगाढ़ विश्राम में प्रवेश करोगे जिसका अनुभव तुम्हें कभी न हुआ होगा।

लेकिन पहले अपने अचेतन भयो को उघाड़ो तथा अंधकार को जीना और प्रेम करना सिखों। वह बहुत आनंददायी है। एक बार तुम इसे जान लेते हो और इसके संपर्क में होते हो तो तुम एक बहुत गहन जागतिक घटना के संपर्क में आ जाते हो।
जब भी तुम्हें अंधेरे में होने का मौका मिले तो जागे रहने का ख्
याल रखो। क्योंकि तुम दो काम कर सकते हो: या तो तुम रोशनी जला लोगे या नींद में चल जाओगे। ये दोनों अंधकार से बचने की तरकीबें है। अगर तुम सो जाते हो तो भय चला जाता है। क्योंकि तुम चेतन नहीं रहे। या अगर तुम चेतन रहे तो तुम रोशनी जला लोगे। न रोशनी जलाओ और न नींद में उतरो। अंधकार के साथ रहो।
बहुत से भय पकड़ेगे उन्हें अनुभव करो। उनके प्रति सजग होओ। उन्
हें अपने चेतन में ले आओ। वह अपने आप ही आएँगे। और वह जब आएं तो उनके साक्षी भर रहो। वे भय विदा हो जाएंगे। और शीध्र ही वह दिन आएगा जब तुम अंधेरे में पूरे समर्पण के साथ रहोगे। और तुम्हें कोई डर नहीं घेरेगा।
तब तुम सहजता से अंधकार के साथ रह सकते हो। और तब एक सुंदर घटना घटती है। और तभी तुम इसेनियों के इस वक्तव्य को समझ सकोगे। परमात्मा अंधकार है। परम अंधकार है।
‘वर्षा की अंधेरी रात में उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का
रूप है।’
शिव कहते है कि यह विधि वर्षा की रात में करने योग्य है। जब सब कुछ अंधकार में डूबा हो। जब काले बादलों में तारे भी नहीं दिखाई देते हो। अंधेरी रात में जब चाँद न हो ‘उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का रूप है।’ उस अंधकार के साक्षी बनों। और फिर उसमे विलीन हो जाओ। वह सब रूपों का रूप है। तुम रूप हो; तुम उसमे विलीन हो सकते हो।
जब प्रकाश होता है तो तुम परिभाषित हो जाते हो, सीमित हो जाते हो।
मैं तुम्हें देख सकता हूं। क्योंकि प्रकाश है। तुम्हारे शरीर की सीमाएं है। तुम्हारी सीमाएं बन जाती है। तुम्हारी हदे निर्मित हो जाती है। तुम्हारी सीमाएं प्रकाश के कारण है। जब प्रकाश नहीं होता तो सीमाएं खो जाती है। अंधकार में कहीं कोई सीमा नहीं है। हर चीज दूसरी चीज में समा जाती है। रूप विसर्जित हो जाता है।
वह भी हमारे भा का एक कारण हो सकता है। क्योंकि तब तुम्हारी परिभाषा नही रहती है। और तुम नहीं जानते हो कि तुम कौन हो। तब तुम्हारा चेहरा नहीं देखा जा सकता, तुम्हारा शरीर नहीं देखा जा सकता है। सब कुछ रूप ही अस्तित्व में घुल मिल जाता है। वह भय का एक कारण हो सकता है। क् योंकि तुम्हें तुम्हारे सीमित अस्तित्व का अहसास नहीं रहता। अस्तित्व धुंधला-धुंधला हो जाता है। और भय तुम्हें पकड़ लेता है। क्योंकि अब तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो। तब अहंकार नहीं रह सकता। सीमा के बिना अहंकार का होना कठिन है। आदमी भय अनुभव करता है। वह प्रकाश चाहता है।
धारण और ध्यान करते हुए प्रकाश की बजाएं अंधकार में विलीन होना आसान है। प्रकाश तोड़ता है। पृथकता पैदा करता है। अंधकार सभी पृथकता और फर्क मिटा देता है। प्रकाश में तुम सुंदर हो या कुरूप हो। अमीर हो या गरीब हो। प्रकाश तुम्हें व्यक्तित्व देता है। विशिष्टता देता है। शिक्षित हो, अशिक्षित हो, पुण्य आत्मा हो या पापी हो। प्रकाश तुम्हें पृथक व्यक्ति की तरह प्रकट करता है। अंधकार तुम्हें अपने में समेट लेता है। तुम्हें स्वीकार कर लेता है। वह तुम्हें पृथक व्यक्ति की तरह नहीं लेता है। वह तुम्हें बिना किसी परिभाषा के स्वीकार कर लेता है। तुम उसमें डूब जाते हो। तुम उसमें एक हो जाते हो।
अंधकार में सदा ही ऐसा होता है। लेकिन भयभीत होने के कारण तुम नहीं समझ पाते हो। अपने भय को अलग करो और उससे एक हो जाओ।

‘उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का रूप है। उस अंधकार में प्रवेश करो।’
तुम अंधकार में कैसे प्रवेश कर सकते हो। ती बात है। एक अंधकार को देखो। यह कठिन है। किसी ज्योति को, किसी रोशनी के स्त्रोत को देखना आसान है; क्योंकि वह एक आब्जेक्ट्स की भांति सामने है और तुम उसे देख सकते हो। अंधकार कोई आब्जेक्ट्स नहीं है। वह सब जगह है, चारों और है। तुम उसे एक आब्जेक्ट्स की तरह नहीं देख सकते हो। शून्य में देखो, खालीपन में झांको। वह सब और है। तुम बस देखा। शिथिल होकर विश्राम पूर्व देखते रहो। वह तुम्हारी आंखों में प्रवेश करने लगेगा। और जब अंधकार तुम्हारी आंखों में प्रवेश करता है तो तुम भी उसमें प्रवेश करते हो।
अंधेरी रात में इस विधि का प्रयोग करते हुए अपनी आंखें खुली रखो। आंखों को बंद मत करो। बंद आंखों से तुम एक अलग तरह के अंधकार में होते हो। वह तुम्हारा निजी अंधकार है। तुम्हारे मन का अंधकार है। वह यथार्थ नहीं है। सच तो यह है कि बंद आंखों का अंधकार नकारात्मक हे; वह विधायक अंधकार नहीं है।
यहां प्रकाश है; और तुम अपनी आंखें बंद कर लेते हो। तब तुम्हें जो अंधकार दिखाई देता है वह सिर्फ प्रकाश का नकारात्मक रूप है। वह सच्चा अंधकार नहीं है। जैसे कि तुम खिड़की को देखते हो ओर फिर आंखें बंद कर लेते हो। तो तुम्हारी आंखों में खिड़की की नकारात्मक आकृति तैरती रहती है। हमारे सभी अनुभव प्रकाश के है। इसलिए हम जब आँख बंद करते हे तो हमें प्रकाश का नकारात्मक अनुभव होता है। जिसे हम अंधकार कहते है वह असली अंधकार नहीं है। उससे काम नहीं चलेगा।
अपनी आंखें खुली रखो और अंधकार में खुली आंखों से देखते रहे। तब तुम्हें एक अगर ही किस्म का अंधकार मिलेगा—विधायक अंधकार। वह सचमुच है। उसमें टकटकी लगाओ । अंधकार को घूरते रहो। तुम्हारे आंसू बहने लगेंगे। तुम्हारी आंखें दूखने लगेगी। इसकी चिंता मत करना। प्रयोग को जारी रखो। जिस क्षण अंधकार असली अंधकार तुम्हारी आंखों में प्रवेश करेगा, वह तुम्हें एक सुखद भाव से भर देगा। मानों कड़ी घूप में चलने वाली राही को घनी छाया मिल गई हो। और विधायक अंधकार का प्रवेश तुम्हारे भीतर से सभी नकारात्मक अंधकार को हटा देगा। यह बहुत अद्भुत अनुभव है। असली अंधकार से इसेनियों के और शिव के अंधकार से हमारा संपर्क खो
गया है। उसके साथ हमारा कोई संपर्क नहीं है। हम उससे इतने भयभीत है कि हम उससे बिलकुल ही विमुख हो गए है। हमने उसकी तरफ अपनी पीठ कर ली है।
तो यह विधि प्रयोग में कठिन होगी। लेकिन अगर तुम इसे कर सको तो यह अद्भुत है। तब तुम्हारा होना सर्वथा भिन्न होगा; तब तुम और ही व्यक्ति होगे।
जब अंधकार तुममें प्रवेश करता है तो तुम उसमें प्रवेश करते हो। यह
सदा पारस्परिक है। दोनों तरफ से है। तुम किसी जागतिक तत्व में नहीं प्रवेश कर सकते हो। अगर वह तत्व तुम्हारे प्रवेश न करो। तुम जबरदस्ती नहीं कर सकते; उसमें जबरदस्ती प्रवेश नहीं हो सकता है। अगर तुम उपलब्ध हो, खुले हो वलनरेबल हो, अगर तुम किसी जागतिक तत्व को अपने भीतर प्रवेश देते हो, तो ही तुम उस तत्व में प्रवेश कर सकते हो। यह सदा पारस्परिक है, साथ-साथ है। तुम जबरदस्ती नहीं कर सकते, तुम उसे सिर्फ घटित होने दे सकते हो।
अभी तो शहरों में हमारे घरों में असली अंधकार का मिलना कठिन हो
गया है। और नकली प्रकाश के साथ हमारा सब कुछ नकली हो गया है। हमारा अंधकार भी प्रदूषित है; वह भी शुद्ध नहीं है। तो अच्छा है कि सिर्फ अंधकार के अनुभव के लिए हम कहीं दूर निकल जाएं। तो किसी गांव में चले जाओ; जहां अभी बिजली न पहुंची हो। या किसी पहली पर चले जाओ और वहां हफ्ते

भर रहो। ताकि शुद्ध अंधकार का अनुभव हो सके। तुम वहां से और ही आदमी होकर लौटोगे।
पूर्ण अंधकार में बिताए उन साथ दिनों में तुम्हारे सारे भय, सारे आदिम भय उभर कर ऊपर आ जाएंगे। भयानक जीव-जंतुओं से तुम्हारा सामना होगा। तुम्हें तुम्हारे अचेतन का साक्षात होगा। ऐसा लगेगा कि तुम उस पूरे विकास क्रम से गुजर रहे हो। जिससे पूरी मनुष्यता गुजरी है। अचेतन की गहराई में दबी बहुत चीजें ऊपर आ जाएंगी। और वे यथार्थ मालूम पड़ेगी। तुम भयभीत हो सकते हो। आतंकित हो सकते हो। क्योंकि वह चीजें यथार्थ मालूम पड़ेगी—और वे तुम्हारी मानसिक निर्मितियां भर है।
हमारे पागल खानों में अनेक पागल बंद है जो किसी और चीज से नहीं,
इसी आदिम भय से पीडित है। जो भय उनके अचेतन से उभरकर बाहर आ गया है। यह भय वहां मौजूद है, और विक्षिप्त लोग उससे ही हमेशा भयभीत है, आतंकित है। और हम अभी तक नहीं मालूम है कि इन आदिम भयो से मुक्त कैसे हुआ जाए। यदि इन पागलों को अंधकार पर ध्यान करने के लिए राज़ी किया जा सके तो उनका पागल पन विदा हो जाएगा।
सिर्फ जापन में इस दिशा में इस कुछ प्रयास किया है। वे अपने पागल लोगों के साथ बिलकुल भिन्न व्यवहार करते है। यदि कोई व्यक्ति पागल हो जाता है विक्षिप्त हो जाता है, तो जापन में वे उसे उसकी जरूरत के मुताबिक तीन या छह हफ्तों के लिए एकांत में रख देते है। वे उसे सिर्फ एकांत में रहने के लिए छोड़ देते है। उसकी अन्य जरूरतें पूरी करते रहते है। वे उसे समय पर भोजन देते है। लेकि एक काम किया जाता है, राम में रोशनी नहीं जलाई जाती। उसे अंधेरे में अकेले रहना पड़ता है। निश्चित ही उसे बहुत पीड़ा से गुजरना होता है। अनेक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। उसकी सब देख की जाती है, लेकिन उसे किसी तरह का साथ-संग नहीं दिया जाता। उसे अपनी विक्षिप्तता का साक्षात्कार सीधे और प्रत्यक्ष रूप से करना पड़ता है। और तीन से छह सप्ताह के अंदर उसका पागलपन दूर होने लगता है। दरअसल कुछ नहीं किया गया, उसे सिर्फ एकांत में रखा गया है। बस इतना
ही किया गया। पश्चिम के मनोचिकित्सक चकित है। उन्हें यह बात समझ में नहीं आती कि यह कैसे हो सकता है। वे खुद वर्षों मेहनत करते है। वे मनोविश्लेषण करते है, उपचार करते है। वे सब कुछ करते है। लेकिन वे रोगी को कभी अकेला नहीं छोड़ते। वे उसे कभी स्वयं ही अपने आंतरिक अचेतन का साक्षात्कार करने का मौका नहीं देते। क्योंकि तुम उसे जितना ही सहारा देते हो, वह उतना ही बेसहारा हो जाता है। वह उतना ही तुम पर निर्भर हो जाता है। और उतना ही तुम पर निर्भर हो जाता है। और असली सवाल आंतरिक साक्षात्कार का है। स्वयं को देखने का है। सच में कोई भी कुछ सहारा नहीं दे सकता हे। तो जो जानते है वे तुम्हें अपना साक्षात्कार करने को छोड़ देंगे। तुम्हें अपने अचेतन को भर आँख देखना होगा।
और अंधकार पर किया जानेवाला ध्यान तुम्हारे सारे पागलपन को पी जायेगा। इस प्रयोग को करो। तुम अपने घर में भी इस प्रयोग को कर सकते हो। रोज रात को एक घंटा अंधकार के साथ रहो। कुछ मत करो; सिर्फ अंधकार में टकटकी लगाओ, उसे देखो। तुम्हें पिघलने जैसा अनुभव होगा। तुम्हें एहसास होगा कि कोई चीज तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रही हे। और तुम किसी चीज में प्रवेश कर रहे हो। तीन महीने तक रोज रात एक घंटा अंधकार के साथ रहने पर तुम्हारे वैयक्तिकता के, पृथकता के सब भाव विदा हो जायेगे। तब तुम द्वीप नहीं रहोगे,तुम सागर हो जाओगे। तुम अंधकार के साथ एक हो जाओगे। और यह अंधकार इतना विराट है, कुछ भी उतना विराट और शाश्वत नहीं है।
और कुछ भी उतना निकट नहीं है। और तुम इस अंधकार से जितने भयभीत हो त्रस् त हो उतने भयभीत और त्रस्त किसी अन्य चीज से नहीं हो। और यह तुम्हारे पास ही है, सदा तुम्हारी प्रतीक्षा में है।

‘वर्षा की अंधेरी रात में उस अंधकार में प्रवेश करो, जो रूपों का
रूप है।’
उसे इस तरह देखो कि वह तुममें प्रविष्ट हो जाए।
दूसरी बात: लेट जाओ और भाव करो कि तुम अपनी मां के पास हो। अंधकार
मां है—सब की मां। थोड़ा विचार करो कि जब कुछ भी नहीं था तो क्या था? तुम अंधकार के अतिरिक्त ओर किसी चीज की कल्पना नहीं कर सकते हो। और यदि सब कुछ विलीन हो जाए तो क्या रहेगा? अंधकार रहेगा। अंधकार माता है, गर्भ है।
तो लेट जाओ और भाव करो कि मैं अपनी मां के गर्भ में पडा हूं। और वह
सच में वैसा अनुभव होगा। वह उष्ण मालूम पड़ेगा। और देर अबेर तुम महसूस करोगे कि अंधकार का गर्भ मुझे सब तरफ से घेरे है। और मैं उसमे हूं।
और तीसरी बात: चलते हुए, काम करते हुए, भोजन करते हुए, कुछ भी करते
हुए अपने साथ अंधकार का एक हिस्सा साथ लिए चलो। जो अंधकार तुममें प्रवेश कर गया है उसे साथ लिए चलो। जैसे हम ज्योति को साथ लिए चलने की बात करते थे। वैसे ही अंधकार को साथ लिए चलो। और जैसे मैंने तुम्हें बताया कि अगर तुम अपने साथ ज्योति को लिए चलो और भाव करो कि मैं प्रकाश हूं तो तुम्हारा शरीर एक अद्भुत प्रकाश विक्रीत करेगा और संवेदनशील लोग उसे अनुभव भी करेंगे। ठीक वही बात अंधकार के इस प्रयोग के साथ भी घटित होगी।
अगर तुम अपने साथ अंधकार को लिए चलो तो तुम्हारा सारा शरीर इतना विश्रांत हो जाएगा, इतना शांत और शीतल हो जाएगा कि वह दूसरों को भी अनुभव होने लगेगा। और जैसे साथ में प्रकाश साथ लिए चलने पर कुछ लोग तुम् हारे प्रति आकर्षित होंगे वैसे ही साथ में अंधकार लिए चलने पर कुछ लोग तुमसे विकर्षित होंगे, दूर भागेगे। वे तुमसे भयभीत और त्रस्त होंगे। वे ऐसा उपस्थिति को झेल नहीं पाएंगे। यह उनके लिए असह्य होगा।
अगर तुम अपने साथ अंधकार लिए चलोगे तो अंधकार से भयभीत लोग तुमसे बचने की कोशिश करेंगे, वे तुम्हारे पास नहीं आएँगे। और प्रत्येक आदमी अंधकार से डरा हुआ है। तब तुम्हें लगेगा कि मित्र मुझे छोड़ रहे है। जब तुम अपने घर आओगे तो तुम्हारा परिवार परेशान होगा। क्योंकि तुम तो शीतलता के पुंज की तरह प्रवेश करोगे। और लोग अशांत ओर क्षुब्ध है। उनके लिए तुम्हारी आंखों मे देखना कठिन होगा; तुम्हारी आंखें घाटी की तरह गहन खाई की तरह होंगी। अगर कोई व्यक्ति तुम्हारी आंखों मे झांकेगा तो वहां उसे ऐसी अतल खाई दिखेगी कि उसका सर चकराने लगेगा।
दिन भर अपने साथ अंधकार चलना तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी होगा। क् योंकि जब तुम रात में अंधकार पर ध्यान करोगे तो जो आंतरिक अंधकार तुम अपने साथ दिन भर लिए चले रहे थे वह तुम्हें बाहरी अंधकार से जुड़ने में सहयोग देगा। आंतरिक बाह्म से मिलने के लिए उभर आयेगा।
और सिर्फ इसके स्मरण से—कि मैं अंधकार लिए चल रहा हूं कि मैं अंधकार से भरा हूं कि मेरे शरीर की एक-एक कोशिका अंधकार से भरी है। तुम बहुत विश्राम अनुभव करोगे। इसे प्रयोग करो; तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत और विश्रामपूर्ण हो जाएगा। तब तुम दौड़ नहीं सकोगे। तुम बस चलोगे र वह चलना भी धीमे-धीमे होगा। तुम धीरे-धीरे चलोगे—जैसे की कोई गर्भवती स् त्री चलती है। तुम धीरे-धीरे चलोगे और बहुत सजगता से चलोगे। तुम अपने साथ कुछ लिए चल रहे हो।
और जब तुम अपने साथ ज्योति लेकर चलोगे तो उलटी बात घटित होगी। तब तुम्हारा चलना तेज हो जाएगा। बल्कि तुम दौड़ना चाहोगे। तुम्हारी गतिविधि बढ़ जायेगी। तुम ज्यादा सक्रिय होगे। अंधकार को साथ लिए हुए तुम विश्राम अनुभव करोगे और दूसरे लोग समझेंगे कि तुम आलसी हो गये हो।

जिन दिनों मैं विश्वविद्यालय में था, दो वर्षों तक मैंने इस विधि का प्रयोग किया। और मैं इतना आलसी हो गया कि सुबह बिस्तर से उठना भी मुश्किल था। मेरे प्राध्यापक इससे बहुत चिंतित थे और उन्हें लगाता था कि मेरे साथ कुछ गड़बड़ हो गई है। वे सोचते थे कि या तो मैं बीमार हूं या बिलकुल उदासीन हो गया हूं। एक प्राध्यापक तो, जो विभागीय अध्यक्ष थे और मुझे बहुत प्रेम करते थे इतने चिंतित थे कि परीक्षा के दिनों में वे खूद मुझे सुबह होस्टल से लेकर परीक्षा कक्ष पहुंचा आते थे। ताकि में वहां समय पर पहुंचूं। यह उनका रोज का काम था कि वे मुझे परीक्षा कक्ष में दाखिल करके चैन लेते थे और घर चले जाते थे।

तो इस प्रयोग में लाओ। अपने भीतर अंधकार लिए चलना, अंधकार ही हो जाना, जीवन के सुंदरतम अनुभवों मे एक है। चलते हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए, कुछ भी करते हुए स्मरण रखो कि मैं अंधकार हूं। कि मैं अंधकार से भरा हूं। और फिर देखो कि चीजें किस तरह बदलती है। तब तुम उत्तेजित नही हो सकते, बहुत सक्रिय नही हो सकते, तनावग्रस्त नही हो सकते। तब तुम्हारी नींद इतनी गहरी हो जाएगी कि सपने विदा हो जाएंगे। और पूरे दिन तुम मदहोश जैसे रहोगे।

सूफियों ने, उनके एक संप्रदाय ने इस विधि का प्रयोग किया है। और वे मस्त सूफियों के नाम से जाने जाते है। वे इसी अंधकार के नशे में चूर रहते थे। वे जमीन में गड़े खोदकर उसमें पड़े-पड़े ध्यान करते थे। अंधकार पर ध्यान करते है। और अंधकार के साथ एक हो जाते है। उनकी आंखें तुम्हें कहेगी कि वी पीए हुए है। नशे में है। तुम्हें उनकी आंखों में ऐसे प्रगाढ़ विश्राम का एहसास होगा जो तभी घटित होता है जब तुम गहरे नशे में होते हो। या जब तुम्हें नींद आती हे। तभी तुम्हारी आंखों में वैसी अभिव्यक्ति होती है। वे मस्त सूफियों के नाम से प्रसिद्ध है। और उनका नशा अंधकार का नशा है।

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-51

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—77 ([illegible])

[illegible]—[illegible] [illegible] [illegible]:

‘[illegible] [illegible]’

मैंने कहा कि अगर तुम आंखें बंद कर लोगे तो जो अंधकार मिलेगा वह झूठा अंधकार होगा। तो क्या किया जाए अगर चंद्रमाहीन रात, अंधेरी रात न हो। यदि चाँद हो और चाँदनी का प्रकाश हो तो क्या किया जाए? यह सूत्र उसकी कुंजी देता है।

‘जब चंद्रमाहीन वर्षा की रात उपलब्ध न हो तो आंखें बंद करो और अपने सामने अंधकार को देखो।’

आरंभ में यह अंधकार झूठा होगा। लेकिन तुम इसे सच्चा बना सकते हो, और यह इसे सच्चा बनाने का उपाय है।

‘फिर आंखें खोलकर अंधकार को देखो।’

पहले अपनी आंखें बंद करो और अंधकार को देखो। फिर आंखें खोलों और जिस अंधकार को तुमने भीतर देखा उसे बाहर देखो। अगर बाहर वह विलीन हो जाए तो उसका अर्थ है कि जो अंधकार तुम्हारे भीतर देखा था वह झूठा था।

यह कुछ ज्यादा कठिन है। पहली विधि में तुम असली अंधकार को भीतर लिए चलते हो। दूसरी विधि में तुम झूठे अंधकार का बाहर लाते हो। उसे बाहर

लाते रहो। आंखें बंद करो अंधेरे को महसूस करो। आंखे खोलों और खुली आंखों से अंधेरे को बाहर फेंको। इस भांति तुम भीतर के झूठे अंधकार को बाहर फेंकते हो। उसे बाहर फेंकते रहो।
इसमें कम से कम तीन से छह सप्ताह का समय लगेगा। और तब एक दिन तुम
अचानक भीतर के अंधकार को बाहर लाने में सफल हो जाओगे। और जि दिन तुम भीतर के अंधकार को बाहर ला सको,तुमने सच्चे आंतरिक अंधकार को पा लिया। सच्चे को ही बाहर लाया जा सकता है। झूठे को नहीं लाया जा सकता है।
यह एक बहुत अद्भुत अनुभव है। अगर तुम भीतरी अंधकार को बाहर ला
सकते हो तो तुम इसे प्रकाशित कमरे में भी बाहर ला सकते हो। और अंधकार का टुकड़ा तुम्हारे सामने फैल जाएगा। यह बहुत अद्भुत अनुभव है, क्योंकि कमरा प्रकाशित है। सूर्य के प्रकाश में भी यह संभव है; अगर तुम आंतरिक अंधकार को पा सके तो तुम उसे बाहर भी ला सकते हो। तुम उसे देख सकते हो। एक बार तुम जान गए कि ऐसा हो सकता है तो तुम भरी दोपहरी में भी
अंधेरी से अंधेरी से अंधेरी रात जैसा अंधकार फैला सकते हो। सूर्य मौजूद है और तुम अंधकार को फैल सकते हो।
तिब्बत में इसी तरह की अनेक विधियां है। वे चीजों को भीतरी जगत से बाहरी जगत में ला सकते है। तुमने एक प्रसिद्ध विधि के संबंध में सूना होगा। वे इसे ताप-योग कहते है। सर्द रात में, बर्फ जैसी सर्द रात में बर्फ गिर रही है। एक तिब्बती लामा उस सर्द राम में जब चारों और बर्फ गिर रही है। और तापमान शून्य से नीचे हो, खुले आकाश के नीचे बैठता है और उसके शरीर से पसीना बहने लगता है।
शरीर शास्त्र के हिसाब से ये चमत्कार है। पसीना कैसे निकलने लगता
है। वह भीतरी ताप को बाहर ला रहा है। वैसे ही आंतरिक शीतलता को भी बाहर लाया जा सकता है।
महावीर के जीवन में उल्लेख है; अब तक किसी ने भी उसको समझा नहीं
है। जैन सोचते है कि महावीर कोई तप कर रहे थे। अब तक किसी ने भी उसको समझा नहीं है। कहां जाता है कि जब गर्मी होती है, सूर्य तपता है। तो महावीर सदा ऐसी जगह खड़े होते थे जहां कोई छाया, कोई वृक्ष नहीं होता, कुछ भी नहीं होता। गर्मी के दिनों में वे जलती धूप में खड़े होते। और सर्दी के दिनों में वे कोई शीतल स्थान, वृक्ष की छाया या नदी का किनारा चुनते थे। जहां ताप शून्य से नीचे हो। सर्दी के समय में वे ध्यान करने के लिए सर्द स्थान चुनते थे और गर्मी के दिनों में गर्म स्थान चुनते थे। लोग सोचते थे वे पागल हो गये है। और उनके अनुयायी सोचते है कि वे तप कर रहे थे।
ऐसी बात नहीं है। असल में महावीर इसी तरह की किसी आंतरिक विधि का प्रयोग कर रहे थे। जब गर्मी पड़ती थी तो वे भीतरी शीतलता को बाहर लाने का प्रयोग कर रहे थे। और यह विपरीत स्थिति में ही अनुभव किया जा सकता है। जब सर्दी पड़ती थी तो भीतरी ताप को बाहर लाने का प्रयत्न करते थे। और यह भी प्रतिकूल पृष्ठभूमि में ही महसूस हो सकता है। वे शरीर के शत्रु नही थे, वे शरीर के विरोध में नहीं थे, जैसा जैन समझते है।
जैन समझते है कि महावीर शरीर को मिटाने में लगे थे। क्योंकि अगर
तुम अपने शरीर को मिटा सको तो तुम अपनी कामनाओं को भी मिटा सकते हो। यह निरी बकवास है। वे तप-वप नहीं कर रहे थे। वे बस आंतरिक को बाहर ला रहे थे। और वे आंतरिक द्वारा सुरक्षित थे। जैसे तिब्बती लामा गिरती बर्फ के नीचे ताप पैदा करके पसीना बहा सकते थे। वैसे ही महावीर जलती धूप में खड़े रहते और उन्हें पसीना नहीं आता था। वे अपनी आंतरिक शीतलता को बाहर ला रहे थे। वह आंतरिक शीतलता बाहर आकर उनके शरीर की रक्षा करती थी।

इस तरह तुम अपने आंतरिक अंधकार को बाहर ला सकते हो। और वह अनुभव
बहुत शीतल होता है। अगर तुम उसे ला सके तो तुम उससे सुरक्षित रहोगे। कोई उत्तेजना कोई मनोवेग तुम्हें विचलित नहीं कर सकेगा।
तो प्रयोग करो। ये तीन बातें है। एक अंधकार में खुली आंखों से
देखा और अंधकार को अपने भीतर प्रवेश करने दो। दूसरी अंधकार को अपने चारों और मां के गर्भ की तरह अनुभव करो, उसके साथ रहो ओर उसमें अपने को अधिकाधिक भूल जाओ। और तीसरी बात जहां भी जाओ अपने ह्रदय में अंधकार का एक टुकड़ा साथ लिए जाओ।
अगर तुम यह कर सके तो अंधकार प्रकाश बन जाएगा। तुम अंधकार के
द्वारा बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे।
‘जब चंद्रमाहीन वर्षा की रता उपल्बध न हो तो आंखें बंद करो, और
अपने सामने अंधकार को देखो, फिर आंखें खोल कर अंधकार को देखो।’
यह विधि है। पहले इसे भीतर अनुभव करो, गहन अनुभव करो, ताकि तुम उसे बाहर देख सको। फिर आंखों को अचानक खोल दो और बाहर अनुभव करो। इसमे थोड़ा समय जरूर लगेगा।
‘इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते है।’
अगर तुम आंतरिक अंधकार को बाहर ला सके तो दोष सदा के लिए विलीन हो
जाते है। क्योंकि आंतरिक अंधकार अनुभव में आ जाए तो तुम इतने शीतल, इतने शांत इतने अनुद्विग्न हो जाओगे। कि दोष तुम्हारे साथ नहीं रह सकेगा। स्मरण रहे। दोष तभी तक रहते है जब तक तुम उत्तेजित होने की हालत
में रहे हो। दोष अपने आप नहीं रहते; वे तुम्हारी उत्तेजना की क्षमता में ही रहते है। कोई व्यक्ति तुम्हारा अपमान करता है और तुम्हारे भीतर उस अपमान को पीने के लिए अंधकार नहीं है, तुम जल भूल जाते हो। क्रोधित हो जाते हो। और तब कुछ भी संभव है। तुम हिंसक हो सकते हो। तुम हत्या कर सकते हो। तुम वह सब कर सकते हो जो सिर्फ पागल आदमी कर सकता है। कुछ भी संभव है; अब तुम विक्षिप्त हो। फिर कोई व्यक्ति तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम दूसरे छोर पर विक्षिप्त हो। तुम्हारे चारों और स्थितियाँ है और तुम उन् हें चुपचाप आत्मसात करने में समर्थ नहीं हो।
किसी बुद्ध का अपमान करो। वे आत्मसात कर लेंगे। वे उसे पचा
जाएंगे। कौन अपमान को पचा जात है? अंधकार का, शांति का आंतरिक पुंज उसे पचा लेता है। तुम कुछ भी विषाक्त फेंको, वह आत्मसात हो जाता है। उससे कोई प्रति क्रिया नही लौटती हे।
इसे प्रयोग करो। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो इतना ही स्मरण रखो।
कि में अंधकार से भरा हूं। और सहसा तुम्हें प्रतीत होगा कि कोई प्रतिक्रिया नहीं उठती है। तुम रास्ते से गुजर रहे हो और एक सुंदर स् त्री या पुरूष दिखाई देता है और तुम उत्तेजित हो उठते हो। ख्याल करो कि मैं अंधकार से भरा हुआ हुं। और कामवासना विदा हो जाएगी। प्रयोग करके देखो। वह बिलकुल प्रायोगिक विधि है। इसमें विश्वास करने की जरूरत नहीं है।
जब भी तुम्हें मालूम पड़े कि मैं वासना से, या कामना से, या
कामवासना से भरा हुआ हूं तो आंतरिक अंधकार को स्मरण करो। एक क्षण के लिए आंखें बंद करो। अंधकार की भावना करो और तुम देखोगें कि वासना विलीन हो गई है। कामना विदा हो गई है। आंतरिक अंधकार ने उसे पचा लिया। तुम एक असीम शून्य हो गए हो। जिसमें कोई भी चीज गिर कर फिर वापस लौट सकती है। तुम अब एक अतल खाई है।
इसलिए शिव कहते है: ‘इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो जाते है।’
ये विधियां आसान मालूम पड़ती है। वे आसान है। लेकिन क्योंकि वे
सरल दिखती है, इसलिए उन्हें प्रयोग किए बगैर मत छोड़ दो। वे तुम्हारे अहंकार को चुनौती न भी दें तो भी प्रयोग करो। यह हमेशा होता है कि हम सरल

चीजों को प्रयोग नहीं करते है। हम सोचते है कि वे इतनी सरल है कि सच नहीं हो सकती है। और सत्य सदा सरल होता है। वह कभी जटिल नहीं होता। उसे जटिल होने की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ झूठ जटिल होता है। वह सरल नहीं हो सकता। अगर वह सरल हो तो उसका झूठ जाहिर हो जायेगा। और क्योंकि कोई चीज सरल मालूम पड़ती है। हम सोचते है कि इससे कुछ नहीं होगा। ऐसा नहीं है कि उससे कुछ नहीं होता है। लेकिन हमारा अहंकार तभी चुनौती पाता है जब कोई चीज बहुत कठिन हो।
तुम्हारे ही कारण अनेक संप्रदायों ने अपनी विधियों को जटिल बना
दिया है। उसकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वे उसमे अनावश्यक जटिलता और अवरोध निर्मित करते है। ताकि वे कठिन हो सकें। ताकि वे तुम्हें भाएं। उनसे तुम्हारे अहंकार को चुनौती मिले। अगर कोई चीज बहुत कठिन हो, जिसे बहुत थोड़े लोग करने में समर्थ हों, तो तुम्हें लगता है कि यह करने जैसा है। यह तुम्हें सिर्फ इसलिए करने जैसा लगता है। क्यों कि बहुत थोड़े लोग ही इसे कर सकते है।
ये विधियां एक दम सरल है। शिव तुम्हारा विचार नहीं करते है; वे
विधि का वर्णन ठीक वैसा कर रहे है जैसा वह है। वे उसे सरलतम रूप में, कम से कम शब्दों में सूत्र के रूप में प्रकट कर रहे है। तो अपने अहंकार के लिए चुनौती मत खोजों। ये विधियां तुम्हें अहंकार की यात्रा पर ले जाने के लिए नहीं है। वे तुम्हारे अहंकार को कोई चुनौती नहीं देती। लेकिन यदि तुम इनका प्रयोग करोगे तो वे तुम्हें रूपांतरित कर देंगी। और चुनौती कोई अच्छी बात नहीं है। क्योंकि चुनौती से तुम ज्वर-ग्रस्त हो जाते हो। विक्षिप्त हो जाते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-51

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—78 (ओशो)
अंधकार संबंधि तीसरी विधि:
‘’जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर अनुभव।‘’ क्या? क्या अनुभव? इस विधि में सबसे पहले तुम्हें अवधान साधना होगा, अवधान का विकास करना होगा। तुम्हें इस भांति का अवधान पूर्ण रूख, रुझान विकसित करना होगा; तो ही यह विधि संभव होगी। और तब जहां भी तुम् हारा अवधान उतरे, तुम अनुभव कर सकते हो—स्वयं को अनुभव कर सकते हो। एक फूल को देखने भर से तुम स्वयं को अनुभव कर सकते हो। तब फूल को देखना सिर्फ फूल को ही देखना नहीं है। वरन देखने वाले को भी देखना है। लेकिन यह तभी संभव है जब तुम अवधान का रहस्य जान लो।
तुम भी फूल को देखते हो और तुम सोच सकते हो कि मैं फूल को देख रहा हूं। लेकिन तुमने तो फूल के बारे में विचार करना शुरू कर दिया और तुम फूल को चूक गये। तुम वहां नहीं हो जहां फूल है। तुम कहीं और चले गए, तुम दूर हट गए। अवधान का अर्थ है कि जब तुम फूल को देखते हो तो तुम फूल को ही देखते हो। कोई दूसरा काम नहीं करते हो—मानों मत ठहर गया है। अब कोई विचारणा नहीं हे। फूल का सीधा अनुभव भर है। तुम यहां हो और फूल वहां है। और कोई विचारण नहीं, दोनों के बीच कोई विचार नहीं।
यदि यह संभव हो तो अचानक तुम्हारा अवधान फूल से लौटकर स्वयं पर आ जाएगा। एक वर्तुल बन जाएगा। तुम फूल को देखोगें और वह दृष्टि वापस लौटेंगी; फूल उसे वापस कर देगा, द्रष्टा पर ही लौटा देगा। अगर विचार

नहीं तो यह घटित होता हे। तब तुम फूल को ही नहीं देखते, तुम देखने वाले को देखते हो। तब देखने वाला और फूल दो आब्जेक्ट्स हो जाते है। तुम दोनों के साक्षी हो जाते हो।
लेकिन पहले अवधान को प्रशिक्षित करना होगा। तुममें अवधान बिलकुल नहीं है। तुम्हारा अवधान सतत बदलता रहता है—यहां से वहां से कही और। तुम एक क्षण के लिए भी अवधान पूर्ण नहीं रहते हो। जब मैं यहां बोल रहा हूं तो तुम मेरी बात भी कभी नहीं सुनते। तुम एक शब्द सुनते हो और फिर तुम्हारा अवधान और कहीं चला जाता है। फिर तुम्हारा अवधान वापस मेरी बात पर आता है। फिर तुम एक शब्द सुनते हो, फिर तुम्हारा ध्यान कही और चला जाता है।
तुम थोड़े से शब्द सुनते हो और बाकी के खाली स्थानों पर अपने शब्द
डाल लेते हो। और सोचते हो कि तुमने मुझे सुना। और तुम जो भी यहां से ले जाते हो वह तुम्हारी अपनी रचना है, तुम्हारा अपना धंधा है। तुमने मेरे थोड़े से शब्द सुने और खाली जगह पर अपने शब्द भर दिये। और तुम जितनी खाली जगह को भरते हो, वह पूरी चीज को बदल देती है।
मैं एक शब्द बोलता हूं और तुमने उसके संबंध में झट सोचना शुरू कर दिया; तुम मौन नहीं रह सकते। यदि तुम सुनते हुए मौन रह सको तो तुम अवधान पूर्ण हो। अवधान का अर्थ है वह मौन सजगता। वह शांत बोध। जिसमें विचारों का कोई व्यवधान न हो, बाधा न हो।
तो अवधान का विकास करो। और उसे करके ही तुम उसका विकास कर सकते हो; इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। अवधान दो, उसे बढ़ाते जाओ,प्रयोग से वह विकसित होगा। कुछ भी करते हुए। कहीं भी तुम अवधान को विकसित कर सकते हो। तुम कार में या रेलगाडी में यात्रा कर रहे हो। वही अवधान को बढ़ाने का प्रयोग करो। समय मत गंवाओ। तुम आधा घंटा कार या रेलगाड़ी में रहने वाले हो; वही अवधान साधो। बस वहां होओ। विचार मत करो। किसी व्यक्ति को देखो, रेलगाड़ी को देखो या बाहर देखो,पर द्रष्टा रहो। विचार मत करो। वहां होओ और देखो। तुम्हारी दृष्टि सीधी, प्रत्यक्ष और गहरी हो जाएगी। और तब सब तरफ से तुम्हारी दृष्टि वापस लौटने लगेगी। और तुम द्रष्टा के प्रति बोध से भर जाओगे।
तुम्हें अपना बोध नहीं है। तुम अपने प्रति सावचेत नहीं हो। क् योंकि विचारों की एक दीवार है। जब तुम एक फूल को देखते हो तो पहले तुम् हारे विचार तुम्हारी दृष्टि को बदल देते है; वह उसे अपना रंग दे देते है। और वह दृष्टि वापस आती है। वह तुम्हें कभी वहां नहीं पाती; तुम कहीं और चले गए होते हो। तुम वहां नहीं होते हो।
प्रत्येक दृष्टि वापस लौटती है। प्रत्येक चीज प्रतिबिंबित होती
है। प्रतिसंवेदित होती है। लेकिन तुम उसे ग्रहण करने के लिए वहां मौजूद नहीं होते। तो उसके ग्रहण के लिए मौजूद रहो। पूरे दिन तुम अनेक चीजों पर यह प्रयोग कर सकते हो। और धीरे-धीरे तुम्हारा अवधान विकसित होगा। तब इस अवधान के साथ एक प्रयोग करो।
‘जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर, अनुभव।’
तब कहीं भी देखा, लेकिन देखो। अब अवधान वहां है। अब तुम स्वयं को अनुभव करोगे। लेकिन पहली शर्त है अवधान पूर्ण होने की क्षमता को प्राप् त करना। और तुम इसका अभ्यास कही भी कर सकते हो। उसके लिए अतिरिक्त समय की जरूरत नहीं है। तुम जो भी कर रहो हो, भोजन कर रहे हो, या स्नान कर रहे हो, बस अवधान पूर्ण होओ।
लेकिन समस्या क्या है? समस्या यह है कि हम सब काम मन के द्वारा करते है। और हम निरंतर भविष्य के लिए योजनाएं बनाते है। तुम रेलगाड़ी में सफर कर रहे हो और तुम्हारा मन किन्हीं दूसरी यात्राओं के आयोजन में व्यस्त है। उनके कार्यक्रम बनाने में संलग्न है। इसे बंद करो।

झेन संत बोकोजू ने कहा है: ‘मैं यही एक ध्यान जानता हूं। जब में भोजन करता हूं तो भोजन करता हूं। जब मैं चलता हूं तो चलता हूं। और जब मुझे नींद आती है तो मैं सो जाता हूं। जो भी होता है; होता है, उसमें मैं कभी हस्तक्षेप नहीं करता।’
इतना ही करने को है कि हस्तक्षेप मत करो। और जो भी घटित होता हो
उसे घटित होने दो। तुम सिर्फ वहां मौजूद रहो। यही चीज तुम्हें अवधान पूर्ण बनाएगी। और जब तुम्हें अवधान प्राप्त हो जाए तो यह विधि तुम्हारे हाथ में है।
‘जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर, अनुभव।’
तुम अनुभव करने वाले को अनुभव करोगे। तुम स्वयं पर लौट आओगे। सब
जगह से तुम प्रतिबिंबित होगे। सब जगह से तुम प्रतिध्वनित होगे। सारा अस्तित्व दर्पण बन जाएगा। तुम सब जगह प्रति बिंबित होगे। पूरा अस्तित् व तुम्हें प्रतिबिंबित करेगा।
और केवल तभी तुम स्वयं को जान सकते हो। उसके पहले नहीं । जब तक समस्त अस्तित्व ही तुम्हारे लिए दर्पण न बन जाए। जब तक अस्तित्व का कण-कण तुम्हें प्रकट न करे; जब तक प्रत्येक संबंध तुम्हें विस्तृत न करे...। तुम इतने असीम हो कि छोटे दर्पणों से नहीं चलेगा। तुम अंतस से इतने विराट हो कि जब तक सारा आस्तित्व दर्पण न बने, तुम्हें झलक नहीं मिल पाएगी। जब समस्त अस्तित्व दर्पण बन जाता है, केवल तभी तुम प्रतिबिंबित हो सकते हो। तुम्हारे भीतर भगवता विराजमान है।
और अस्तित्व को दर्पण बनाने की विधि है: अवधान पैदा करो, ज्यादा सावचेत बनो, और जहां कहीं तुम्हारा अवधान उतरे—जहां भी, जिस किसी विषय पर भी तुम्हारा ध्यान जाए—अचानक स्वयं को अनुभव करो।
यह संभव है। लेकिन अभी तो यह असंभव है। क्योंकि तुमने बुनियादी शर्त नहीं पूरी की है। तुम एक फूल को देख सकते हो। लेकिन वह अवधान नहीं है। अभी तो तुम फूल के चारों और बाहर-भीतर धूम रहे हो। तुमने भागते- भागते फूल को देखा है; तुम उसके साथ क्षण भर के लिए नहीं रहे हो। रुको, अवधान पैदा करो, सावचेत बनो, और समस्त जीवन ध्यान पूर्ण हो जाता है। ‘जहां कहीं भी तुम्हारा अवधान उतरे, उसी बिंदु पर, अनुभव।’
बस स्वयं को स्मरण करो।
इस विधि के सहयोगी होने का एक गहरा कारण है। तुम एक गेंद को दीवार
पर मारो; गेंद वापस लौट आयेगी। जब तुम किसी फूल या किसी चेहरे को देखते हो तो तुम्हारी कुछ उर्जा उस दशा में गति कर रही है। तुम्हारा देखना ही उर्जा है। तुम्हें पता नहीं है कि जब तुम देखते हो तो तुम उर्जा दे रह हो। थोड़ी ऊर्जा फेंक रहे हो। तुम्हारी ऊर्जा का, तुम्हारी जीवन ऊर्जा का एक अंश फेंका जा रहा है। यही कारण है कि दिन भर रास्ते पर देखते-देखते तुम थक जाते हो। चलते हुए लोग, विज्ञापन, भीड़ दुकानें—इन्हें देखते देखते। तुम थकान अनुभव करते हो। और आराम करने के लिए आंखें बंद कर लेना चाहते हो। क्या हुआ? तुम इतने थके माँदे क्यों हो? तुम ऊर्जा फेंकते रहे हो।
बुद्ध और महावीर दोनों इस पर जोर देते थे। कि उनके शिष्य चलते हुए
दूर तक न देखें। जमीन पर दृष्टि रखकर चलें। बुद्ध कहते थे कि तुम सिर्फ चार फीट आगे तक देख सकते हो। इधर-उधर कहीं मत देखो। सिर्फ अपनी राह को देखो जि पर चल रहे हो। चार फीट आगे सरक जाएगी। उससे ज्यादा दूर मत देखो। क्योंकि तुम्हें अकारण अपनी ऊर्जा का अपव्यय नहीं करना है।
जब तुम देखते हो तो तुम थोड़ी ऊर्जा बाहर फेंकते हो। रुको, मौन प्रतीक्षा करो,उस ऊर्जा को वापस आने दो। और तुम चकित हो जाओगे। अगर तुम ऊर्जा को वापस आने देते हो तो तुम कभी नहीं थकोंगे। इसे प्रयोग करो। कल सुबह इस विधि का प्रयोग करो। शांत हो जाओ। किसी चीज को देखो। शांति रहो।

उसके बारे में विचार मत करो। और एक क्षण धैर्य से प्रतीक्षा करो। ऊर्जा वापस आएगी। असल में तुम और भी प्राणवान हो जाओगे।

लोग निरंतर मुझसे पूछते है; मैं सतत पढ़ता रहता हूं। इसलिए वे पूछते है; आपकी आंखें अभी भी ठीक कैसे है? आप जितना पढ़ते है, आपको कत का चश्मा लग जाना चाहिए था। तुम पढ़ सकते हो लेकिन अगर तुम निर्विचार मौन होकर पढ़ो तो ऊर्जा वापस आ जाती है। वह व्यर्थ नहीं होती है। और तुम कभी थकान अनुभव नहीं करोगे। मैं जिंदगी भर रोज बारह घंटे पढ़ता रहा हूं। कभी-कभी अठारह घंटे भी; लेकिन मैंने थकावट कभी महसूस नही की। मैंने अपनी आंखों में कभी कोई अड़चन, कभी कोई थकान नहीं अनुभव की।

निर्विचार अवस्था में उर्जा लौट आती है। कोई बाधा नहीं पड़ती है। और अगर तुम वहां मौजूद हो तो तुम उसे पुन: आत्मसात कर लेते हो। और वह पून: आत्मसात करना तुम्हें पुनरुज्जीवित कर देता है। सच तो यह है कि तुम्हारी आंखें थकने के बजाय ज्यादा शिथिल, ज्यादा प्राणवान, ज्यादा ऊर्जावान हो जाती है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग -चार

प्रवचन **-51**

विज्ञान भैरव तंत्र विधि **—79 (**ओशो**)**

अग्नि संबंधि पहली विधि **:**

‘भाव करो कि एक आग तुम्हारे पाँव के अंगूठे से शुरू होकर पूरे शरीर में ऊपर उठ रही है, और अंतत**:** शरीर जलकर राख हो जाता है, लेकिन तुम नहीं।’

यह बहुत सरल विधि है और बहुत अद्भुत है, प्रयोग करने में भी सरल है। लेकिन पहले कुछ बुनियादी जरूरतें पूरी करनी होती है।

बुद्ध को यह विधि बहुत प्रीतिकर थी और वे अपने शिष्यों को इस विधि में दीक्षित करते थे। जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध से दीक्षित होता था तो वे उससे पहली बात यही कहते थे; कि मरघट चले जाओ और वहां किसी जलती चिता को देखो, जलते हुए मरघट में बैठकर देखना था।

तो साधक गांव के मरघट में चला जाता था और तीन महीने तक दिन-रात वही रहता था। और जब भी कोई मुर्दा आता, वह बैठकर उस पर ध्यान करता था। वह पहले शव को देखता; फिर आग जलाई जाती और शरीर जलने लगता और वह देखता रहता। तीन महीने तक वह इसके सिवाय कुछ और नहीं करता। वह मुर्दों को जलते देखता रहता।

बुद्ध कहते थे, ‘उसके संबंध में विचार मत करना, उसे बस देखना।’

और यह कठिन है कि साधक के मन में यह विचार न उठे कि देर-अबेर मेरा शरीर भी जला दिया जायेगा। तीन महीने लंबा समय है। और साधक को रात दिन निरंतर जब भी कोई चिता जलती, उस पर ध्यान करना था। देर अबेर उसे दिखाई देने लगता कि चिता पर मेरा शरीर ही जल रहा है। चिता पर मैं ही जलाया जा रहा हूं।

लोग अपने सगे-संबंधियों को जलाने ले जाते है। लेकिन वे कभी उस घटना को देखते नहीं। वे दूसरी चीजों के संबंध में या मृत्यु के संबंध में ही बातचीत करने लगते है। वे विवाद करते है। विवेचन करते है, वे बहुत कुछ करते है, गपशप करते है, लेकिन वे कभी दाह-संस्कार क्रिया का निरीक्षण नहीं करते है। इसे तो ध्यान बना लेना चाहिए। वहां बातचीत की इजाजत नहीं होनी चाहिए। अपने किसी प्रिय को जलते हुए देखना दुर्लभ अनुभव है। वहां तुम्हें यह भाव अवश्य उठेगा कि मैं जल रहा हूं। अगर तुम

अपनी मां को जलते हुए देख रहे हो, या पिता को, या पत्नी को, या पति को, तो यह असंभव है कि तुम अपने को भी उस चिता में जलते हुए न देखो।
यह अनुभव इस विधि के लिए सहयोगी होगा—यह पहली बात।
दूसरी बात कि अगर तुम मृत्यु से बहुत भयभीत हो तो तुम इस विधि का प्रयोग नहीं कर सकोगे। क्योंकि यह भय ही अवरोध बन जाएगा। तुम उसमें प्रवेश न कर सकोगे। या तुम ऊपर-ऊपर कल्पना करते रहोगे। मगर तुम अपने गहन प्राणों से उसमें प्रवेश नहीं करोगे।
तब तुम्हें कुछ भी नहीं होगा। तो यह दूसरी बात स्मरण रहे कि तुम चाहे भयभीत हो या नहीं हो, मृत्यु निश्चित है। केवल मृत्यु निश्चित है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कि तुम भयभीत हो या नहीं; यह अप्रासंगिक है। जीवन में मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी निश्चित नहीं है। सब कुछ अनिश्चित है। केवल मृत्यु निश्चित है। सब कुछ सांयोगिक है—हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। लेकिन मृत्यु सांयोगिक नहीं है।
लेकिन मनुष्य के मन को देखा। हम सदा मृत्यु की चर्चा इस भांति करते है मानों वह दुर्धटना हो। जब भी किसी की मृत्यु होती है, हम कहते है कि वह असमय मर गया। जब भी कोई मरता है तो हम इस तरह की बातें करने लगते है। मानों यह कोई अनहोनी घटना है। सिर्फ मृत्यु अनहोनी नहीं है। सिर्फ मृत्यु सुनिश्चित है। बाकी सब कुछ सांयोगिक है। मृत्यु बिलकुल निश्चित है। तुम्हें मरना है।
और जब मैं कहता हूं कि तुम्हें मरना है तो ऐसा लगता है कि यह मरना कहीं भविष्य में है, बहुत दूर है। ऐसी बात नहीं है। तुम मर ही चुके हो। जिस क्षण तुम पैदा हुए, तुम मर चुके। जन्म के साथ ही मृत्यु निश्चित है। उसका एक छोर, जन्म का छोर घटित हो चुका है। अब दूसरे छोर को, मृत्यु के छोर को घटित होना है। इसलिए तुम मर चुके हो, आधे मर चुके हो। क्योंकि जन् म लेने के साथ ही तुम मृत्यु के घेरे में आ गए, दाखिल हो गए। अब कुछ भी उसे नहीं बदल सकता है। अब उसे बदलने का उपाय नहीं है।
और दूसरी बात कि मृत्यु अंत में नहीं घटेगी, वह घट ही रही है। मृत्
यु एक प्रक्रिया है। जैसे जीवन प्रक्रिया है, वैसे ही मृत्यु भी प्रक्रिया है। द्वैत हम निर्मित करते है। लेकिन जीवन ओर मृत्यु ठीक तुम्हारे दो पाँवों की तरह है। जीवन और मृत्यु दोनों एक प्रक्रिया है। तुम प्रतिक्षण मर रहे हो।
मुझे यह बात इस तरह से कहने दो: जब तुम श्वास भीतर ले जाते हो तो वह जीवन है; और जब तुम श्वास बाहर निकालते हो तो वह मृत्यु है। बच्चा जन्म लेने पर पहला काम करता है कि वह श्वास भीतर ले जाता है। बच्चा पहले श् वास छोड़ नही सकता है। उसका पहला काम श्वास लेना है। वह श्वास छोड़ नही सकता। क्योंकि उसके सीने में हवा नहीं है। और मरता हुआ बूढ़ा आदमी अंतिम कृत्य करता है कि वह श्वास छोड़ता है। मरते हुए तुम श्वास ले नहीं सकते। या कि ले सकते हो। जब तुम मर रहे हो तो तुम श्वास छोड़ना ही होगा। पहला काम श्वास लेना है और अंतिम काम श्वास छोड़ना है। श्वास लेना जीवन और श्वास छोड़ना मृत्यु है। प्रत्येक क्षण तुम यही काम कर रहे हो। तुमने शायद यह निरीक्षण न किया हो, लेकिन यह निरीक्षण करने जैसा
है। जब भी तुम श्वास छोड़ते हो, तुम शांत अनुभव करते हो। लंबी श्वास बाहर फेंको और तुम्हें अपने भीतर एक शांति का अनुभव होगा। और जब भी तुम श्वास भीतर लेते हो तुम बेचैन हो जाते हो। तनावग्रस्त हो जाते हो। भीतर जाती श्वास की तीव्रता ही तनाव पैदा करती है।
और सामान्यत: हम सदा श्वास लने पर जोर देते है। अगर मैं कहूं कि गहरी श्वास लो तो तुम सदा श्वास लने से शुरू करोगे। सच तो यह है कि हम श् वास छोड़ने से डरते है। यही कारण है कि हमारी श्वास इतनी उथली हो गई है। तुम कभी श्वास छोड़ते नहीं, तुम श्वास लेते हो। सिर्फ तुम्हारा शरीर श्

वास छोड़ने का काम करता है। क्योंकि शरीर सिर्फ श्वास लेकिन ही जीवित नही रह सकता।
एक प्रयोग करो। पूरे दिन जब भी तुम्हें स्मरण रहे। श्वास छोड़ने
पर ध्यान दो। श्वास बाहर फेंको। और तुम श्वास भीतर मत लो। श्वास लेने का काम शरीर पर छोड़ दो; तुम केवल श्वास छोड़ते जाओ। लंबी और गहरी श्वास और तब तुम्हें एक गहन शांति का अनुभव होगा; क्योंकि मृत्यु मौन है, मृत्यु शांति है।
और अगर तुम श्वास छोड़ने पर ध्यान दे सके, ज्यादा से ज्यादा ध्यान
दे सके, तो तुम अहंकार रहित अनुभव करोगे। श्वास लेने से तुम ज्यादा अहंकारी अनुभव करोगे। और श्वास छोड़ने से ज्यादा अहंकार रहित। तो श् वास छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो। पूरे दिन जब भी याद आए, गहरी श्वास बाहर फेंको लो मत, श्वास लेने का काम शरीर को करने दो; तुम कुछ मत करो।
श्वास छोड़ने पर यह जोर तुम्हें इस विधि के प्रयोग में बहुत सहयोगी होगा; क्योंकि तुम मरने के लिए तैयार होगे। मरने की तैयारी जरूरी हे। अन्यथा यह विधि बहुत काम की नहीं होगी। और तुम मृत्यु के लिए तैयार तभी हो सकते हो जब तुमने किसी ने किसी तरह से एक बार उसका स्वाद लिया हो। गहरी श्वास छोड़ो और तुम्हें उसका स्वाद मिल जायेगा।
हम मृत्यु से भयभीत है, इसका कारण मृत्यु नहीं है। मृत्यु को तो हम जानते ही नहीं है। तुम उस चीज से कैसे भयभीत हो सकते हो जिसका तुम्हें कभी सामना ही नहीं हुआ। तुम उस चीज से कैसे भयभीत हो सकते हो जिसे तुम जानते ही नहीं। किसी चीज से भयभीत होने के लिए उसे जानना जरूरी है।
तो असल में तुम मृत्यु से भयभीत नहीं हो, यह भय कुछ और है। तुम वस् तुत: कभी जीए ही नहीं; और इससे ही मृत्यु का भय पैदा होता है। मृत्यु का भय पकड़ता है। क्योंकि तुम जी नहीं रहे हो। और तुम्हारा भय यह है: ‘अब तक मैं जीया ही नहीं,और मृत्यु आ गई तो क्या होगा? मैं तो अतृप्त अन जीया ही मर जाऊँगा।’ मृत्यु का भय उन्हें ही पकड़ता है जो वस्तुत: जीवित नहीं है।
यदि तुमने जीवन को जीया है, जीवन को जाना है, तो तुम मृत्यु का स् वागत करोगे। तब कोई भय नहीं है। तुमने जीवन को जान लिया; अब तुम मृत्यु को भी जानना चाहोगे। लेकिन हम जीवन से ही इतने डरे हुए है कि हम उसे नहीं जान पाए है; हम उसमें गहरे नहीं उतरे है। वही चीज मृत्यु का भय पैदा करती है।
अगर तुम इस विधि में प्रवेश करना चाहते हो तो तुम्हें मृत्यु के प्रति इस सघन भय के प्रति जागना होगा, बोधपूर्ण होना होगा। और इस सघन भय को विसर्जित करना होगा। तो ही तुम इस विधि में प्रवेश कर सकते हो।
इससे मदद मिलेगी; श्वास छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो। सारा ध्यान श्
वास छोड़ने पर दो, श्वास लेना भूल जाओ। और डरो मत कि मर जाओगे। तुम नहीं मरोगे। श्वास लेने का काम खुद शरीर कर लेगा। शरीर का अपना विवेक है। अगर तुम गहरी श्वास बाहर फेंकोगे तो शरीर खुद गहरी श्वास भीतर लेगा। तुम् हें हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं है। और तुम्हारी समस्त चेतना पर एक गहरी शांति फैल जाएगी। सारा दिन विश्राम अनुभव करोगे। और एक आंतरिक मौन घटित होगा।
अगर तुम एक और प्रयोग करो तो विश्रांति और मौन का यह भाव और भी प्रगाढ़ हो सकता है। दिन में सिर्फ पंद्रह मिनट के लिए गहरी श्वास बाहर छोड़ो। कुर्सी पर या जमीन पर बैठ जाओ फिर गहरी श्वास छोड़ो और शरीर को श्वास लेने दो। और जब श्वास भीतर जाये, आंखें खोल लो और तुम बाहर चले जाओ। ठीक उलटा करो: जब श्वास बाहर आये तुम भीतर चले जाओ। और जब श्वास भीतर आये तो तुम बाहर चले आओ।

जब तुम श्वास छोड़ते हो तो भीतर खाली स्थान, अवकाश निर्मित होता
है। क्योंकि श्वास जीवन है। जब तुम गहरी श्वास छोड़ते हो तो तुम खाली हो जाते हो। जीवन बाहर निकल गया। एक ढंग से तुम मन गए। क्षण भर के लिए मर गए। मृत्यु के उस मौन में अपने भीतर प्रवेश करो। श्वास बाहर जा रही है। आंखें बंद करो और भीतर सरक जाओ। वहां अवकाश है; तुम आसानी से सरक सकते हो। स्मरण रहे, जब तुम श्वास ले रहे हो तो तब भीतर जाना बहुत कठिन है। वहां जाने के लिए जगह कहां। तुम श्वास छोड़ते हुए ही तुम भीतर जा सकते हो। और जब श्वास भीतर हो तो तुम बाहर चले जाओ। आंखें खोलों और बहार निकल जाओ। इन दोनों के बीच एक लयवद्यिता निर्मित करो लो।
पंद्रह मिनट के इस प्रयोग से तुम गहन विश्राम में उतर जाओगे। और
तब तुम इस विधि के प्रयोग के लिए अपने को तैयार पाओगे। इस विधि में उतरने के लिए पहले पंद्रह मिनट के लिए यह प्रयोग जरूर करे। ताकि तुम तैयार हो सको—तैयार ही नहीं उसके प्रति स्वागत पूर्ण हो सको। खुले हो सको। मृत्यु का भय खो जाये। क्योंकि अब मृत्यु प्रगाढ़ विश्राम मालूम पड़ेगी। अब मृत्यु जीवन के विरूद्ध नहीं,वरन जीवन का स्त्रोत जीवन की ऊर्जा मालूम पड़ेगा। जीवन तो झील की सतह पर लहरों की भांति है और मृत्यु स्वयं झील है। और जब लहरें नहीं है तब भी झील है। और झील तो लहरों के बिना हो सकती है, लेकिन लहरें झील के बिना नहीं हो सकती। जीवन मृत्यु के बिना नहीं हो सकता। लेकिन मृत्यु जीवन के बिना हो सकती है। क्योंकि मृत्यु स्त्रोत है। और तब तुम इस विधि का प्रयोग कर सकते हो।
‘प्रयोग करो कि एक आग तुम्हारे पाँव के अंगूठे से शुरू होकर पूरे शरीर में ऊपर उठ रही है......।’
बस लेट जाओ। पहले भाव करो कि तुम मर गए हो। शरीर एक शव मात्र है। लेटे रहो और अपने ध्यान को पैर के अंगूठे पर ले जाओ। आंखें बंद करके भीतर गति करो। अपने ध्यान को अँगूठों पर ले जाओं और भाव करो कि वहां से आग ऊपर बढ़ रही है। और सब कुछ जल रहा है......जैसे-जैसे आग बढ़ती है वैसे- वैसे तुम्हारा शरीर विलीन हो रहा है। अंगूठे से शुरू करो और ऊपर बढ़ो। अंगूठे से क्यों शुरू करो। यह आसान होगा। क्योंकि अंगूठा तुम् हारे ‘मैं’ से, तुम्हारे अहंकार से बहुत दूर है। तुम्हारा अहंकार सिर में केंद्रित है; वहां से शुरू करना कठिन होगा। तो बिंदु से शुरू करो; भाव करो कि अंगूठे जल रहे है। और वहां अब राख ही बची है।
और फिर धीरे-धीरे ऊपर बढ़ो और जो भी आग की राह में पड़े उसे जलाते जाओ। सारे अंग—पैर,जांघ—विलीन हो जाएंगे। और देखते जाओ कि अंग-अंग राख हो रहे है; जिन अंगों से होकर आग गुजरी है वे अब नहीं है। वे राख हो गए है। ऊपर बढ़ते जाओ; और अंत में सिर भी विलीन हो जाता है। प्रत्येक चीज राख हो गई है; धूल-धूल में मिल रही है। और तुम देख रहे हो।
‘और अंतत: शरीर जलकर राख हो जाता है। लेकिन तुम नहीं।’
तुम शिखर पर खड़े द्रष्टा रह जाओगे, साक्षी रह जाओगे। शरीर वहां
पडा होगा, मृत जला हुआ, राख—और तुम द्रष्टा होगे, साक्षी होगे। इस साक्षी का कोई अहंकार नहीं है।
यह विधि निरहंकार अवस्था की उपलब्धि के लिए बहुत उपयोगी है। क्
यो? क्योंकि इसमें बहुत सी बातें घटती है। यह विधि सरल मालूम पड़ती है। लेकिन यह उतनी सरल है नहीं। इसकी आंतरिक संरचना बहुत जटिल है।
पहली बात यह है कि तुम्हारी स्मृतियां शरीर का हिस्सा है। स्मृति पदार्थ है; यही कारण है कि उसे संग्रहीत किया जा सकता है। स्मृति मस् तिष्क के कोष्ठों में संग्रहीत है। स्मृतियां भौतिक है, शरीर का हिस्सा है। तुम्हारे मस्तिष्क का आपरेशन करके अगर कुछ कोशिकाओं को निकाल दिया जाए तो उनके साथ कुछ स्मृतियां भी विदा हो जायेगी। स्मृतियां मस्तिष्क में संग्रहीत रहती है। स्मृति पदार्थ है; उसे नष्ट किया जा सकता है।

और अब तो वैज्ञानिक कहते है कि स्मृति प्रत्यारोपित कि जा सकती है। देर -अबेर हम उपाय खोज लेंगे कि जब आइंस्टीन जैसा व्यक्ति मरे तो हम उसके मस्तिष्क की कोशिकाओं को बचा लें। और उन्हें किसी बच्चे में प्रत् यारोपित कर दें। और उस बच्चे को आइंस्टीन के अनुभवों से गूजरें बिना ही आइंस्टीन की स्मृतियां प्राप्त हो जाएगी।

तो स्मृति शरीर का हिस्सा है। और अगर सारा शरीर जल जाए , राख हो जाए ,तो कोई स्मृति नहीं बचेगी। याद रहे ,यह बात समझने जैसी है। अगर स् मृति रह जाती है तो शरीर अभी बाकी है। और तुम धोखे में हो। अगर तुम सचमुच गहराई से इस भाव में उतरोगे कि शरीर नहीं है। जल गया है , आग ने उसे पूरी तरह राख कर दिया है। तो उसे क्षण तुम्हें कोई स्मृति नहीं रहेगी। साक्षित्व के उस क्षण में कोई मन नहीं रहेगा। सब कुछ ठहर जाएगा। विचारों की गति रूक जाएगी। केवल दर्शन ,मात्र देखना रह जाएगा कि क्या हुआ है।

और एक बार तुमने यह जान लिया तो तुम इस अवस्था में निरंतर रह सकते हो। एक बार सिर्फ यह जानना है कि तुम अपने को अपने शरीर से अलग कर सकते हो। यह विधि तुम्हें अपने शरीर से अलग जानने का , तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच एक अंतराल पैदा करने का , कुछ क्षणों के लिए शरीर से बाहर होने का एक उपाय है। अगर तुम इसे साध सको तो तुम शरीर में होते हुए भी शरीर में नहीं होगे। तुम पहले की तरह ही जीए जा सकते हो ; लेकिन अब तुम फिर कभी वही नहीं हो सकते हो।

इस विधि में कम से कम तीन महीने लगेंगे। इसे करते रहो ; यह एक दिन में नहीं होगी। लेकिन यदि तुम प्रतिदिन इसे एक घंटा देते हो तो तीन महीने के भीतर किसी दिन अचानक तुम्हारी कल्पना सफल होगी। और एक अंतराल निर्मित हो जाएगा। और तुम सचमुच देखोगें कि तुम्हारा शरीर राख हो रहा है। तब तुम उसका निरीक्षण कर सकते हो। और उस निरीक्षण में एक गहन तथ्य को बोध होगा। कि अहंकार असत्य है , झूठ है ; उसकी कोई सत्ता नहीं है। अहंकार था ; क्योंकि तुम शरीर से विचारों से मन से तादात्म्य किए बैठे थे। तुम उनमें से कुछ भी नहीं हो —न मन , न विचार , न शरीर। तुम उस सब से भिन्न हो जो तुम्हें घेर हुए है। तुम अपनी परिधि से सर्वथा भिन्न हो।

तो उपर से यह विधि सरल मालूम पड़ती है। लेकिन यह तुम्हारे भीतर गहन रूपांतरण ला सकती है। लेकिन पहले मरघट में जाकर ध्यान करो , जो लोगों को जलाया जाता है। देखो कि कैसे शरीर जलता है। कैसे शरीर फिर मिट्टी हो जाता है। ताकि तुम फिर आसानी से कल्पना कर सको। और जब अँगूठों से आरंभ करो और बहुत धीरे -धीरे उपर बढ़ो।

और इस विधि में उतरने के पहले श्वास छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो। इस विधि को करने के ठीक पहले पंद्रह मिनट तक श्वास छोड़ो और आंखे बंद कर लो , फिर शरीर को श्वास लेने दो और आंखें खोल दो। पंद्रह मिनट तक गहन विश्राम में रहो। और फिर विधि में प्रवेश करो।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-53

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—80 ([illegible])

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]:

‘[illegible], [illegible]; [illegible]’

अगर तुम पहली विधि कर सके तो यह दूसरी विधि बहुत सरल हो जाएगी। अगर तुम भाव कर सके कि तुम्हारा शरीर जल रहा है तो यह भाव करना कठिन नहीं

होगा कि सारा जगत जल रहा है। क्योंकि तुम्हारा शरीर जगत का हिस्सा है। और तुम अपने शरीर के द्वारा ही जगत को जानते हो। उस से जुड़े हो। सच तो यह है कि अपने शरीर के कारण ही तुम इस जगत से जूड़े हो। जगत तुम्हारे शरीर का फैलाव है। अगर तुम अपने शरीर के जलने की कल्पना कर सकते हो तो जगत के जलने की कल्पना करना कठिन नहीं है।
और सूत्र कहता है कि यह जगत काल्पनिक है; वह है, क्योंकि तुमने उसे माना हुआ है। और यह सारा जगत जल रहा है, विलीन हो रहा है।
लेकिन अगर तुम्हें लगे कि पहली विधि कठिन है तो तुम दूसरी विधि से
भी आरंभ कर सकते हो। पर पहली को साध लने से दूसरी बहुत आसान हो जाती है।
और असल में अगर कोई पहली विधि को साध लेने से दूसरी विधि की जरूरत ही नहीं रहती। तुम्हारे शरीर के साथ सब कुछ अपने आप ही विलीन हो जाता है। लेकिन यदि पहली विधि कठिन लगे तो तुम दूसरी विधि में सीधे भी उतर सकते हो।
मैंने कहा कि अँगूठों से आरंभ करो, क्योंकि वे सिर से, अहंकार से बहुत दूर है। लेकिन हो सकता है कि तुम्हें अँगूठों से आरंभ करने की बात भी न जमे। तो और दूर निकल जाओ—संसार से शुरू करो। और तब अपनी तरफ आओ; संसार से शुरू करो। और अपने निकट आओ। और जब सारा जगत जल रहा हो तो तुम् हारे लिए उस पूरे जलते जगत में जलना आसान होगा।
दूसरी विधि: ‘यह काल्पनिक जगत जलकर राख हो रहा है। यह भाव करो;और मनुष्य से श्रेष्ठतर प्राणी बनो।’
अगर तुम सारे संसार को जलता हुआ देख सके तो तुम मनुष्य के ऊपर उठ
गए, तुम अतिमान हो गए। तब तुम अति मानवीय चेतना को जान गए।
तुम यह कल्पना कर सकते हो; लेकिन कल्पना का प्रशिक्षण जरूरी है। हमारी कल्पना बहुत प्रगाढ़ नहीं है। यह कमजोर है, क्योंकि कल्पना के प्रशिक्षण की व्यवस्था ही नहीं है। बुद्धि प्रशिक्षित है; उसके लिए विद्यालय है और महाविद्यालय है। बुद्धि के प्रशिक्षण में जीवन का बड़ा हिस्सा खर्च हो जाता है। लेकिन कल्पना का कोई प्रशिक्षण नहीं होता है। और कल्पना का अपना ही जगत है। बहुत अद्भुत जगत है। यदि तुम अपनी कल्पना को प्रशिक्षित कर सको तो चमत्कार घटित हो सकते है।
छोटी-छोटी चीजों से शुरू करो। क्योंकि बड़ी चीजों में कूदना कठिन
है। और संभव है तुम्हें उनमें असफलता हाथ लगे। उदाहरण के लिए, यह कल्पना कि सारा संसार जल रहा है, जरा कठिन है। यह भाव बहुत गहरा नहीं जा सकता है।
पहली बात कि तुम जानते हो कि यह कल्पना है। और यदि कल्पना में तुम सोचो भी कि चारों और लपटें ही लपटें है तो भी तुम्हें लगेगा कि संसार जला नहीं है। वह अभी भी है। क्योंकि यह केवल तुम्हारी कल्पना है। और तुम नहीं जानते हो कि कल्पना कैसे यर्थाथ बनती है। तुम्हें पहले उसे महसूस करना होगा।
इस विधि में उतरने के पहले एक सरल प्रयोग करो। अपने दोनों हाथों
को एक दूसरे में गूँथ लो, आंखें बंद कर लो। और भाव करो कि अब वे ऐसे गूँथ गए है कि खुल नहीं सकते। और उन्हें खोलने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता।
शुरू-शुरू में तुम्हें लगेगा कि तुम केवल कल्पना कर रहे हो। और
तुम उन्हें खोल सकते हो। लेकिन तुम सतत दस मिनट तक भाव करते रहो कि मैं उन्हें नहीं खोल सकता। मैं उन्हें खोलने के लिए कुछ नहीं कर सकता। मेरे हाथ खुल ही नहीं सकते। और फिर दस मिनट के बाद उन्हें खोलने कि कोशिश करो।
दस में से चार व्यक्ति तुरंत सफल हो जाएंगे। चालीस प्रतिशत लोग तुरंत कामयाब हो जाएंगे—दस मिनट के बाद वे अपने हाथ नहीं खोल सकते। कल्

पना यथार्थ हो गई। वे जितना ही संघर्ष करेंगे। वे हाथ खोलने के लिए जितनी ताकत लगाएंगे उतना ही हाथों का खुलना कठिन होता जाएगा। तुम्हें पसीना आने लगेगा। तुम्हारे ही हाथ है। और तुम देख रहे हो कि वे बंध गए है और तुम उन्हें नहीं खोल सकत।

लेकिन भयभीत मत होओ। फिर आंखें बंद कर लो और फिर भाव करो कि मैं उन्हें खोल रहा हूं। खोल सकता हूं। और तुम उसे खोल सकते हो। चालीस प्रतिशत लोग तुरंत खोल लेंगे।

ये चालीस प्रतिशत लोग इस विधि में आसानी से उतर सकते है। उनके लिए कोई कठिनाई नहीं है। बाकी साठ प्रतिशत के लिए यह विधि कठिन पड़ेगी ; उन्हें समय लगेगा। जो लोग बहुत भाव प्रवण है वे कुछ भी कल्पना कर सकते है। और वह घटित होगा। और एक बार उन्हें यह प्रतीति हो जाए कि कल्पना यथार्थ हो सकती है। कि भाव वास्तविक बन सकता है। तो उन्हें आश्वासन मिल गया। और वे आगे बढ़ सकते है। तब तुम अपने भाव के द्वारा बहुत कुछ कर सकते हो।

तुम अभी भी भाव से बहुत कुछ करते हो , लेकिन तुम्हें पता नहीं होता। तुम अभी भी करते हो , लेकिन तुम्हें उसका बोध नहीं है। शहर में कोई नया रोग फैलता है , फ्रेंच फ्लू फैलता है , और तुम उसके शिकार हो जाते हो। तुम कभी सोच भी नहीं सकते कि सौ में से सत्तर लोग सिर्फ कल्पना के कारण बीमार हो जाते है। चूंकि शहर में रोग फैला है। तुम कल्पना करने लगते हो कि मैं भी इसका शिकार होने वाला हूं —और तुम शिकार हो जाओगे। तुम सिर्फ अपनी कल्पना से अनेक रोग पकड़ लेते हो। तुम सिर्फ अपनी कल्पना से अनेक समस्याएं निर्मित कर लेते हो।

तो तुम समस्याओं को हल भी कर सकते हो। यदि तुम्हें पता हो कि तुमने ही उन्हें निर्मित किया है। अपनी कल्पना को थोड़ा बढ़ाओं और तब यह विधि बहुत उपयोगी होगी।

[illegible]

[illegible], [illegible]-[illegible]-53

[illegible]—81 ([illegible])

[illegible]:

‘[illegible]-[illegible], [illegible]: [illegible]’

यह भी एक कल्पना की विधि है।

अहंकार सदा भयभीत है। वह संवेदनशील होने से , खुला होने से डरता है। वह डरता है कि कोई चीज भीतर प्रवेश करके उसे नष्ट कर न दे। इसलिए अहंकार अपने चारों और एक किला बंदी करता है। और तुम एक कारागृह में रहने लगते हो। तुम अपने अंदर किसी को भी प्रवेश नहीं देते हो। तुम डरते हो कि यदि कोई चीज भीतर आ गई तो झंझट खड़ा कर देगी। तो बेहतर है कि किसी को आने ही मत दो। तब सारा संवाद बंद हो जाता है ; उनके साथ भी संवाद बंद हो जाता है। जिन्हें तुम प्रेम करते हो। या सोचते हो कि तुम प्रेम करते हो।

किन्हीं पति -पत्नी को बा करते हुए देखा ; वे एक दूसरे से बात नहीं कर रहे है। उनके बीच कोई संवाद नहीं है। बल्कि वे शब्दों के द्वारा एक दूसरे से बच रहे है। वे बात कर रहे है ताकि एक दूसरे से बचा जाए। मौन में वे एक दूसरे के प्रति खुल जाएंगे। मौन में वे एक दूसरे के समीप आ जायेंगे। क्योंकि मौन में कोई दीवार नहीं रहती है। कोई अहंकार नही रहता हे। इसलिए पति पत्नी कभी चुप नहीं रहते , वे समय काटने के लिए किसी ने

किसी चीज की चर्चा करते रहेगें। अन्यथा डर है कि कहीं एक दूसरे के प्रति संवेदनशील न हो जाएं। खुल न जाएं। हम एक दूसरे से इतने भयभीत है।
मैंने सुना है कि एक दिन मुल्ला नसरूदीन घर से बाहर निकल रहा था कि उसकी पत्नी ने कहा: ‘नसरूदीन क्या तुम भूल गये कि आज कौन सा दिन है?’ नसरूदीन को पता था, यह विवाह की पच्चीसवीं वर्षगांठ का दिन था। तो उसने कहा, ‘मुझे याद है, बखूबी याद है।‘ पत्नी ने फिर पूछा: ‘तो हम लोग इस दिन को किस तरह मनाने जा रहे है?’ नसरूदीन ने कहा: ‘प्रिये मुझे नहीं मालूम।’ और फिर उसने सिर खुजलाते हुए हैरानी के स्वर में कहा: ‘कितना अच्छा होगा कि हम इस उपलक्ष्य में दो मिनट मौन रहें।’
तुम किसी के साथ मौन नहीं रह सकते: तुम बेचैन होने लगते हो। मौन
में दूसरा तुम्हें प्रवेश करने लगता है। मौन में तुम खुले होते हो; तुम् हारे द्वार दरवाजे खुल होते है। तुम्हारी खिड़कियाँ खुली होती है। तुम डरते हो। तो तुम बातचीत करते हो, बंद रहने के उपाय करते हो। अहंकार कवच है, अहंकार कारागृह है। और हम इतने असुरक्षित अनुभव करते है। कि हमें कारागृह भी स्वीकार है। कारागृह थोड़ी सुरक्षा का भाव देता है; तुम सुरक्षित अनुभव करते हो।
इस विधि का, इस तीसरी विधि का प्रयोग करने के लिए पहली और सब से बुनियादी बात है कि भली भांति जान लो कि जीवन एक असुरक्षा है। उसे सुरक्षित बनाने का कोई उपाय नहीं है। तुम जो भी करोगे, उससे कुछ होने वाला नहीं है। तुम सिर्फ सुरक्षा का भ्रम पैदा कर सकते हो; जीवन असुरक्षित ही रहता है। असुरक्षा ही उसका स्वभाव है; क्योंकि मृत्यु उसमें अंतर्निहित है, साथ-साथ जुड़ी है। जीवन सुरक्षित कैसे हो सकता है?
एक क्षण के लिए सोचो, अगर जीवन पूरी तरह सुरक्षित हो तो वह मृत ही होगा। सर्वथा सुरक्षित जीवन, समग्ररतः: सुरक्षित जीवन जीवंत नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें चुनौती की पुलक नहीं रहेगी। अगर तुम सभी खतरों से सुरक्षित हो जाओगे तो तुम मुर्दा हो जाओगे। जीवन के होने में ही जोखिम है, खतरा है, असुरक्षा है, चुनौती है। उसमें मौत सम्मिलित है।
मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। अब मैं खतरनाक रास्ते पर कदम रखा है।
अब कुछ भी सुरक्षित नहीं हो सकता। लेकिन अब मैं कल के लिए सब कुछ सुरक्षित करने की चेष्टा करूंगा। कल के लिए मैं उस सब की हत्या करूंगा जो जीवित है। क्योंकि तभी में कल के लिए सुरक्षित अनुभव करूंगा। तो प्रेम विवाह में बदल जाता है।
विवाह सुरक्षा है। प्रेम असुरक्षित है—अगले क्षण सब कुछ बदल सकता है। और तुमने कितनी-कितनी आशाएं बांधी है। और अगले क्षण प्रेमिका तुम्हें छोड़कर चली जा सकती है। या मित्र तुम्हें छोड़ कर जा सकता है। तुम अपने को अचानक अकेला पाते हो। प्रेम असुरक्षित है। तुम भविष्य के संबंध में आश्वस्त नहीं हो सकते; कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है।
तो हम प्रेम की हत्या कर देते है। और उसकी जगह एक सुरक्षित परिपूरक खोज लेते है। उसका नाम विवाह है। विवाह के साथ तुम सुरक्षित हो सकते हो, उसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। तुम्हारी पत्नी कल भी तुम् हारी पत्नी रहेगी। तुम्हारा पति भविष्य में भी तुम्हारा पति रहेगा। लेकिन क्योंकि तुमने सब सुरक्षा कर ली, अब कोई खतरा नहीं है। प्रेम मर गया। वह नाजुक संबंध मर गया। क्योंकि मृत चीजें ही स्थाई हो सकती है। जीवित चीजें बदलेगी ही, वे बदलने का बाध्य है। बदलाहट जीवन का गुण है; और बदलाहट में असुरक्षा है।
तो जो भी जीवन की गहराइयों में उतना चाहते है उन्हें असुरक्षित रहने के लिए तैयार रहना चाहिए; उन्हें खतरे में जीने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें अज्ञात में जीने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें किसी

भी तरह भविष्य को बांधने की सुरक्षित करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।
यह चेष्टा ही सब चीजों की हत्या कर देती है।
और यह भी स्मरण रहे, असुरक्षा जीवंत ही नहीं है, सुंदर भी है। सुरक्षा कुरूप और गंदी है। असुरक्षा जीवंत और सुंदर है। तुम तभी सुरक्षित हो सकते हो, यदि तुम अपने सभी द्वार दरवाजे, सभी खिड़कियाँ, सब झरोखे बंद कर लो। न हवा को अंदर आने दो और न रोशनी को, कुछ भी अंदर मत आने दो। तब किसी तरह तुम सुरक्षित हो जाते हो। लेकिन तब तुम जीवित नहीं हो, तुम अपनी कब्र में प्रवेश कर गए।
यह विधि तभी संभव है जब तुम खुले हुए हो, ग्रहणशील हो, भयभीत नहीं
हो। क्योंकि यह विधि पूरे ब्रह्मांड को अपने में प्रवेश देने की विधि है।
‘’जैसे विषयीगत रूप से अक्षर शब्दों में और शब्द वाक्यों में जाकर मिलते है और विषयगत रूप में वर्तुल चक्रों में और चक्र मूल तत्व में जाकर मिलते है, वैसे ही अंतत: इन्हें भी हमारे आस्तित्व में आकर मिलते हुए पाओ।‘’
प्रत्येक चीज मेरे अस्तित्व में आकर मिल रही है। मैं खुले आकाश के नीचे खड़ा हूं और सभी दिशाओं से, सभी कोने-कातर से सारा आस्तित्व मुझमें मिलने चला आ रहा है। इस हालत में तुम्हारा अहंकार नहीं रह सकता। इस खुलेपन में जहां समस्त अस्तित्व तुममें मिल रहा है, तुम ‘मैं’ की भांति नहीं रह सकते हो। तुम खुले आकाश की भांति तो रहोगे, लेकिन एक जगह केंद्रित ‘मैं’ की भांति नहीं।
इस विधि को छोटे-छोटे प्रयोगों से शुरू करो। किसी वृक्ष के नीचे
बैठ जाओ। हवा बह रही है। और वृक्ष के पत्तों से सरसराहट की आवाज हो रही है। हवा तुम्हें छूती है, तुम्हारे चारों और डोलती है। तुम्हें छू कर गूजर रही है, लेकिन तुम उसे ऐसे मत गुजरने दो। उसे अपने भीतर प्रवेश करने दो और अपने में होकर गुजरने दो। आंखें बंद कर लो। और जैसे हवा वृक्ष से होकर गुज़रे और पत्तों में सरसराहट हो, तुम भाव करो कि मैं भी वृक्ष के समान खुला हुआ हूं। और हवा मुझमें से होकर गुजर रही है। मेरे आस-पास से नहीं, ठीक मेरे भीतर से होकर वह बह रही है। वृक्ष की सरसराहट तुम्हें अपने भीतर अनुभव होगी और तुम्हें लगेगा कि मेरे शरीर के रंध्र-रंध्र से हवा गुजर रही है।
और हवा वस्तुत: तुमसे होकर गुजर रही है। यह कल्पना ही नहीं है, यह तथ्य है। तुम भूल गये हो। तुम नाक से ही श्वास नहीं लेते,तुम्हारा पूरा शरीर श्वास लेता है। एक-एक रंध्र से श्वास लेता है। लाखों छिद्रों से श् वास लेता है। अगर तुम्हारे शरीर के सभी छिद्र बंद कर दिये जाये,उन पर रंग पोत दिया जाये और तुम सिर्फ नाक से श्वास लेने दिया जाए तो तुम तीन घंटे के अंदर मर जाओगे। सिर्फ नाक से श्वास लेकर तुम जीवित नहीं रह सकते। तुम्हारे शरीर का प्रत्येक कोष्ठ जीवंत है और प्रत्येक कोष्ठ श् वास लेता है। हवा सच में तुम्हारे शरीर से होकर गुजरती है, लेकिन उसके साथ तुम्हारा संपर्क नहीं रहा है।
तो किसी झाड़ के नीचे बैठो और अनुभव करो। आरंभ में यह कल्पना मालूम पड़ेगी। लेकिन जल्दी ही कल्पना यथार्थ बन जाएगी। वह यथार्थ ही है कि हवा तुमसे होकर गुजर रही है। और फिर उगते हुए सूरज के नीचे बैठो और अनुभव करो कि सूरज की किरणें न केवल मुझे छू रही है। बल्कि मुझमें प्रवेश कर रही है। और मुझसे होकर गुजर रही है। इस तरह तुम खुल जाओगे, ग्रहणशील हो जाओगे।
और यह प्रयोग किसी भी चीज के साथ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए,
मैं यहां बोल रहा हूं,और तुम सुन रहे हो। तुम मात्र कानों से भी सून सकते हो और अपने पूरे शरीर से भी सून सकते हो। तुम अभी और यहीं यह प्रयोग कर

सकते हो। सिर्फ थोड़ी सी बदलाहट की बात है। और अब तुम मुझे कानों से ही नहीं सुन रहे हो, तुम मुझे अपने पूरे शरीर से सून रहे हो। तुम्हारा कोई अंश नहीं सुनता है, तुम्हारी ऊर्जा का कोई एक खंड नहीं सुनता है; पूरे के पूरे सुनते हो। तुम्हारा समूचा शरीर सुनने में संलग्न होता है। और तब मेरे शब्द तुमसे होकर गुजरते है; अपने प्रत्येक कोष्ठ से, प्रत्येक रंध्र से, प्रत्येक छिद्र से तुम उन्हें पीते हो। वे सभी और से तुममें समाहित होते है।
तुम एक और प्रयोग कर सकते हो: जाओ और किसी मंदिर में बैठ जाओ। अनेक भक्त आएँगे जाएंगे ओर मंदिर का घंटा बार-बार बजेगा। तुम अपने पूरे शरीर से उसे सुनो। घंटा बज रहा है और पूरा मंदिर उसकी ध्वनि से गूंज रहा है। मंदिर की प्रत्येक दीवार उसे प्रतिध्वनित कर रही है। उसे तुम्हारी ओर वापित फेंक रही है।
इस लिए हमनें मंदिर को गोलाकार बनाया है। ताकि आवाज हर तरफ से प्रतिध्वनित हो और तुम्हें अनुभव हो कि हर तरफ से ध्वनि तुम्हारी और आ रही है। सब तरफ से ध्वनि लौटा दी जाती है। सब तरफ से ध्वनि तुममें आकर मिलती है। और तुम उसे अपने पूरे शरीर से सुन सकते हो। तुम्हारी प्रत् येक कोशिका, प्रत्येक रंध्र उसे सुनता है। उसे पीता है। अपने में समाहित करता है। ध्वनि तुम्हारे भीतर होकर गुजरती है। तुम रंध्र मय हो गए हो। सब तरफ द्वार ही द्वार है। अब तुम किसी चीज के लिए बाधा न रहे हो। अवरोध न रहे—न हवा के लिए,न ध्वनि के लिए—न किरण के लिए, किसी के लिए भी नहीं। अब तुम किसी भी चीज का प्रतिरोध नहीं करते हो। अब तुम दीवार न रहे।
और जैसे ही तुम्हें अनुभव होता है कि तुम अब प्रतिरोध नहीं करते,संघर्ष नहीं करते। वैसे ही अचानक तुम्हें बोध होता है कि अहंकार भी नहीं है। क्योंकि अहंकार तो तभी है जब तुम संघर्ष करते हो। अहंकार प्रतिरोध है। जब-जब तुम कहते हो, ‘नहीं’ अहंकार खड़ा हो जाता है। जब-जब तुम कहते हो ‘हां’ अहंकार विदा हो जाता है।
मैं उस व्यक्ति को आस्तिक कहता हूं,सच्चा आस्तिक जिसने अस्तित्व
को हाँ कहां है। उसमें कोई ‘नहीं’ नहीं रहा, कोई प्रतिरोध नही रहा। उसे सब स्वीकार है; वह सब कुछ को घटित होने देता है। अगर मृत्यु भी आती है तो वह अपना द्वार बंद नहीं करेगा। उसके द्वार मृत्यु के लिए भी खुले रहेंगे।
इस खुलेपन को लाना है; तो ही तुम यह विधि साध सकते हो। क्योंकि यह विधि कहती है कि सारा अस्तित्व तुममें बहा आ रहा है। तुममें आकर मिल रहा है। तुम समस्त अस्तित्व के संगम हो, तुम्हारी तरफ से विरोध नहीं स्वागत है; तुम उसे अपने में मिलने देते हो। इस मिलन में तुम तो विलीन हो जाओगे, तुम तो शुन्य आकाश हो जाओगे—असीम आकाश। क्योंकि यह विराट ब्रह्मांड अहंकार जैसी क्षुद्र चीज में नहीं उतर सकता। वह तो तभी उतर सकता है जब तुम भी उसके जैसे ही असीम हो गए हो। जब तुम स्वयं विराट आकाश हो गए हो। लेकिन यह होता है। धीरे-धीरे तुम्हें ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील होना है और तुम्हें अपने प्रतिरोधों के प्रति बोधपूर्ण होना है।
हम बहुत प्रतिरोध से भरे है। अगर मैं अभी तुम्हें स्पर्श करूं तो
तुम महसूस करोगे कि तुम मेरे स्पर्श का प्रतिरोध कर रहे हो। तुम एक बाधा खड़ी कर रहे हो। ताकि मेरी ऊष्मा तुममें प्रविष्ट न हो सके। मेरा स् पर्श तुममें प्रविष्ट न हो सके। हम एक दूसरे को छूने को इजाजत भी नहीं देते। अगर कोई तुम्हें जरा सा भी छू देता है तो तुम सजग हो जाते हो और दूसरा कहता है: ‘क्षमा करें।’

हर जगह प्रतिरोध है। अगर मैं तुम्हें गौर से देखता हूं तो तुम प्रतिरोध करते हो; क्योंकि मेरा देखना तुममें प्रवेश कर सकता है, तुममें उतर सकता है, तुम्हें उद्वेलित कर सकता है। तब तुम क्या करोगे? और ऐसा अजनबी व्यक्ति के साथ ही नहीं होता है। वैसे तो अजनबी व् यक्ति के साथ अजनबी है। एक ही छत के नीचे रहने से अजनबी नहीं है। या कहें कि हर कोई अजनबी है। एक ही छत के नीचे रहने से अजनबीपन कैसे मिट सकता है। क्या तुम अपने पिता को जानते हो जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया है? वह भी अजनबी है। तो या तो हर कोई अजनबी है या कोई भी अजनबी नहीं है। लेकिन हम डरे हुए है। और हम सब जगह अवरोध निर्मित करते है। और ये अवरोध हमें असंवेदनशील बना देता है। और तब कुछ भी हममें प्रवेश नहीं कर सकता है। लोग मेरे पास आते है और वे कहते है: ‘कोई प्रेम नही करता, कोई मुझे प्रेम नहीं करता है।’ और मैं उस व्यक्ति को छूता हूं और महसूस करता हूं कि वह स्पर्श से भी डर जाता है। एक सूक्ष्म खिंचाव है, मैं उसका हाथ अपने हाथ में लेता हूं और वह अपने को सिकोड़ लेता है। वह अपने हाथ में मौजूद ही नहीं है। मेरे हाथ में उसका मुर्दा हाथ है। वह तो पीछे हट चुका है। और वह कहता है कि ‘कोई मुझे प्रेम नहीं करता है।’
कोई तुम्हें प्रेम कैसे कर सकता है। और अगर सारा संसार भी तुम्हें प्रेम करे तो भी तुम उसे अनुभव नहीं करोगे। क्योंकि तुम बंद हो। प्रेम तुममें प्रवेश नहीं कर सकता है। कोई द्वार-दरवाजा नहीं है। और तुम अपने ही कारागृह में बंद होकर दुःख पा रहे हो।
अगर अहंकार है तो तुम बंद हो—प्रेम के प्रति, ध्यान के प्रति, परमात्मा के प्रति। इसलिए पहले तो ज्यादा संवेदनशील,ज्यादा ग्राहक, ज् यादा खुले होने की चेष्टा करो; जो तुम्हें होता है उसे होने दो। तो ही भगवता घटित हो सकती है। क्योंकि वह अंतिम घटना है। अगर तुम साधारण चीजों को ही अपने में प्रवेश नहीं दे सकते हो तो परम तत्व को कैसे प्रवेश दोगे? क्योंकि जब तुम्हें परम घटित होगा तब तो तुम बिलकुल नही रहोगे; तुम बिलकुल खो जाओगे।
कबीर ने कहा है: ‘जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।’ खोजने वाला कबीर अब नहीं रहा? वह तो रहा नहीं। कबीर आश्चर्य से पूछते है: ‘ये कैसा मिलन है? जब मैं था तो परमात्मा नहीं था और अब जब परमात्मा है तो मैं नहीं हूं।’
लेकिन वस्तुत: यही मिलन-मिलन है। क्योंकि दो नहीं मिल सकते। सामान्यत: हम सोचते है कि मिलन के लिए दो की जरूरत है। अगर एक ही है तो मिलन कैसे होगा। सामान्य तर्क कहता है कि मिलन के लिए दो जरूरी है। मिलन के लिए दूसरा जरूरी है। लेकिन सच्चे मिलन के लिए, उस मिलन के लिए जिसे हम समाधि कहते है, एक ही होना चाहिए। जब साधक है तो साध्य नहीं है। और जब साध्य आता है तो साधक विलीन हो जाता है।
ऐसा क्या होता है?
क्योंकि अहंकार बाधा है। जब तुम्हें लगता है कि मैं हूं तो तुम इतने मौजूद होते हो कि तुममें कुछ भी प्रवेश नही कर सकता। तुम अपने से ही इतने भरे होते हो। जब तुम नहीं होते हो तो सब कुछ तुमसे होकर गुजर सकता है। तुम इतने विराट हो गए होते हो कि परमात्मा भी तुमसे होकर गुजर सकता है। अब पूरा अस्तित्व तुमसे होकर गुजरने को तैयार है; क्योंकि तुम तैयार हो।
धर्म की सारी कला इसमें है कि कैसे स्वयं को खोया जाए कैसे विलीन
हुआ जाए। कैसे समर्पित हुआ जाए,कैसे शुन्य आकाश हुआ जाए।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-53

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—82 (ओशो)
अनुभव करो: मेरा विचार,मैं-पन, आंतरिक इंद्रियाँ—मुझ
यह बहुत ही सरल विधि है और अति सुंदर भी।
पहली बात यह है कि विचार नहीं करना है, अनुभव करना है। विचार करना
और अनुभव करना दो भिन्न-भिन्न आयाम है। और हम बुद्धि से इतनी ग्रस्त हो गए है कि जब हम यह भी कहते है कि हम अनुभव करते है तो भी हम अनुभव नही करते,सोच-विचार ही करते है। तुम्हारा भाव-पक्ष, तुम्हारा ह्रदय-पक्ष, बिलकुल बंद हो गया है। मुर्दा हो गया है। जब तुम कहते हो कि, ‘मैं तुम् हें प्रेम करता हूं।’ तो भी वह भाव नहीं होता, विचार ही होता है।
और भाव और विचार में फर्क क्या है? अगर तुम भाव करोगे तो तुम अपने
को ह्रदय के पास केंद्रित अनुभव करोगे। अगर मैं कहता हूं कि तुम्हें मैं प्रेम करता हूं तो मेरा यह प्रेम का भाव मेरे ह्रदय से प्रवाहित होगा। उसका स्त्रोत कहीं ह्रदय के आसपास होगा। और अगर वह विचार मात्र होगा तो वह सिर से आता होगा। जब तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो यह महसूस करने की कोशिश करो कि यह प्रेम सिर से आ रहा है या ह्रदय से।
जब भी तुम किसी प्रगाढ़ भाव में होते हो तो तुम सिर के बिना होते
हो। उस क्षण कोई सिर नहीं होता है; हो भी नहीं सकता। तब ह्रदय तुम्हारा समस्त अस्तित्व होता है—मानों सिर है ही नहीं। भाव की अवस्था में ह्रदय तुम्हारे होने का केंद्र होता है।
जब तुम सोच-विचार कर रहे होते हो तब सिर तुम्हारे होने का केंद्र होता है। और क्योंकि विचार करना जीने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इसलिए हमने और सब कुछ बंद कर दिया। हमारे जीवन के अन्य सभी आयाम बंद हो गये है। हम सिर ही सिर रह गये है। और हमारे शरीर सिर के आधार भर है। हम सोच विचार ही करते रहते है। हम अपने भावों के बारे में भी विचार ही करते रहते है।
तो भाव में उतरने की कोशिश करो। तुम्हें थोड़ी मेहनत करनी पड़ेगी; क्योंकि भाव की क्षमता करो। भाव का गुण कुंठित पडा है। उस संभावना का द्वार पुन: खोलने के लिए तुम्हें कुछ करना होगा।
तुम एक फूल को देखते हो, और देखते ही कहते हो कि यह सुंदर है। थोड़ा रुको, जरा प्रतीक्षा करो। जल्दी निर्णय मत करो। प्रतीक्षा करो। और फिर देखो कि कहीं तुमने सिर से ही तो यह नहीं कह दिया कि यह सुंदर है। क्या है तुमने यह अनुभव किया है? क्या सिर्फ यह आदतवश तो नहीं? क्योंकि तुम जानते हो कि गुलाब सुंदर होता है। गुलाब को सुंदर समझा जाता है। लोग कहते है कि यह सुंदर है और तुमने भी अनेक बार कहा है कि सुंदर है।
जैसे ही तुम गुलाब को देखते हो, मन आगे आ जाता है। मन कहता है कि यह सुंदर है। बात खत्म हुई। अब गुलाब से कोई संपर्क नहीं रहा। उसकी जरूरत न रही; तुमने कह दिया। अब तुम अन्यत्र जा सकते हो। गुलाब से कोई मिलन न हुआ; मन ने तुम्हें गुलाब की एक झलक भी नहीं मिलने दी। मन बीच में आ गया और ह्रदय गुलाब के संपर्क में न आ सका।
केवल ह्रदय कह सकता है कि यह सुंदर है या नहीं। क्योंकि सौंदर्य
एक भाव है, कोई विचार नहीं है। तुम बुद्धि से नहीं कह सकते कि यह सुंदर है। कैसे कह सकते हो? सौंदर्य कोई गणित नहीं है; वह गणनातित है। और सौंदर्य वस्तुत: केवल गुलाब में नहीं है। क्योंकि संभव है कि किसी अन्य के लिए वह जरा भी सुंदर न हो। और कोई अन्य उसे देखे बिना ही उसके पास से गुजर जाए। और यह भी संभव है कि किसी अनय के लिए गुलाब कुरूप हो। तो सौंदर्य केवल गुलाब में नहीं है। सौंदर्य तो ह्रदय ओर गुलाब के मिलन में है। जब ह्रदय गुलाब से मिलता है तो सौदर्य का फूल खिलता है। जब

ह्रदय किसी चीज के प्रगाढ़ संपर्क से आता है तो बड़ी अद्भुत घटना घटती है।
जब तुम किसी व्यक्ति के प्रगाढ़ संपर्क में आते हो तो वह व्यक्ति सुंदर हो जाता है। और यह मिलन जितना ज्यादा गहरा होता है उतना ही ज्यादा सौंदर्य प्रकट होता है। तो सौंदर्य वह भाव है जो ह्रदय को घटित होता है। मस्तिष्क को नहीं। सौंदर्य कोई हिसाब-किताब नहीं है और न सौंदर्य को परखने की कोई कसौटी है। वह एक भाव है। यदि मैं कहूं कि गुलाब सुंदर नहीं है। तो तुम विवाद नहीं कर सकते हो, कि क्यों? विवाद करने की जरूरत भी नहीं है। तुम कहोगे: ‘यह तुम्हारा भाव है। और गुलाब सुंदर है—यह मेरा भाव है।’ वहां विवाद का कोई प्रश्न ही नहीं है। मस्तिष्क विवाद कर सकता है, ह्रदय विवाद नहीं कर सकता। बात वहीं खत्म हो गई: पूर्ण विराम आ गया। अगर मैं कहता हूं कि यह मेरा भाव है, तो विवाद की जरूरत ही नहीं है।
सिर के तल पर विवाद जारी रह सकता है। और फिर हम किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते है। ह्रदय के तल पर निष्कर्ष पहले ही आ चुका है। ह्रदय से निष्कर्ष तक पहुंचने की कोई प्रक्रिया नहीं है। कोई विधि नहीं है। उसका निष्कर्ष तत्काल होता है। तुरंत होता है। सिर से निष्कर्ष पर पहुचने की एक प्रक्रिया है, एक व्यवस्था है: तुम तर्क करते हो, तुम विवाद करते हो, तुम विश्लेषण करते हो, और तब निष्कर्ष पर पहुंचते हो कि ऐसा है या नहीं। ह्रदय के लिए यह तात्कालीन घटना है; निष्कर्ष पहले ही आ जाता है।
सिर के तल पर विवाद जारी रहा सकता है और फिर हम किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते है। ह्रदय के तल पर निष्कर्ष पहले ही आ चुका है। ह्रदय से निष्कर्ष पर पहुंचने की कोई प्रक्रिया नही है। कोई विधि नहीं है। उसका निष्कर्ष तत्काल होता है। तत्क्षण होता है। तुरंत होता है। सिर के निष् कर्ष पर पहुंचने की एक प्रक्रिया है। एक व्यवस्था है; तुम तर्क करते हो, तुम विवाद करते हो, तुम विश्लेषण करते हो, और तब निष्कर्ष पर पहुंचते हो कि ऐसा है या नहीं है। ह्रदय के लिए यह तात्कालिक घटना है; निष्कर्ष पहले ही आ जाता है।
इस पर गौर करो। सिर के तल पर निष्कर्ष अंत में आता है; ह्रदय के तल
पर निष्कर्ष पहले ही आता है। ह्रदय से तुम निष्कर्ष पहले ले लेते हो और तब तुम प्रक्रिया खोजते हो। यह प्रक्रिया खोजना सिर का काम है।
तो ऐसी विधियों के प्रयोग में पहली कठिनाई यह है कि तुम्हें यही
पता नहीं है कि भाव क्या है। पहले भाव को विकसित करने की कोशिश करो। जब तुम किसी चीज को छुओ तो आंखें बंद कर लो—विचार मत करो। अनुभव करो। उदाहरण के लिए,मैं तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं, और कहता हूं कि आंखें बंद करो और महसूस करो कि क्या हो रहा है। तो तुम तुरंत कहोगे कि आपका हाथ मेरे हाथ में है।
लेकिन यह भाव नहीं हे। यह विचार है। मैं फिर कहता हूं: ‘विचार नहीं, अनुभव करो।’ तब तुम कहते हो: ‘आप प्रेम प्रकट कर रहे है।’ वह भी विचार है। अगर मैं फिर जोर दूँ और आपसे कहूं की अनुभव करो। सिर को बीच में मत लाओ। बताओ की ठीक-ठीक क्या अनुभव हो रहा है। तो ही तुम कुछ अनुभव कर पाओगे। और कहोगे: ‘उष्मा अनुभव कर रहा हूं।’
क्योंकि प्रेम भी एक निष्पत्ति है। ‘आपका हाथ मेरे हाथ में है।’ यह
सिर से निकला हुआ विचार है। सच्ची बात यह है कि मेरे हाथ से तुम्हारे हाथ में या तुम्हारे हाथ से मेरे हाथ में एक उष्मा प्रवाहित हो रही है। हमारी जीवन-ऊर्जाओं का मिलन हो रहा है। और मिलन का बिंदु उष्मा से भरा है। यह भाव है। अनुभव है, संवेदना है। यह यथार्थ है।
लेकिन हम निरंतर सिर में रहते है। वह हमारी आदत हो गई है। हमें उसका ही प्रशिक्षण मिला है। तो तुम्हें अपने बंद ह्रदय को फिर से खोलना होगा।

भावों के साथ रहने की चेष्टा करो। दिन में कभी-कभी—जब तुम कोई धंधा नहीं कर रहे हो। क्योंकि धंधे में व्यस्त रहकर शुरू-शुरू में भावों के साथ जीना कठिन होगा। वहां सिर बहुत कुशल सिद्ध हुआ है और वहां भावों का भरोसा नहीं किया जा सकता है। लेकिन जब तुम अपने घर पर बच्चों के साथ खेल रहे हो तो वहां सिर की जरूरत नहीं है—यह धंधा नहीं है। लेकिन तुम तो वहां भी अपने सिर को अलग नहीं करते हो।
तो अपने बच्चों के साथ खेलते हुए,या अपनी पत्नी के साथ बैठे हुए,या
कुछ भी न करते हुए, कुर्सी पर विश्राम करते हुए—भाव में जीओं, अनुभव करो। कुर्सी की बुनावट को अनुभव करो, तुम्हारा हाथ कुर्सी को स्पर्श कर रहा है। तुम्हें कैसा अनुभव हो रहा है। हवा चल रही है। हवा अंदर आ रही है, वह तुम्हें स्पर्श कर रही है, तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है। रसोईघर से गंध आ रही है; वह कैसी लग रही है। उसे महसूस करो;उस पर विचार मत करो। सोच-विचार मत करने लगो कि रसोईघर में कुछ पक रहा हे। तब तुम उसके बारे में सपना देखने लगोगे। नहीं, तो भी तथ्य है उसे महसूस करो। और तथ्य के साथ रहो; विचार में मत भटकों।
तुम चारों और से घटनाओं से घिरे हो; तुम्हारी तरफ चारों और से बहुत
कुछ आ रहा है। तुमसे आकर मिल रहा है। सभी और से अस्तित्व तुमसे मिलने के लिए आ रहा है। तुम्हारी सभी इंद्रियों से होकर तुममें प्रवेश कर रहा है। लेकिन तुम हो कि अपने सिर में बंद हो। तुम्हारी इंद्रियाँ मुर्दा हो गई है। वे कुछ भी महसूस नहीं करती है।
तो इसके पहले कि तुम यह विधि प्रयोग करो, थोड़ा संवेदना का विकास जरूरी है। क्योंकि यह आंतरिक प्रयोग है। जब तुम बाह्य को ही नहीं अनुभव कर सकते तो तुम्हारे लिए आंतरिक को अनुभव करना बहुत कठिन है। क्योंकि आंतरिक सूक्ष्म है; अगर तुम स्थूल को नहीं अनुभव कर सकते तो सूक्ष्म को कैसे कर सकते हो। अगर तुम ध्वनियों को नहीं सून सकते हो तो आंतरिक मौन को, निशब्द को, अनाहत नाद को सुनना कठिन होगा। बहुत कठिन होगा। वह बहुत ही सूक्ष्म है।
तुम बग़ीचे में बैठे हो और सड़क पर ट्रैफिक है, शोरगुल है और तरह-
तरह की आवाजें आ रही है। तुम अपनी आंखें बंद कर लो और वहां होने वाली सबसे सूक्ष्म आवाज को पकड़ने की कोशिश करो। कोई कौआ कांव-कांव कर रहा है; कौए की इस कांव-कांव पर अपने को एकाग्र करो। सड़क पर यातायात का भारी शोर है। इसमें कौए की आवाज इतनी धीमी हे, इतनी सूक्ष्म है कि जब तक तुम अपने बोध को उस पर एकाग्र नहीं करोगे तुम्हें उसका पता नहीं चलेगा। लेकिन अगर तुम एकाग्रता से सुनोंगे तो सड़क का सारा शोरगुल दूर हट जाएगा। और कौए की आवाज केंद्र बन जाएगी। और तुम उसे सुनोंगे, उसके सूक्ष्म भेदों को भी सुनोंगे। वह बहुत सूक्ष्म है। लेकिन तुम उसे सुन पाओगे।
तो अपनी संवेदनशीलता को बढ़ाओं। तब कुछ स्पर्श करो। जब कुछ सुनो,
जब भोजन करो,जब स्नान करो तो अपनी इंद्रियों को खुला रहने दो। और विचार मत करो। अनुभव करो। तुम स्नान कर रहे हो; अपने ऊपर गिरते हुए पानी की ठंडक को महसूस करो। उस पर विचार मत करो। यह मत कहो कि पानी ठंडा है। बहुत अच्छा है। कुछ मत कहो, काई शब्द मत दो। क्योंकि जैसे ही तुम शब्द देते हो, तुम अनुभव से चूक जाते हो। जैसे ही शब्द आते है, मन सक्रिय हो जाता है। कोई शब्द मत दो। शीतलता को अनुभव करो,मगर यह मत कहो कि पानी ठंडा है। कुछ कहने की जरूरत नहीं है।
लेकिन हमारा मन विक्षिप्त है; हम कुछ न कुछ कहे ही चले जाते है।
मुझे स्मरण है, मैं एक विश्वविद्यालय में था। मेरे साथ वहां एक महिला प्रोफेसर भी थी जो लगातार कुछ न कुछ बोलती ही रहती थी। उसके लिए असंभव था की वह कभी भी चुप रहे। एक दिन मैं कालेज के बरामदे में खड़ा था

और सूर्यास्त हो रहा था। अत्यंत सुंदर सूर्यास्त था। और वह स्त्री ठीक मेरे बगल में खड़ी थी। मैंने कहा: ‘देखो।’ वह कुछ बोल रही थी, तो मैंने उससे कहा: ‘देखो कैसा सुंदर सूर्यास्त है।’ बह बहुत अनिच्छा से देखने को राज़ी हुई। फिर उसने कहा: ‘क्या आप नहीं सोचते की बायी और यदि कुछ और जामुनी रंग रहता तो ठीक था।’ यह कोई चित्र नहीं था असली सूर्यास्त था। हम लगातार बोलते रहते थे। और हमें यह भी बोध नहीं रहता कि हम क्या
बोल रहे है। मन की इस सतत बातचीत को बंद करो तो ही तुम अपने भावों को प्रगाढ़ कर सकते हो। और अगर भाव प्रगाढ़ हो तो यह विधि तुम्हारे लिये चमत्कार कर सकती है।
‘अनुभव करो: मेरा विचार......।’
आंखों को बंद कर लो और विचार को अनुभव करो। विचारों की सतत धारा चल
रही है; विचारों का एक प्रवाह, एक धारा बही जा रही है। इन विचारों को अनुभव करो। और उनकी उपस्थिति को अनुभव करो। तुम जितना ही उन्हें अनुभव करोगे, वे उतने ही अधिक प्रकट होंगे। पर्त दर पर्त, न सिर्फ वे विचार प्रकट होंगे जो सतह पर है; उनके पीछे और भी विचारों की पर्तें है; और उनके पीछे भी और पर्तें है—पर्तों पर पर्तें।
और विधि कहती है, ‘अनुभव करो, मेरा विचार।’
और हम कहे चले जाते है: ‘ये मेरे विचार है।’ लेकिन अनुभव करो: क्या
वे सचमुच तुम्हारे विचार है। क्या तुम कह सकते हो कि वे मेरे है? तुम जितना ही अनुभव करोगे। उतना ही तुम्हारे लिए वह कहना कठिन होगा कि वे मेरे है। वे सब उधार है; वे सब बाहर से आए है। वे तुम्हारे पास आए है। लेकिन वे तुम्हारे नहीं है। कोई विचार तुम्हारा नहीं है। वह धूल है जो तुम पर आ जमी है। चाहे तुम्हें यह पता हो या न हो। कि स्त्रोत से यह विचार आया है। तो भी विचार तुम्हारा नहीं है। और अगर तुम पूरी चेष्टा करोगे तो तुम जान लोगे कि यह विचार कहीं से आया है।
सिर्फ आंतरिक मौन तुम्हारा है। किसी ने तुम्हें यह नहीं दिया है।
तुम इसके साथ ही पैदा हुए थे। और इसके साथ ही तुम मरोगे। विचार तुम्हें दिए गये है। तुम उनसे संस्कारित हो। अगर तुम हिंदू हो तो तुम्हारे विचार एक तरह के है। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम्हारे विचार और तरह के है। और अगर तुम कम्युनिस्ट हो तो तुम्हारे विचार कुछ और ही है। वे तुम् हें दिये गये है। या संभवत: तुमने उन्हें स्वेच्छा से ग्रहण किया हुआ है। लेकिन कोई विचार तुम्हारा नहीं है।
अगर तुम विचारों की उपस्थिति, उनकी भीड़ की उपस्थिति महसूस कर सको
तो तुम यह भी महसूस करोगे कि वे विचार मेरे नहीं है। यह भीड़ बाहर से तुम्हारे पास आई है। यह तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठी हो गई है। लेकिन यह तुम्हारी नहीं है। और अगर तुम्हें यह अनुभव हो कि कोई विचार मेरा नहीं है। तो ही तुम मन को अपने से अलग कर सकते हो। अगर वे विचार तुम्हारे है तो तुम उनका बचाव करोगे। यह भाव कि यह विचार मेरा है। यही तो आसक्ति है। लगाव है। तब मैं उसे अपने भीतर जड़ें देता हूं, तब मैं जीवन बन जाता हूं और विचार मुझमें जड़ें जमा सकता है। और जब मैं देखता हूं कि कोई विचार मेरा नहीं है तो वह निर्मूल हो जाता है। उखड़़ जाता है,तब मेरा उससे कोई लगाव नहीं रहता है। ‘मेरे’ का भाव ही लगाव पैदा करता है।
तुम अपने विचारों के लिए लड़ सकते हो। तुम अपने विचारों के लिए शहीद हो सकते हो। तुम अपने विचारों के लिए हत्या कर सकते हो। खून कर सकते हो। और विचार तुम्हारे नहीं है। चैतन्य तुम्हारा है: लेकिन विचार तुम्हारे नहीं है। और क्योंकि इस बोध से मदद मिलती है?
अगर तुम देख सको कि विचार मेरे नहीं है तो कुछ भी तुम्हारा नहीं रह जाता है। क्योंकि विचार ही हर चीज की जड़ में है। मेरा घर, मेरी संपति, मेरा परिवार—ये चीजें तो बाहरी है। लेकिन गहरे में विचार मेरे है। अगर

विचार मेरे है तो ही ये चीजें, इनका विस्तार, इनका फैलाव मेरा हो सकता है। अगर विचार मेरे नहीं है तो कुछ भी महत्व का न रहा। क्योंकि यह भी एक विचार ही है। कि तुम मेरी पत्नी हो। कि तुम मेरे पति हो। यह भी एक विचार ही है। और अगर बुनियादी तौर से विचार ही मेरा नहीं है तो पत्नी मेरी कैसे हो सकती है। या पति मेरा कैसे हो सकता है। विचार के मिटते ही सारा संसार मिट जाता है। तब तुम संसार में रह कर भी संसार में नहीं रहते हो। तुम हिमालय चले जा सकते हो, तुम संसार छोड़ सकते हो, लेकिन अगर तुम सोचते हो कि विचार मेरे है तो तुम कहीं नहीं गए। तुम वहीं हो। हिमालय में बैठे हुए तुम संसार में उतने ही होगे जितने यहां रह कर हो। क्योंकि विचार संसार है। तुम हिमालय में भी अपने विचार साथ लिए जाते है। तुम घर छोड़ देते हो, लेकिन असली घर अंदर है। असली घर विचार की ईटों से बना है। बाहर का घर असली घर नहीं है।
यह अजीब बात है, लेकिन यह रोज ही घटती है। मैं एक व्यक्ति को देखता
हूं कि उसने संसार छोड़ दिया और फिर भी वह हिंदू ही है। वह संन्यासी हो जाता है। और फिर भी हिन्दू जैन बना रहा था। इसका क्या मतलब है। यह संसार का त्याग कर देता है। लेकिन विचारों का त्याग नहीं करता। वह अभी भी जैन है। वह अभी भी हिंदू है। उसका विचारों का संसार अभी भी कायम है। और विचारों का संसार ही असली संसार है।
अगर तुम देख सको कि कोई विचार मेरा नहीं है......ओर तुम देख सकोगे। क्योंकि तुम द्रष्टा होगे, और विचार विषय बन जाएंगे। जब तुम शांत होकर विचारों का निरीक्षण करोगे तो विचार विषय होंगे और तुम देखने वाले होगे। तुम द्रष्टा होंगे। तुम साक्षी होगे और विचार तुम्हारे सामने तैरते रहेंगे।
और अगर तुम गहरे देख सके, गहरे अनुभव कर सके। तो तुम देखोगें कि विचारों की कोई जड़ें नहीं है। तुम देखोगें कि विचार आकाश में बादलों की भांति तैर रहे है और तुम्हारे भीतर उसकी कोई जड़ें नहीं है। वे आते है और चले जाते है। तुम नाहक उनके शिकार हो गये हो। नाहक तुम्हारा उनके साथ तादात्म्य हो गया है। विचार का जो भी बादल तुम्हारे घर से गुजरता है, तुम कहते हो कि यह मेरा बादल है।
विचार बादलों जैसे है। तुम्हारी चेतना के आकाश से वे गुजरते रहते
है और तुम उनसे लगाव निर्मित करते रहते हो। तुम कहते हो कि यह बादल मेरा है। और सिर्फ एक आवारा बादल है, जो गुजर रहा है। और यह गुजर जाएगा।
अपने बचपन में लोटों। उस समय भी तुम्हारे कुछ विचार थे। और उनसे तुम्हारा लगाव था। और तुम कहते थे कि वे मेरे विचार है। और फिर बचपन विदा हो गया। और बचपन के साथ वे विचार, वे बादल भी विदा हो गये। अब वे तुम्हें याद भी नहीं है। फिर तुम जवान हुए। और तब दूसरे बादल आए, जो जवानी से आकर्षित होकर आते है। और तुमने उनसे भी अपना लगाव बनाया। और अब तुम बूढ़े हो। जवानी के विचार अब नहीं है; वे अब तुम्हें याद तक नहीं है। और कभी वे इतने महत्वपूर्ण थे कि तुम उनके लिए जान तक दे सकते थे। वे अब याद तक नहीं है। अब तुम अपनी उस मूढ़ता पर हंस सकते हो। तुम उसके लिए मर सकते थे। कि तुम उसके लिए शहीद हो सकते थे। अब तुम उनके लिए दो कौड़ी भी खर्च करने को राज़ी नहीं हो। वे अब तुम्हारे न रहे। वे बादल चले गए। लेकिन उनकी जगह दूसरे बादल आ गए है और तुम उन्हें पकड़कर बैठ गए हो। बादल बदलते रहते है, लेकिन तुम्हारा लगाव, तुम्हारी पकड़ नहीं बदलती। यही समस्या है। और ऐसा नहीं है कि तुम्हारे बचपन के जाने पर ही बादल बदलते है। वे प्रतिपल बदल रहे है। एक मिनट पहले तुम एक तरह के बादलों से घिरे थे, अब तुम और तरह के बादलों से घिरे हो। जब तुम यहां आये थे, एक तरह के बादल तुम पर मंडरा रहे थे। जब तुम यहां से जाओगे, दुसरी तरह के बादल मंडराएंगे। और तुम प्रत्येक बादल के साथ चिपक जाते हो। उससे

लगाव बना लेते हो। अगर अंत में तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं आता है तो यह स् वाभाविक है,क्योंकि बादलों से क्या मिल सकता है? और विचार बादल ही है। यह विधि जड़ से ही शुरू करती है। और विचार ही सबकी जड़ है। अगर ‘मेरे’ के भाव को उसकी जड़ में ही काट सको तो वह फिर प्रकट नहीं होगा—वह फिर कहीं नहीं दिखाई पड़ेगा। और अगर तुम उसे जड़ से नहीं काटते हो तो फिर और कहीं काटने से कुछ नहीं होगा—चाहे तुम जितना काटो वह व्यर्थ होगा; वह फिर-फिर प्रकट होता रहेगा।
मैं उसे काट सकता हूं; मैं कह सकता हूं कि कोई मेरी पत्नी नहीं है।
हम लोग अजनबी है और विवाह तो केवल एक सामाजिक औपचारिकता है। मैं अपने को अलग कर लेता हूं; मैं कहता हूं कि कोई मेरी पत्नी नहीं है। लेकिन यह बात बहुत सतही है। फिर मैं कहता हूं: मेरा धर्म। फिर मैं कहता हूं: मेरा संप्रदाय। मैं कहता हूं: यह मेरा धर्मग्रंथ, यह बाईबिल है, यह कुरान है, यह मेरा शास्त्र है। इस तरह ‘मेरे’ का भाव किसी दूसरे क्षेत्र में जारी रहता है। और तुम वही के वही रहते हो।
मेरा विचार’ और तब ‘मैं-पन’। पले विचारों की श्रंखला को देखो। विचारों की प्रक्रिया को देखो,विचारों के प्रवाह को देखो। और खोजों कि कौन से विचार तुम्हारे है, या कि वे भटकते बादल भर है। और जब तुम्हें प्रतीत हो कि काई विचार तुम्हारे नहीं है। विचारों से ‘मेरे’ को जोड़ना ही भ्रम है। तो तुम आगे बढ़ सकते हो। तब तुम और गहरे उतर सकते हो। तब मैं- पन के प्रति होश साधो। यह ‘’मैं’’ कहा है?
रमण अपने शिष्यों को एक विधि देते थे। उनके शिष्य पूछते थे: ‘मैं
कौन हूं?’ तिब्बत में भी वे एक ऐसी ही विधि का उपयोग करते है जो रमण की विधि से भी बेहतर है। वे यह नहीं पूछते थे कि मैं कौन हुं। वे पूछते थे कि ‘मैं कहां हूं?’ क्योंकि ये ‘कौन’ समस्या पैदा कर सकता है। जब तुम पूछते हो कि ‘मैं कौन हूं?’ तो तुम यह तो मान ही लेते हो कि मैं हूं, इतना ही जानना है कि मैं कौन हूं। अब प्रश्न इतना ही है कि मैं कौन हूं। केवल प्रति भिक्षा होनी है, सिर्फ चेहरा पहचानना है; लेकिन वह है—अपरिचित ही सही, पर वह है।
तिब्बती विधि रमण की विधि से बेहतर है। तिब्बती विधि कहती है कि
मौन हो जाओ और खोजों कि मैं कहां हूं। अपने भीतर प्रवेश करो। एक-एक कोन कातर में जाओ और पूछो: ‘मैं कहां हूं?’ तुम्हें ‘मैं’ कहीं नहीं मिलेगा। तुम उसे कहीं नहीं पाओगे। तुम उसे जितना ही खोजोंगे उतना ही वह वहां नहीं होगा।
और यह पूछते-पूछते कि ‘मैं कौन हूं?’ या की मैं ‘कहां हूं?’ एक क्षण
आता है जब तुम उस बिंदु पर होते हो जहां तुम तो होते हो, लेकिन कोई ‘मैं’ नहीं होता। जहां तुम बिना किसी केंद्र के होते हो। लेकिन यह तभी घटित होगा जब तुम्हारी अनुभूति हो कि विचार तुम्हारे नहीं है। यह ज्यादा गहन क्षेत्र है--यह ‘मैं’-पन’।
हम इसे कभी अनुभव नहीं करते है। हम सतत ‘मैं-मैं’ करते रहते है। ‘मैं’ शब्द का निरंतर उपयोग होता रहता है। जो शब्द सर्वाधिक उपयोग में किया जात है वह ‘मैं’ है। लेकिन तुम्हें उसका अनुभव नहीं होता। ‘मैं’ से तुम्हारा क्या मतलब है? जब तुम कहते हो मैं तो उससे क्या मतलब है। मैं इशारा कर सकता हूं और कह सकता हूं कि मेरा मतलब यह है। मैं अपने शरीर की तरफ इशारा कर सकता हूं। और कह सकता हूं कि मेरा मतलब यह है1 लेकिन तब यह पूछा जा सकता है कि तुम्हारा मतलब हाथ से है। कि तुम्हारा मतलब पैर से है। कि तुम्हारा मतलब पेट से है। तब मुझे इनकार करना पड़ेगा; मुझे नहीं कहना पड़ेगा। और इस तरह मुझे पूरे शरीर को ही इंकार करना होगा। तो फिर तुम्हारा क्या मतलब है जब तुम ‘मैं’ कहते हो। क्या तुम्हारा मतलब सिर से

है? कहीं गहरे में जब भी तुम ‘मैं’ कहते हो,एक बहुत धुंधला-सा, अस्पष्ट सा भाव होता है। और यह अस्पष्ट भाव तुम्हारे विचारों का है।
भाव में स्थित होकर, विचारों से पृथक होकर इस ‘मैं-पन’ का साक्षात करो, इसे सीधे-सीधे देखो। और जैसे-जैसे तुम उसका साक्षात करते हो तुम पाते हो कि वह नहीं है। वह सिर्फ एक उपयोगी शब्द था। भाषागत प्रतीक था। आवश्यक था; लेकिन वह सत्य नहीं था। बुद्ध भी उसका उपयोग करते है। बुद्धत्व को उपलब्ध होने के बाद भी वे उसका उपयोग करते है। यह सिर्फ एक कामचलाऊ उपाय है। लेकिन जब बुद्ध ‘मैं’ कहते है तो उसका मतलब अहंकार नहीं होता,क्योंकि वहां कोई भी नहीं है।
जब तुम इस ‘मैं-पन’ का साक्षात करोगे तो यह विलीन हो जाएगा। इस क्षण
में तुम्हें भय पकड़ सकता है। तुम आतंकित हो सकते हो। और यह अनेक लोगों के साथ होता है कि जब वे इस विधि में गहरे उतरते है तो वे इतने भयभीत हो जाते है कि भाग खड़े होते है।
तो यह स्मरण रहे: जब तुम अपने मैं पन का साक्षात करोगे, उसको अनुभव करोगे। तो तुम ठीक उसी स्थिति में होगे जिस स्थिति में मृत्यु के समय होगा। ठीक उसी स्थिति में क्योंकि ‘मैं’ विलीन हो रहा है। और तुम्हें लगेगा कि मेरी मृत्यु घटित हो रही है। तुम्हें डूबने जैसा भाव होगा कि मैं डूबता जा रहा हूं। और यदि तुम भयभीत हो गये। तो तुम बाहर आ जाओगे। और फिर विचारों को पकड़ लोगे; क्योंकि वे विचार सहयोगी होंगे। वे बादल वहां होंगे; तुम उनसे फिर चिपक जा सकते हो, और तुम्हारा भय जाता रहेगा। पर स्मरण रहे, यह भय बहुत शुभ है। यह एक आशापूर्ण लक्षण है। यह भय बताता है कि तुम गहरे जा रहे हो। और मृत्यु गहनत्म बिंदू है। यदि तुम मृत्यु में उतर सके तो तुम अमृत हो जाओगे। क्योंकि जो मृत्यु में प्रवेश कर जाता है, उसकी मृत्यु असंभव है। क्योंकि जो मृत्यु में उतर जाता है, उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। तब मृत्यु भी बाहर-बाहर है। परिधि पर है। मृत्यु कभी केंद्र पर नहीं है। वह सदा परिधि पर है। जब मैं पन विदा होता है तो तुम ठीक मृत्यु जैसे ही हो जाते हो। पुराना गया और नये का आगमन हुआ।
यह चैतन्य, जो मैं-पन के जाने पर आता है, सर्वथा नया है। अछूता है, युवा है, कुंआरा है। पुराना बिलकुल नहीं बचा और पुराने ने इसे स्पर्श भी नहीं किया है। वह मैं-पन विलीन हो जाता है और तुम अपने अछूते कुंआरापन में, अपनी संपूर्ण ताजगी में प्रकट होते हो। तुमने अस्तित्व का गहरे से गहरातल छू लिया है।
तो इस तरह सोचो: विचार, उसके नीचे मैं-पन, उसके नीचे तीसरी चीज:
‘अनुभव करो: मेरा विचार, मैं-पन, आंतरिक इंद्रियाँ—मुझ।’
जब विचार विलीन हो चुके है या उन पर तुम्हारी पकड़ छूट गई है—वे
चल भी रहे हों तो उनसे तुम्हें लेना-देना नहीं है। तुम पृथक, अनासक्त और विमुक्त हो—और मैं-पन भी विदा हो गया है, तब तुम आंतरिक इंद्रियों को देखते हो।
ये आंतरिक इंद्रियाँ—यह सबसे गहरी बात है। हम अपने बाह्म इंद्रियों को जानते है। हाथ से मैं तुम्हें छूता हूं। आँख से देखता हूं। ये बाह्म इंद्रियां है। आंतरिक इंद्रियां वे है, जिनमें मैं अपने होने को देखता हूं। महसूस करता हूं, अनुभव करता हूं। बाह्म इंद्रियां दूसरों के लिए है। मैं बाह्म इंद्रियों के द्वारा तुम्हारे संबंध में जानता हूं।
लेकिन मैं अपने बारे में कैसे जानता हूं? ये हूं, यह भी मैं कैसे जानता हूं? मुझे मेरे होने की अनुभूति, होने की प्रतीति, होने का अहसास कौन देता है?

इसके लिए आंतरिक इंद्रियां है। जब विचार ठहर जाते है और जब मैं-पन नहीं बचता है तो उस शुद्धता में, उस स्पष्टता में तुम आंतरिक इंद्रियों को देख सकते हो।
चैतन्य, प्रतिभा, मेधा—ये आंतरिक इंद्रियां है। उनके द्वारा हमें अपने होने का, अपने अस्तित्व का बोध होता है। यही कारण है कि अगर तुम अपनी आंखें बंद कर लो तो तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल सकते हो। लेकिन तुम्हारा यह भाव कि मैं हूं बना ही रहेगा।
और उससे ही यह बात भी समझ में आती है—और यह बात बिलकुल सच है—कि
जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो हमारे लिए तो वह मर जाता है, लेकिन उसे थोड़ा समय लग जाता है इस तथ्य को पहचानने में कि मैं मर गया हूं। क्यों कि होने का आंतरिक भाव वही का वही बना रहता है।
तिब्बत में तो मरने के विशेष प्रयोग है और वे कहते है कि मरने की तैयारी बहुत जरूरी है। उनका एक प्रयोग इस प्रकार है: ‘जब भी कोई व्यक्ति मरने लगता है तो गुरु या पुरोहित, या कोई भी जो बारदो प्रयोग जानता है, उससे कहता है कि ‘स्मरण रखो, ‘’होश रखो’’ बोध बनाए रखो कि मैं शरीर छोड़ रहा हूं।‘’ क्योंकि जब तुम शरीर छोड़ देते हो तो यह समझने में थोड़ा समय लगाता है कि मैं मर गया। क्योंकि आंतरिक भाव वही का वही बना रहता है। उसमें कोई बदलाहट नहीं होती।
शरीर तो केवल दूसरों को छूने और अनुभव करने के लिए है। इसके द्वारा तुमने कभी अपने को नहीं स्पर्श किया है। न अपने को जाना है। तुम अपने को किन्हीं अनय इंद्रियों के द्वारा जाते हो। जो आंतरिक है। लेकिन हमारी मुश्किल यह है कि हमें अपने उन इंद्रियों का पता नहीं है। और हम अपने को दूसरों के द्वारा जानते है। हमारी ही नजर में हमारी जो तस्वीर है। वह दूसरों द्वारा निर्मित है। मेरे बारे में दूसरे जो कहते है, वहीं मेरी मेरे संबंध में जानकारी है। अगर वे कहते है कि तुम सुंदर हो, या अगर वे कहते है कि तुम कुरूप हो, तो मैं उस पर भरोसा कर लेता हूं। मेरे बारे में दूसरों के माध्यम से, दूसरों से प्रतिफलित होकर जो कुछ मुझे बताती है। वही मेरे संबंध में धारणा बन जाती है।
अगर तुम अपनी आंतरिक इंद्रियों को पहचान लो तो तुम समाज से बिलकुल मुक्त हो गए। यह मतलब है जब पुराने शास्त्रों में कहा जाता है कि संन् यासी समाज का हिस्सा नहीं है। क्योंकि वह अब स्वयं को आंतरिक इंद्रियों के द्वारा जानता है। अब उसका अपने संबंध में ज्ञान दूसरों के मत पर आधारित नहीं है, अब यह ज्ञान किसी के माध्यम से देखा गया प्रतिफलन नहीं है। अब उसे स्वयं को जानने के लिए किसी दर्पण की जरूरत नहीं है। उसने आंतरिक दर्पण को पा लिया है। और वह स्वयं को आंतरिक दर्पण जानता है।
और आंतरिक सत्य को तभी जाना जा सकता है जब तुमने आंतरिक इंद्रियों
को पा लिया हो। और तब तुम उन आंतरिक इंद्रियों के द्वारा देख सकेत हो। और तब—‘मुझे’। इसे शब्दों में कहना गलत होगा। इस लिए ‘मुझे’ का प्रयोग किया गया है। कोई शब्द गलत होगा ‘मुझे’ भी गलत है। लेकिन मैं विलीन हो गया। स्मरण रहे, इस ‘मुझ’ को ‘मैं’ से कुछ लेना-देना नहीं है। जब ‘मुझ’ प्रकट होता है। तब पहली दफा मेरा असली होना प्रकट होता है। वह असली होना ‘मुझ’ है।
बाहरी संसार न रहा, विचार न रहे,अहंकार का भाव न रहा और मैंने अपनी आंतरिक इंद्रियों को, चैतन्य को, मेधा को, या उसे जो कुछ भी कहो, जान लिया है। तब इस आंतरिक इंद्रियों के प्रकाश में ‘मुझे’ का आवरण होता है। यह ‘मुझ’ तुम्हारा नहीं है; यह तुम्हारा अंतरतम है। यह ‘मुझ’ जागतिक है, विराट है। इस ‘मुझ’ की कोई सीमा नहीं है। इसमें सब कुछ निहित है, समाया है। यह लहर नहीं है; यह सागर ही है।
‘अनुभव करो: मेरा विचार, मैं-पन, आंतरिक इंद्रियां।‘

और तब एक अंतराल है और अचानक 'मुझ' प्रकट होता है। जब यह 'मुझ' प्रकट होता है तो व्यक्ति जानता है कि मैं ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि। अहंकार का दावा नहीं है। अहंकार तो जा चूका। इस विधि के द्वारा तुम अपना रूपांतरण कर सकते हो। लेकिन पहले भाव में स्थिर होओ।

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-55

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]- 83 ([illegible])

([illegible])

कामना के पहले और जानने के पहले मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं?

एक कामना पैदा होती है और कामना के साथ यह भाव पैदा होता है कि मैं हूं। एक विचार उठता है और विचार के साथ यह भाव उठता है कि मैं हूं। इसे अपने अनुभव में ही देखो; कामना के पहले और जानने के पहले अहंकार नहीं है।

मौन बैठो और भीतर देखो। एक विचार उठता है। और तुम उस विचार के साथ तादात्म्य कर लेते हो। एक कामना पैदा होती है और तुम उस कामना के साथ तादात्म्य कर लेते हो। तादात्म्य में तुम अहंकार बन जाते हो। फिर जरा सोचो : कोई कामना नही है। कोई ज्ञान नहीं है। कोई विचार नहीं है—तुम्हारा किसी के साथ तादात्म्य नहीं हो सकता है। अहंकार खड़ा नहीं हो सकता।

बुद्ध ने इस विधि का उपयोग किया है। और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि और कुछ मत करो,सिर्फ इतना ही करो कि जब कोई विचार उठे तो उसे देखो। बुद्ध कहा करते थे कि जब कोई विचार उठे तो देखो कि यह विचार उठ रहा है। अपने भीतर ही देखो कि अब विचार उठ रहा है, अब विचार है। अब विचार विदा हो रहा है। बस देखते भर रहो। कि अब विचार उठ रहा है। अब विचार पैदा हो रहा है। अब विचार विलीन हो रहा है। ऐसा देखने से तादात्म्य नहीं होता।

यह विधि सुंदर है और बहुत सरल है। एक विचार उठता है। तुम सड़क पर चल रहे हो, एक सुंदर कार गुजरती है और तुम उसे देखते हो। और तुमने अभी देखा भी नहीं कि उसे पाने की कामना पैदा हो जाती है। इस पर प्रयोग करो। आरंभ में धीमे शब्दों में कहो, धीरे से कहो कि मैं कार देखता हूं, कार सुंदर है और उसे पाने की कामना पैदा हो रही है। पूरी घटना को शब्दिक रूप दो।

शुरू-शुरू में शाब्दिक रूप देना अच्छा है। अगर तुम इसे जोर से कह सको तो और भी अच्छा है। जोर से कहो कि 'मैं देख रहा हूं कि एक कार गुजरी है और मन कहता है कि कार सुंदर है और अब कामना उठी है कि यह कार प्राप्त करके रहूंगा।' सब कुछ शब्दों में कहो, स्वयं से ही कहो और जोर से कहो; और तुरंत तुम्हें अहसास होगा कि मैं इस पूरी प्रक्रिया से अलग हूं।

पहले देखो, मन ही मन में कामना के उठने को देखो। और जब तुम देखने में निष्णात हो जाओ तब जोर से कहने की जरूरत नहीं है। तब मन ही मन देखो कि एक कामना पैदा हुई है। एक सुंदर स्त्री गुजरती है। और कामवासना उठती है। उसे मन ही मन ऐसे देखो जैसे कि तुम्हें उससे कुछ लेना देना नहीं है। तुम सिर्फ घटित होने वाल तथ्य को देख भर रहे हो। और तुम अचानक अनुभव करोगे कि मैं इससे बाहर हूं।

बुद्ध कहते है कि जो भी हो रहा है, उसे देखो; और जब वह विदा हो जाए
तो उसे भी देखो कि अब कामना विदा हो गई है। और तुम उस विचार से, उस कामना से एक दूरी, एक पृथकता अनुभव करोगे।
यह विधि कहती है: ‘कामना के पहले ओर जानने के पहले के पहले मैं कैसे
कह सकता हूं कि मैं हूं?’
अगर कोई कामना नहीं है, कोई विचार नहीं है। तो तुम कैसे कह सकते हो
कि मैं हूं? मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं हूं? तब सब कुछ मौन है, शांत है; एक लहर भी तो नहीं है। और लहर के बिना मैं ‘मैं’ का भ्रम कैसे निर्मित कर सकता हूं? अगर कोई लहर हो तो मैं उससे आसक्त हो सकता हूं और उसके माध् यमसे में अनुभव कर सकता हूं कि मैं हूं। जब चेतना में कोई लहर नहीं है तो कोई ‘मैं’नहीं है।
तो कामना के उठने से पहले स्मरण रखो, जब कामना आ जाए तो स्मरण रखो,
और जब कामना विदा हो जाए तो भी स्मरण रखो। जब कोई विचार उठे तो स्मरण रखो, उसे देखो। सिर्फ देखो कि विचार उठा है। देर अबेर वह विदा हो जाएगा। क्योंकि सब कुछ क्षणिक है। और बीच में एक अंतराल होगा। दो विचारों के बीच में खाली जगह है। दो कामनाओं के बीच में अंतराल है। और उस अंतराल में, उस खाली जगह में ‘मैं’नहीं है।
मन में चलते विचार को देखो और तुम पाओगे कि वहां एक अंतराल भी है चाहे वह कितना ही छोटा हो, अंतराल है। फिर दूसरा विचार आता है और फिर एक अंतराल। उन अंतरालों में ‘मैं’ नहीं। और वे अंतराल ही तुम्हारा असली होना है। तुम्हारा अस्तित्व है। आकाश में विचार के बादल चल रहे है। दो बादलों के अंतराल को देखो और आकाश प्रकट हो जाएगा।
‘विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ।’
विमर्श करो कि कामना पैदा हुई और कामना विदा हो गई—और मैं उसके अंतराल में हूं और कामना ने मुझे अशांत नहीं किया है। विमर्श करो कि कामना आई, कामना गई, वह थी और अब नहीं है। और मैं अनुद्विग्न रहा हूं। वैसा ही रहा हूं जैसा पहले था; मुझमें कोई बदलाहट नहीं हुई है। विमर्श करो कि कामना छाया की भांति आई और चली गई। उसने मुझे स्पर्श भी नहीं किया। मैं अछूता रह गया। इस कामना की गतिविधि के प्रति, इस विचार की हलचल के प्रति विमर्श से भरों। और अपने भीतर की अगति के प्रति भी, ठहराव के प्रति भी विमर्श पूर्ण होओ।
‘विमर्श करो। सौंदर्य में विलीन हो जाओ।’
और वह अंतराल सुंदर है; उस अंतराल में डूब जाओ। उस अंतराल में डूब जाओ। शून्य हो जाओ। यह सौंदर्य का प्रगाढ़तम अनुभव है। और केवल सौंदर्य का ही नहीं, शुभ और सत्य का भी प्रगाढ़तम अनुभव है। उस अंतराल में तुम हो।
सारा ध्यान भरे हुए स्थानों से हटाकर खाली स्थानों पर लगाना है।
तुम कोई किताब पढ़ रहे हो। उसमें शब्द है, उसमें वाक्य है। लेकिन शब्दों के बीच वाक्यों के बीच खाली स्थान पर भी है। और उन खाली स्थानों में तुम हो। कागज की जो शुभ्रता है, वह तुम हो; और जो काले अक्षर है वे तुम्हारे भीतर चलने वाले विचार और कामना के बादल है। अपने परिप्रेक्ष्य को बदलों; काले अक्षरों को मत देखो, शुभ्रता को देखो।
अपने प्राणों के अंतराल को देखो। जो भरे हुए स्थान है, उनके प्रति उदासीन रहो; और अंतराल के प्रति, खाली आकाश के प्रति सावचेत बनो। और उस अंतराल के द्वारा, उस आकाश के द्वारा तुम परम सौंदर्य में विलीन हो जाओगे।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-55

□□□□□□□□ □□□□□ □□□□□□ □□□□□—84 (□□□)

□□□□□□□□□—□□□□□□□ □□□□□ □□□□□:

‘□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□□ □□ □□ □□□□ □□□□ □□ □□□□ □□□□□□□□ □□□□□ □□ □□□□□□□□□ □□ □□ □□□□□□□ □□□□’

बहुत सी बातें समझने जैसी है। ‘शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओं। ’

शरीर के प्रति हमारी आसक्ति प्रगाढ़ है। वह अनिवार्य है ; वह स्वाभाविक है। तुम अनेक -अनेक जन्मों से शरीर में रहते आए है ; आदि काल से ही तुम शरीर में हो। शरीर बदलते रहे है। लेकिन तुम सदा शरीर में रहे हो। तुम सदा सशरीर रहे हो।

ऐसे क्षण , ऐसे समय भी रहे है जब तुम शरीर में नहीं थे। लेकिन तब तुम अचेतन थे , मूर्छित थे। जब तुम मरते हो , जब तुम एक शरीर छोड़ते हो , तो तुम मूर्च्छा की हालत में मरते हो और तुम मूर्च्छित ही रहते हो। फिर तुम्हारा एक नए शरीर में जन्म होता है। लेकिन उस समय भी तुम मूर्छित ही रहते हो। एक मृत्यु और दूसरे जन्म के बीच का अंतराल मूर्च्छा में बीतता है। इसलिए तुम्हें हो तो तुम्हें एक ही बात का पता है और वह है शरीर में होने का; तुमने अपने को शरीर में ही जाना है।

यह इतनी प्राचीन है , इतनी निरंतर है , कि तुम भूल ही गए हो कि मैं भिन्न हूं। यह एक विस्मरण है जो स्वाभाविक है , अनिवार्य है। और इसी कारण से आसक्ति है। तुम्हें लगता है कि मैं शरीर हूं ; और यही आसक्ति है। तुम्हें लगता है कि मैं शरीर के सिवाय कुछ भी नहीं हूं , शरीर से अधिक कुछ भी नहीं है।

शायद तुम मेरे साथ इस बात पर सहमत न हो , क्योंकि कई बार तुम सोचते हो कि मैं शरीर नहीं हूं। मैं आत्मा हूं। लेकिन यह तुम्हारा जानना नहीं है। यह बस तुमने सुना है। तुमने पढ़ा है। यह तुमने जाने बिना मान लिया है।

तो पहला काम यह है कि तुम्हें इस तथ्य को स्वीकार करना है कि वस्तुत : मेरा जानना यही है कि मैं शरीर हूं। अपने को धोखा मत दो ; क्योंकि धोखा देने से काम नहीं चलेगा। अगर तुम सोचते हो कि मैं पहले से ही जानता हूं कि मैं शरीर हूं तो तुम शरीर के प्रति अपनी आसक्ति को दूर नहीं कर सकते। क्योंकि तुम्हारे लिए आसक्ति है ही नहीं। तुम जानते ही हो। और तब अनेक कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। जिनका समाधान नहीं हो सकता। किसी कठिनाई को आरंभ में ही हल कर सकते। हल करने के लिए तुम्हें फिर आरंभ पर लौटना होगा। तो यह स्मरण रहे , तुम्हें पहले यह भली भांति बोध होना चाहिए कि मैं नहीं जानता कि मैं शरीर के अतिरिक्त कुछ नहीं हूं। यह पहला बुनियादी बोध है।

यह बोध अभी तुम्हें नहीं है। तुमने जो कुछ सुना है उससे तुम्हारा मन भरा है और भ्रांत है। तुम्हारा मन दूसरों से मिले ज्ञान से संस्कारित है। यह ज्ञान उधार है। यह ज्ञान सच्चा नहीं है। ऐसा नहीं है कि यह गलत है। जिन्होंने कहा है उन्होंने ऐसा जाना है। लेकिन जब तक यह तुम्हारा अनुभव न हो जाए , तब तक तुम्हारे लिए गलत है। जब मैं कहता हूं कि कोई चीज गलत है तो मेरा मतलब यह है कि यह तुम्हारा अपना अनुभव नहीं है। यह किसी और के लिए सच हो सकता है। लेकिन तुम्हारे लिए सच नहीं है। और इस अर्थ में सत्य वैयक्तिक अनुभूति है। अनुभूत सत्य ही सत्य है। जो अनुभूत नहीं है वह सत्य नहीं है। कोई जागतिक सत्य नहीं होता है। प्रत्येक सत्य को सत्य होने के लिए पहले वैयक्तिक होना पड़ता है।

तुम जानते हो , तुमने सुना है कि मैं शरीर नहीं हूं —यह तुम्हारे ज्ञान का हिस्सा है , यह तुमने बाप दादों से सुना है —लेकिन यह तुम्हारा

अनुभव नही है। पहले इस तथ्य का साक्षात करो कि मैं अपने को शरीर की भांति ही जानता हूं। यह साक्षात्कार तुम्हारे भीतर बड़ी बेचैनी पैदा करेगा। इस बेचैनी को छिपाने के लिए ही तुमने यह ज्ञान इकट्ठा किया था। तुम माने रहते हो कि मैं शरीर नहीं हूं। और तुम शरीर की भांति रहे आते हो। इससे तुम विभाजित हो जाते हो। इससे तुम्हारा सारा जीवन अप्रामाणिक हो जाता है। झूठ और नकली हो जाता है। वस्तुत: यह चित की रूग्ण अवस्था है, भ्रांत अवस्था है। तुम जीते हो शरीर की तरह और तुम बातें करते हो आत्मा की तरह। और तब द्वंद्व है। संघर्ष है। तब तुम सतत एक आंतरिक उपद्रव में,एक गहन अशांति में जीते हो। जिसका निराकरण संभव नहीं है।
तो पहले इस तथ्य को देखो कि मैं आत्मा के संबंध में कुछ नहीं जानता
हूं, मैं जो कुछ भी जनता हूं वह शरीर के संबंध में जानता हूं। इससे तुम् हारे भीतर एक बड़ी बेचैनी की स्थिति पैदा होगी। जो भी अंदर छिपा है वह उभर कर सतह पर आएगा। इस तथ्य के साक्षात्कार से कि मैं शरीर हूं। तुम् हें वस्तुत: पसीना आने लगेगा। इस तथ्य का साक्षात करके कि मैं शरीर हूं, तुम्हें बहुत बेचैनी होगी। तुम बहुत अजीब अनुभव करोगे। लेकिन इस अनुभव से गुजरना ही होगा; तो ही तुम जान सकते हो कि शरीर के प्रति आसक्ति का क् या अर्थ है।
ऐसे शिक्षक है जो कहे चले जाते है कि तुम्हें अपने शरीर से आसक्त नहीं होना चाहिए। लेकिन तुम्हें इस बुनियादी बात का ही पता नहीं है कि शरीर के प्रति यह आसक्ति क्या है। शरीर के प्रति आसक्ति शरीर के साथ प्रगाढ़ तादात्म्य है, लेकिन पहले तुम्हें समझना है कि यह तादात्म्य क् या है।
तो अपने उस सारे ज्ञान को अलग हटा दो जिसने तुम्हें यह भ्रांत धारणा दी है कि तुम आत्मा हो। यह अच्छी तरह जान लो कि मैं एक ही चीज को जानता हूं और शरीर है। कैसे यह बोध तुम्हारे भीतर छिपे हुए उपद्रव को, तुम्हारे भीतर छिपे हुए नरक को उभार कर ऊपर ले आता है। उसे प्रत्यक्ष कर देता है।
जब तुम्हें बोध होता है कि मैं शरीर हूं तो पहली दफा तुम्हें आसक्
ति का बोध होता है। पहली दफा तुम्हारी चेतना में इस तथ्य का बोध होता है कि यह शरीर है—जो पैदा होता है और मर जाता है। यहीं मैं हूं। पहली दफा तुम्हें इस तथ्य का बोध होता है कि यह कामवासना, क्रोध—यही मैं हूं। इस तरह सभी झूठी प्रतिमाएं गिर जाती है। तुम अपने सचाई में प्रकट हो जाते हो।
यह सचाई दुखद है, बहुत दुखद है। यही कारण है कि हम उसे छिपाते रहते
है। यह एक गहरी चालाकी है। तुम अपने को आत्मा को आत्मा माने रहते हो और जो भी तुम्हें नापसंद है उसे तुम शरीर पर थोप देते हो। तुम कहते हो कि कामवासना शरीर की है, और प्रेम मेरा। तुम कहते हो कि लोभ और क्रोध शरीर का है और करूणा मेरी है। करूणा आत्मा की है और क्रुरता की है। क्षमा आत् मा की है और क्रोध शरीर का है। जो भी तुम्हें गलत और कुरूप मालूम पड़ता है। उसे तुम शरीर पर थोप देते हो। और जो भी तुम्हें गलत और कुरूप मालूम पड़ता है। उसे तुम शरीर पर थोप देते हो। और जो भी तुम्हें सुंदर मालूम पड़ता है। उसके साथ तुम अपना तादात्म्य बना लेते हो। इस तरह तुम विभाजन पैदा करते हो।
यह विभाजन तुम्हें जानने नहीं देता कि आसक्ति क्या है। और जब तक
तुम यह नहीं जानते कि आसक्ति क्या है और जब तक तुम उसके नरक से, उसकी पीड़ा से नहीं गुजरते हो, तब तक तुम उसे दूर नहीं हटा सकते। कैसे दूर करोगे? तुम किसी चीज को तभी दूर करोगे जब वह रो सिद्ध हो, जब वह भारी बोझ सिद्ध हो। जब वह नरक सिद्ध हो। तभी तुम उसे अपने से अलग कर सकते हो।

तुम्हारी आसक्ति अभी नरक नहीं सिद्ध हुई है। बुद्ध कुछ भी कहें, महावीर कुछ भी कहें, वह अप्रासंगिक है। वे कहे जा सकते है कि आसक्ति नरक है। लेकिन यह तुम्हारा भाव नहीं है। इसीलिए तुम बार-बार पूछते हो कि आसक्ति से कैसे छूटा जाए। अनासक्त कैसे हुआ जाये। आसक्ति के पार कैसे हुआ जाए। तुम यह ‘’कैसे’’ इसीलिए पूछते रहते हो क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि आसक्तिक्या है। इधर तुम जानते हो कि आसक्ति क्या है तो तुम कूद कर बाहर निकल जाओगे, तभी तुम ‘कैसे’ नहीं पूछोगे!
अगर तुम्हारे घर में आग लगी हो तो तुम किसी से पूछने नहीं जाओगे,
तुम किसी गुरु के पास यह पूछने नहीं जाओगे कि आग से कैसे बचा जाये। अगर घर जल रहा हो तो तुम तत्क्षण बाहर निकल जाओगे। तुम एक क्षण भी देर नहीं करोगे। तुम गुरु की खोज भी नहीं करोगे। तुम शास्त्रों से सलाह नहीं लोगे। तुम यह जानने की चेष्टा भी नहीं करोगे कि निकलने के उपाय क्या है, कि निकलने के लिए किन साधनों को काम में लाया जाए, कि निकलने के लिए कौन सा द्वार सही द्वार है। ये चीजें अप्रासंगिक है, जब घर धू-धू कर जल रहा हो।
जब तुम जानते हो कि आसक्ति क्या है तो तुम यह जानते हो कि घर जल रहा
है। और तब तुम उसे अपने से दूर कर सकते हो।
इस विधि में प्रवेश के पहले तुम्हें आत्मा संबंधी उधार ज्ञान को
हटा देना होगा, ताकि शरीर के प्रति आसक्ति अपनी समग्रता में प्रकट हो सके। यह बहुत कठिन होगा; उसका साक्षात्कार गहरी चिंता और संताप में ले जाएगा। यह आसान नहीं होगा; कठिन होगा, दुष्कर होगा। लेकिन यदि तुम्हें एक बार उसका साक्षात्कार हो जाए तो तुम उसे दूर कर सकते हो। और ‘’कैसे’’ पूछने की जरूरत नहीं है। यह बिलकुल ही आग है, नरक है; तुम उससे छलांग लगाकर बाहर निकल सकते हो।
यह सूत्र कहता है: ‘शरीर के प्रति आसक्ति को दूर हटाओं और यह भाव
करो कि मैं सर्वत्र हूं। जो सर्वत्र है वह आनंदित है।’
और जिस क्षण तुम आसक्ति को दूर हटाओगे, तुम्हें बोध होगा कि मैं सर्वत्र हूं। इस आसक्ति के कारण तुम्हें महसूस होता है कि मैं शरीर में सीमित हूं। शरीर तुम्हें नहीं सीमित करता है, तुम्हारी आसक्ति तुम्हें सीमित करती है। शरीर तुम्हारे और सत्य के बीच अवरोध नहीं निर्मित करता है, उसके प्रति तुम्हारी आसक्ति अवरोध निर्मित करती है।
एक बार तुम जान गए कि आसक्ति नहीं है तो फिर तुम्हारा कोई शरीर भी नहीं है—अथवा सारा अस्तित्व तुम्हारा शरीर बन जाता है। तुम्हारा शरीर समग्र अस्तित्व का हिस्सा बन जाता है। तब वह पृथक नहीं है।
सच तो यह है कि तुम्हारा शरीर तुम्हारे पास आया हुआ निकटतम अस् तित्व है; और कुछ नहीं। शरीर निकटतम अस्तित्व है। और वही फिर फैलता जाता है। तुम्हारा शरीर अस्तित्व का निकटतम हिस्सा है और फिर सारा अस्तित्व फैलता जाता है। एक बार तुम्हारी आसक्ति गई कि तुम्हारे लिए शरीर न रहा। अथवा समस्त अस्तित्व तुम्हारा शरीर बन जाता है। तब तुम सर्वत्र हो, सब तरफ हो।
शरीर में तुम एक जगह हो; शरीर के बिना तुम सर्वत्र हो। शरीर में
तुम एक विशेष स्थान में सीमित हो; शरीर के बिना तुम पर कोई सीमा न रही।
यही कारण है कि जिन्होंने जाना है वे कहते है कि शरीर कारागृह है। दरअसल, शरीर कारागृह नहीं है। आसक्ति कारागृह है। जब तुम्हारी निगाह शरीर पर ही सीमित नहीं है तब तुम सर्वत्र हो।
यह बात बेतुकी मालूम पड़ती है। मन को, जो शरीर में है, यह बात बेतुकी मालूम पड़ती है। यह बात पागलपन जैसी लगती है—कोई व्यक्ति सभी जगह कैसे हो सकता है। और वैसे ही बुद्ध पुरूष को हमारा यह कहना कि मैं ‘यहां’ हूं, पागलपन जैसा मालूम पड़ता है। तुम किसी एक स्थान में कैसे हो

सकते हो? चेतना कोई स्थान नहीं लेती है, इसीलिए अगर तुम आंखें बंद कर लो तो पता लगाने की चेष्टा करो कि शरीर में ही कहां हूं तो तुम हैरान रह जाओगे; तुम नहीं खोज पाओगे कि मैं कहा हूं।
अनेक धर्म ओर अनेक संप्रदाय हुए है जो कहते है कि तुम नाभि में हो। दूसरे कहते है तुम ह्रदय में हो। कुछ कहते है कि तुम सिर में हो। कुछ कहते है कि तुम इस चक्र में हो और कुछ कहते है कि उस चक्र में हो। लेकिन शिव कहते है कि तुम कहीं नहीं हो। यही कारण है कि अगर तुम आंखें बंद कर लो और खोजने की कोशिश करो कि मैं कहां हूं तो तुम कुछ नहीं बता सकते। तुम तो हो, लेकिन तुम्हारे लिए कोई ‘कहां’ नहीं है। तुम बस हो।
प्रगाढ़ नींद में भी तुम्हें शरीर का बोध नहीं रहता है। तुम तो
हो। सुबह जाग कर तुम कहोगे कि नींद बहुत गहरी थी। बहुत आनंदपूर्ण थी। तुम्हें एक गहन आनंद का बोध था लेकिन तुम्हें शरीर का बोध नहीं था। प्रगाढ़ निद्रा में तुम कहां होते हो? और मरते हो तो तुम कहां जाते हो? लोग निरंतर पूछते है कि जब कोई मरता है तो वह कहां जाता है?
लेकिन यह प्रश्न निरर्थक है, मूढ़ता पूर्ण है। यह प्रश्न हमारे इस भ्रम से ही उठता है कि हम शरीर में है। अगर हम मानते है कि हम शरीर है तो फिर प्रश्न उठता है कि मरने पर हम कहां जाते है।
तुम कहीं नहीं जाते हो। जब तुम मरते हो तो तुम कहीं नहीं जाते हो।
यही कारण है कि वे ‘निर्वाण’ शब्द चुनते हो। निर्वाण का अर्थ है कि तुम कहीं नहीं हो। ज्योति के बुझने को भी निर्वाण कहते है। तुम कह सकते हो कि बुझने के बाद ज्योति कहां है? बुद्ध कहेंगे कि यह कहीं नहीं है। ज् योति बस नहीं हो गई है। बुद्ध नकारात्मक शब्द चुनते है: ‘कहीं नहीं।’ निर्वाण का अर्थ है। जब तुम शरीर से बंधे नहीं हो तो तुम निर्वाण में हो, तुम कहीं नहीं हो।
अगर तुम बुद्ध से पूछोगे तो वे कहेंगे कि तुम नहीं हो। यही कारण है
कि वे ‘निर्वाण’ शब्द चुनते है। निर्वाण का अर्थ है कि तुम कहीं नहीं हो। ज्योति के बुझने को भी निर्वाण कहते है। तुम कह सकते हो कि बुझने के बाद ज्योति कहां है। बुद्ध कहेंगे कि वह कहीं नहीं है। ज्योति बस नहीं हो गई है। बुद्ध नकारात्मक शब्द चुनते है। ‘कहीं नहीं।’ निर्वाण का वहीं अर्थ है। जब तुम शरीर से बंधे नहीं हो तो तुम निर्वाण में हो, तुम कहीं नहीं हो।
शिव विधायक शब्द चुनते है; वे कहते है कि तुम सब कहीं हो। लेकिन दोनों शब्द एक ही अर्थ रखते है। अगर तुम सब कहीं हो तो तुम कहीं एक जगह नहीं हाँ सकते। तुम सब कहीं हो, यह कहना करीब-करीब वैसा ही है जैसा वह कहना कि तुम कहीं नहीं हो। लेकिन शरीर से हम आसक्त है और हमें लगता है कि हम बंधे है। यह बंधन मानसिक है; यह तुम्हारी अपनी करनी है। तुम अपने को किसी भी चीज के साथ बाँध सकते हो। तुम्हारे पास एक कीमती हीरा है, और तुम्हारे प्राण उसमें अटके हो सकते है। यदि वह हीरा चोरी हो जाए तो तुम आत्महत्या कर सकते हो। तुम पागल हो सकते हो। क्या करण है? बहुत लोग है जिनके पास हीरा नही है। उनमें से कोई भी आत्महत्या नहीं कर सकता है। किसी को हीरे के बिना कोई कठिनाई नहीं हो रही है। लेकिन तुम्हें क्या हुआ है?
कभी तुम भी हीरे के बिना थे और कोई समस्या नहीं थी। अब तुम फिर हीरे के बीना हो, लेकिन अब समस्या है। यह समस्या कैसे निर्मित होती है? यह तुम्हारी अपनी करनी है। अब तुम आसक्त हो, बंधे हो। हीरा तुम्हारा शरीर बन गया है; अब तुम इसके बिना नहीं रह सकत। अब इसके बिना तुम्हारा जीना असंभव है।
जहां भी तुम आसक्त होते हो, नया कारागृह बन जाता है। और हम जीवन
में यहीं करते है; हम निरंतर और-और कारागृह बनाते जाते है। बड़े से बड़े

कारागृह बनाते रहते है। और फिर हम उन कारागृहों को सजाते है। ताकि वे घर मालूम पड़ें और फिर हम भूल ही जाते है कि वे कारागृह है।
यह सूत्र कहता है कि अगर तुम शरीर से अपनी आसक्ति को दूर कर सको तो
यह बोध घटित होगा कि मैं सर्वत्र हूं,सब कहीं हूं। तब तुम बूंद न रहे, सागर हो गए; तब तुम्हें सागर होने का भाव होता है। अब तुम्हारी चेतना किसी स्थान से नहीं बंधी है; वह स्थान मुक्त है। तुम बिलकुल आकाश के सामन हो जाते हो। जो सबको घेरे हुए है। अब सबकुछ तुममें है—तुम्हारी चेतना अनंत तक फैल गई है।
और फिर सूत्र कहता है: ‘जो सर्वत्र है वह आनंदित है।’
एक जगह से बंधे रह कर तुम दुःख में रहोगे क्योंकि तुम सदा उससे बड़े हो जहां तुम बंधे हो। यही दुःख है। मानों तुम अपने को एक छोटे-से पात्र में सीमित कर रहे हो। सागर को एक घड़े में बंद किया जा रहा है। दुःख अनिवार्य है। यही दुःख है। और जब भी इस दुःख की अनुभूति हुई है, बुद्धत्व की खोज, ब्रह्म की खोज शुरू हो जाती है।
ब्रह्म का अर्थ है अनंत, असीम फैलाव। और मोक्ष की खोज स्वतंत्रता
की खोज है। सीमित शरीर में तुम स्वतंत्र नहीं हो सकते हो। एक स्थान में तुम बंध जाते हो। कहीं नहीं या सब कहीं में ही तुम स्वतंत्र हो सकते हो। मनुष्य के मन को देखो। वह सदा स्वतंत्रता खोज रहा है—उसकी दिशा चाहे जो भी हो। दिशा राजनीतिक हो सकती है, सामाजिक हो सकती है, मानसिक हो सकती है, धार्मिक हो सकती है। दिशा जो भी हो, मनुष्य का मन स्वतंत्रता की खोज कर रहा है। स्वतंत्रता मनुष्य की गहनत्म आवश्यकता मालूम पड़ती है। जहां भी मनुष्य के मन को अवरोध मिलता है, जहां भी उसे गुलामी का बंधन का अहसास होता है, वह उसके विरूद्ध लड़ता है।
मनुष्य का सारा इतिहास स्वतंत्रता के युद्ध का इतिहास है। आयाम भिन्न हो सकते है। माक्र्स और लेनिन आर्थिक स्वतंत्रता के लिए लड़ते है। गांधी और अब्राहम लिंकन राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ते है। और हजारों तरह की गुलामियां है, और संघर्ष जारी है। लेकिन एक बात निश्चित है कि कहीं गहरे में मनुष्य निरंतर और-और स्वतंत्रता की खोज कर रहा है। शिव कहते है—और यही बात सभी धर्म कहते है—कि तुम राजनीतिक तल पर स्वतंत्र हो सकते हो, लेकिन संघर्ष समाप्त नहीं होगा। एक तरह की गुलामी हट जाएगी लेकिन और तरह की गुलामियां है। जब तुम राजनीतिक रूप से स् वतंत्र होगे तो तुम्हें अनय गुलामियों का बोध होगा। आर्थिक गुलामी समाप्त हो सकती है। लेकिन तब तुम अन्य गुलामियां के प्रति सजग हो जाओगे; यौन और शरीर के तल पर जो गुलामियां है उनके प्रति सजग हो जाओगे। यह संघर्ष तब तक नहीं खत्म होगा जब तक तुम यह नहीं अनुभव करते,यह नहीं जानते कि मैं सर्वत्र हूं। जिस क्षण तुम्हें प्रतीत होता है कि मैं सर्वत्र हूं, कि मैं सब जगह हूं, तो स्वतंत्रता प्राप्त हुई।
यह स्वतंत्रता राजनीतिक नहीं है, यह स्वतंत्रता आर्थिक नहीं है,
यह स्वतंत्रता सामाजिक नहीं है। यह स्वतंत्रता अस्तित्वगत है। यह स् वतंत्रता समग्र है। इसीलिए हमने उसे मोक्ष कहा है—समग्र स्वतंत्रता। और तुम तभी आनंदित हो सकते हो। हर्ष या आनंद तभी संभव है जब तुम पूरी तरह स्वतंत्र हो। सच तो यह है कि पूरी तरह स्वतंत्र होना ही आनंद है। आनंद परिणाम नहीं है। स्वतंत्रता की घटना ही आनंद है। जब तुम पूरी तरह स् वतंत्र हो तो तुम आनंदित हो।
यह आनंद परिणाम की तरह नहीं घटित हो रहा है। स्वतंत्रता ही आनंद
है, गुलामी दुःख है। संताप है। जिस क्षण तुम किसी सीमा में बंधा अनुभव करते हो उसी क्षण तुम दुःख में पड़ जाते हो। जहां-जहां भी तुम सीमित अनुभव करते हो वहां-वहां तुम दुःख अनुभव करते हो। और जब तुम असीम-अनंत अनुभव करते हो, दुःख विलीन हो जाता है।

तो बंधन दुःख है और मुक्ति आनंद है। जब भी तुम्हें इस स्वतंत्रता
का अनुभव होता है। तुम्हें आनंद घटित होता है। अभी भी जब तुम्हें किसी तरह की स्वतंत्रता का अनुभव होता है, चाहे वह समग्र न भी हो, तो तुम प्रसन्न हो जाते हो। जब तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, तुम पर एक खुशी, एक आनंद बरस जाता है। यह क्यों होता है?
असल में जब भी तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो तो तुम शरीर के प्रति अपनी आसक्ति को दूर हटा देते हो। किसी गहरे अर्थ में अब दूसरे का शरीर भी तुम्हारा अपना शरीर हो गया है। तुम अब अपने शरीर में ही सीमित नहीं हो, दूसरे का शरीर भी तुम्हारा आवास बन गया है। घर बन गया है। तुम् हें थोड़ी स्वतंत्रता महसूस होती है। अब तुम दूसरे में गति कर सकते हो और दूसरे तुममें गति कर सकते है। एक अर्थ में एक अवरोध गिर गया; अब तुम पहले से ज्यादा हो।
जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो तुम पहले से बहुत ज्यादा हो जाते
हो। तुम्हारा होना थोड़ा फैला, थोड़ा विराट हुआ। तुम्हारी चेतना अब पहले कि तरह क्षुद्र न रही; उसने नया विस्तार पा लिया है। प्रेम में तुम थोड़ी स्वतंत्रता का अनुभव होता है। हालांकि यह समग्र नहीं है। और देर-अबेर तुम फिर बंधन अनुभव करोगे। तुम्हें विस्तार तो मिला, लेकिन यह विस्तार अभी भी सीमित है।
इसीलिए जो लोग वस्तुत: प्रेम करते है वे देर-अबेर प्रार्थना में
उतर जाते है। प्रार्थना का अर्थ है,वृहद प्रेम। प्रार्थना का अर्थ है पूरे आस्तित्व के साथ प्रेम। अब तुम्हें रहस्य का पता चल गया। तुम्हें कुंजी का, गुप्त कुंजी का पता चल गया। कि मैंने एक व्यक्ति को प्रेम किया ओर जिस क्षण मैंने प्रेम किया, सारे अवरोध गिर गए। सारे दरवाजे खुल गए और कम से कम एक व्यक्ति के लिए मेरा होना विस्तृत हुआ। मेरे प्राणों का विस्तार हुआ। अब तुम्हें गुप्त कुंजी मालूम है कि अगर मैं पूरे-अस् तित्व को प्रेम करने लगू तो मैं शरीर नहीं रहूंगा।
प्रगाढ़ प्रेम में तुम शरीर नहीं रह जाते हो। जब तुम किसी के प्रेम में होते हो तो तुम अपने को शरीर नहीं समझते हो। तो जब तुम्हें प्रेम नहीं मिलता है, जब तुम प्रेम में नहीं होते हो, तब तुम अपने को शरीर ज्यादा अनुभव करते हो। तब तुम्हें अपने शरीर का ख्याल ज्यादा रहता है। तब तुम्हारा शरीर बोझ बन जाता है। जिसे तुम किसी तरह ढोते हो। जब तुम्हें प्रेम मिलता है, शरीर निर्भार हो जाता है। जब तुम्हें प्रेम मिलता है और तुम प्रेम में होते हो तो तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि गुरूत् वाकर्षण को कोई प्रभाव है। तुम नाच सकते हो, तुम वस्तुत: उड़ सकते हो। एक अर्थ में शरीर नहीं रहा—लेकिन सीमित अर्थ में ही। वही बात एक गहरे अर्थ में तब घटती है। जब तुम समग्र अस्तित्व के साथ प्रेम में होते हो। प्रेम में तुम्हें आनंद मिलता है। आनंद सुख नहीं है। स्मरण रहे, आनंद सुख नहीं है। सुख इंद्रियों के द्वारा मिलता है। आनंद इंद्रियगत नहीं है, वह अतींद्रिय अवस्था में प्राप्त होता है। सुख तुम्हें शरीर से मिलता है। आनंद तब मिलता है जब तुम शरीर नहीं होते हो। जब क्षण भर के लिए शरीर विलीन हो गया है और तुम मात्र चेतना हो तो तुम्हें आनंद प्राप् त होता है। और जब तुम शरीर हो तो तुम्हें केवल सुख मिल सकता है। वह सदा शरीर से मिलता है। शरीर से दुःख संभव है, सुख संभव है, लेकिन आनंद तभी संभव है जब तुम शरीर नहीं हो।
आनंद कभी-कभी अचानक और आकस्मिक रूप से भी घटित होता है। तुम संगीत
सुन रहे हो और अचानक सब कुछ खो जाता है। तुम संगीत में इतने तल्लीन हो कि तुम्हें अपने शरीर की सुख भूल गई। तुम संगीत में डूब गए हो; तुम संगीत के साथ एक हो गए हो। तुम इतने एक हो गये हो कि कोई सुननेवाला बचा ही नहीं; सुनने वाला और सुना जाने वाला, संगीत एक हो गए है। सिर्फ संगीत बचा है;

तुम नहीं बचे। तुम विस्तृत हो गए, फैल गये। मौन में विलीन हो रहे है और तुम भी उनके साथ मौन में विलीन हो रहे हो। शरीर की सुधि जाती रही। और जब भी शरीर की सुधि नहीं रहती। शरीर अनजाने ही, अचेतन रूप से दूर हट जाता है। और तुम्हें आनंद घटित होता है।
तंत्र और योग के द्वारा तुम यही चीज विधिपूर्वक कर सकते हो। तब वह आकस्मिक नहीं है; तब तुम उसके मालिक हो। तब यह चीज तुम्हें अनजाने नहीं घटती है; तब तुम्हारे हाथ में कुंजी है और तुम जब चाहो द्वार खोल सकते हो — या तुम चाहो तो द्वार हमेशा के लिए खोल सकते हो और कुंजी को फेंक सकते हो। द्वार को फिर बंद करने की जरूरत नहीं रही।
सामान्य जीवन में भी आनंद घटती होता है; लेकिन वह कैसे घटता है, यह तुम्हें नहीं मालूम। स्मरण रहे, यह सदा तभी घटता है जब तुम शरीर नहीं होते हो। तो जब भी तुम्हें पुन: किसी आनंद के क्षण का अनुभव हो तो सजग होकर देखना कि उस क्षण में तुम शरीर हो या नहीं। तुम शरीर नहीं होगे। जब भी आनंद है, शरीर नहीं है। ऐसा नहीं कि शरीर नहीं रहता है। शरीर तो रहता है, लेकिन तुम शरीर से आसक्त नहीं हो। तुम शरीर से बंधे नहीं हो। तुम उससे बाहर निकल गए हो। हो सकता है, संगीत के कारण तुम बाहर निकल गए, या खूब सूरत सूर्योदय को देखकर बाहर निकल गए। या एक बच्चे को हंसते देखकर बाहर निकल गए। या किसी के प्रेम में होने के कारण शरी से बाहर आ गए—कारण जो भी हो,मगर तुम क्षण भर के लिए बाहर आ गए। शरीर तो है, लेकिन दूर हो गए। तुम उससे आसक्त नही हो। तुमने एक उड़ान ली।
इस विधि के द्वारा तुम जानते हो कि जो सर्वत्र है वह दुखी नहीं हो सकता; वह आनंदित है। वह आनंद है। तो स्मरण रहे, तुम जितने सीमित होगे उतने ही दुःखी होगे। फैलो, अपनी सीमाओं को दूर हटाओं। और जब भी संभव हो, शरीर को अलग हटा दो। तुम आकाश को देखो, बादल तैर रहे है, उन बादलों के साथ तेरो, शरीर को जमीन पर ही रहने दो। और आकाश में चाँद है, चाँद के साथ यात्रा करो। जब भी तुम शरीर को भूल सको, उस अवसर को मत चूको, यात्रा पर निकल पड़ो। और तुम धीरे-धीरे परिचित हो जाओगे कि शरीर से बाहर होने का क्या मतलब है।
और यह सिर्फ अवधान की बात है। आसक्ति अवधान देने की बात है। अगर
तुम शरीर को अवधान देते हो तो तुम उससे आसक्त हो। अगर अवधान हटा लिया जाए तो तुम आसक्त नहीं रहे।
उदाहरण के लिए तुम खेल के मैदान में खेल रहे हो। तुम हाकी या बाली-
बाल खेल रहे हो। या कोई और खेल रहे हो। तुम खेल में इतने तल्लीन हो कि तुम्हारा अवधान शरीर पर नहीं है। तुम्हारे पैर पर चोट लग गई है और खून बह रहा है; लेकिन तुम्हें उसका पता नहीं है। दर्द भी है, लेकिन तुम वहां नही हो। खून बह रहा है। लेकिन तुम शरीर के बाहर हो। तुम्हारी चेतना, तुम्हारा अवधान गेंद के साथ दौड़ रहा है। गेंद के साथ भाग रहा है। तुम् हारा अवधान कहीं और है। लेकिन जैसे ही खेल समाप्ति होता है। तुम अचानक शरीर में लौट आते हो और देखते हो कि खून बह रहा है। पीड़ा हो रही है। और तुम्हें आश्चर्य होता है कि यह कैसे हुआ। कब हुआ और कैसे तुम्हें इसका बोध नहीं हुआ।
शरीर में रहने के लिए तुम्हें अवधान की जरूरत है। यह स्मरण रहे,जहां भी तुम्हारा अवधान है तुम वही हो। अगर तुम्हारा अवधान फूल में है तो तुम फूल में हो। और अगर तुम्हारा अवधान धन में हो तो तुम धन में हो। तुम्हारा अवधान ही तुम्हारा होना है। और अगर तुम्हारा अवधान कहीं नहीं है तो तुम सब कहीं हो।
ध्यान की पूरी प्रक्रिया चेतना की उस अवस्था में होना है जहां तुम्हारा अवधान कहीं नहीं हो, जहां तुम्हारे अवधान का कोई विषय न हो, कोई लक्ष्य न हो। जब कोई विषय नहीं है। कोई शरीर नहीं है। तुम्हारा

अवधान ही शरीर का निर्माण करता है। तुम्हारा अवधान ही तुम्हारा शरीर है। और जब अवधान कहीं नहीं है तो तुम सब कहीं हो। और तब तुम्हें आनंद घटित होता है। वह कहना भी ठीक नहीं है कि तुम्हें आनंद घटित होता है। तुम ही आनंद हो। अब यह तुमसे अलग नहीं हो सकता। यह तुम्हारा प्राण ही बन गया है।

स्वतंत्रता आनंद है। इसीलिए स्वतंत्रता की इतनी अभीप्सा है, इतनी खोज है।

[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible]
[illegible]-57

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]- 86 ([illegible])
[illegible]- [illegible] [illegible] [illegible]:

‘ना -कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।’

मैं यही कह रहा था। अगर तुम्हारे अवधान का कोई विषय नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है, तो तुम कहीं नहीं हो, या तुम सब कहीं हो। और तब तुम स्वतंत्र हो तुम स्वतंत्रता ही हो गए हो।

यह दूसरा सूत्र कहता है: ‘ना कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।’

अगर तुम सोच विचार नहीं कर रहे हो तो तुम असीम हो। विचार तुम्हें सीमा देता है। और सीमाएं अनेक तरह की है। तुम हिंदू हो, यह एक सीमा है। हिंदू होना किसी विचार से, किसी व्यवस्था से, किसी ढंग ढांचे से बंधा होना है। तुम ईसाई हो, यह भी एक सीमा है। धार्मिक आदमी कभी भी हिंदू या ईसाई नहीं हो सकता। और अगर कोई आदमी हिंदू या ईसाई है तो वह धार्मिक नहीं है। असंभव है। क्योंकि ये सब बिचार है। धार्मिक आदमी का अर्थ है कि वह विचार से नहीं बंधा है। वह किसी विचार से सीमित नहीं है। वह किसी व्यवस्था से, किसी ढंग -ढांचे से नहीं बंधा है। वह मन की सीमा में नहीं जीता है —वह असीम में जीता है।

जब तुम्हारा कोई विचार है तो वह विचार तुम्हारा अवरोध बन जाता है। वह विचार सुंदर हो सकता है। लेकिन फिर भी वह बंधन है। सुंदर कारागृह भी कारागृह ही है। विचार स्वर्णिम हो सकता है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता; स्वर्णिम विचार भी तो उतना ही बाँधता है,जितना कोई और विचार बाँधता है। और जब तुम्हारा कोई विचार है, और तुम उससे आसक्त हो तो तुम सदा किसी के विरोध में हो। क्यों कि सीमा हो ही नहीं सकती, यदि तुम किसी के विरोध में नहीं हो। विचार सदा पूर्वाग्रह ग्रस्त होता है। विचार सदा पक्ष या विपक्ष में होता है।

मैंने एक बहुत धार्मिक ईसाई के संबंध में सूना है, जो कि एक गरीब किसान था। वह मित्र समाज का सदस्य था। वह क्वेकर था। क्वेकर लोग अहिंसक होते है। वे प्रेम और मैत्री में विश्वास करते है। वह क्वेकर अपनी खच्चर गाड़ी पर बैठकर शहर से गांव वापस आ रहा था। एक जगह खच्चर अचानक बिना किसी कारण के रूक गया और आगे बढ़ने से इनकार करने लगा। उसने खच्चर को ईसाई ढंग से, मैत्रीपूर्ण ढंग से, अहिंसक ढंग से फुसलाने की कोशिश की। वह क्वेकर था, वह खच्चर को मार नहीं सकता था। उसे कठोर वचन नहीं कह सकता था। उसे डांट -फटकार या गाली भी नहीं दे सकता था। लेकिन वह गुस्से से भरा था।

लेकिन खच्चर को मारा कैसे जाएं। वह उसे मारना चाहता था। तो उसने खच्चर से कहा: ‘ठीक से आचरण करो। मैं क्वेकर हूं, इस लिए मैं तुम्हें मार

नहीं सकता हूं,लेकिन स्मरण रहे ऐ खच्चर, कि मैं तुम्हें किसी ऐसे आदमी के हाथ बेच तो सकता हूं जो ईसाई न हो।’
ईसाई की अपनी दूनिया है और गैर-ईसाई उसके बाहर है। कोई ईसाई यह सोच
भी नहीं सकता कि कोई गैर-ईसाई ईश्वर के राज्य में प्रवेश पा सकता है। वैसे ही कोई हिंदू या जैन यह नहीं सोच सकता कि उनके अलावा कोई दूसरा आनंद के जगत में प्रवेश पा सकता है।
विचार सीमा बनता है। अवरोध खड़े करता है; और जो लोग पक्ष में नहीं
है उन्हें विरोधी मान लिया जाता है। जो मेरे साथ सहमत नहीं है वे मेरे विरोध में है। फिर तुम सब कहीं कैसे हो सकते हो। तुम ईसाई के साथ हो सकते हो; तुम गैर ईसाई के साथ नहीं हो सकते। तुम हिंदू के साथ हो सकते हो; लेकिन तुम गैर हिंदू के साथ, मुसलमान के साथ नहीं हो सकते। विचार को किसी न किसी के विरोध में होना पड़ता है। चाहे वह किसी व्यक्ति के विरोध में हो या किसी वस्तु के। वह समग्र नहीं हो सकता है। स्मरण रहे, विचार कभी समग्र नहीं हो सकता; केवल निर्विचार ही समग्र हो सकता है।
दूसरी बात कि विचार मन से आता है। वह सदा मन की उप-उत्पती है। विचार तुम्हारा रुझान है, तुम्हारा अनुमान है। पूर्वाग्रह है। विचार तुम्हारी प्रतिक्रिया है। तुम्हारा सिद्धांत है। तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी मान्यता है। लेकिन विचार अस्तित्व नहीं है। वह अस्तित्व के संबंध में है। वह स्वयं अस्तित्व नहीं है।
एक फूल है। तुम उस फूल के संबंध में कुछ कह सकते हो। वह कहना एक प्रतिक्रिया है। तुम कह सकते हो कि फूल सुंदर है, कि असुंदर है। तुम कह सकते हो कि फूल पवित्र है। लेकिन तुम फूल के संबंध में जो भी कहते हो वह फूल नहीं है। फूल का होना तुम्हारे विचारों के बिना है। और तुम फूल के संबंध में जो भी सोच विचार करते हो उससे तुम अपने ओर फूल के बीच अवरोध निर्मित कर रहे हो। फूल को होने के लिए तुम्हारे विचारों की जरूरत नहीं है। फूल बस है। अपने विचारों को छोड़ो और तब तुम फूल में डूब सकते हो। यह सूत्र कहता है: ‘ना-कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।’
अगर तुम सोच विचार में उलझे नहीं हो, अगर तुम सिर्फ हो, पूरे सजग और सावचेत हो, विचार के किसी धुएँ के बिना हो, तो तुम असीम हो।
यह शरीर ही एकमात्र शरीर नहीं है; एक गहन तर शरीर भी है। वह मन है। शरीर पदार्थ से बना है। मन भी पदार्थ से बना है; वह और सूक्ष्म से बना है। शरीर बाहरी पर्त है और मन आंतरिक पर्त है। और शरीर से अनासक्त होना बहुत कठिन नहीं है। मन से अनासक्त होना बहुत कठिन है। क्योंकि मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य ज्यादा गहरा है। तुम मन से ज्यादा जुड़े हो।
अगर कोई तुमसे कहे कि तुम्हारा शरीर रूग्ण मालूम होता है तो तुम्
हें पीड़ा नहीं होती है। तुम शरीर से उतने आसक्त नहीं हो; वह तुमसे जरा दूरी पर मालूम पड़ता है। लेकिन अगर कोई तुमसे कहे कि तुम्हारा मन रूग्ण है। अस्वस्थ मालूम होता है। तो तुम्हें पीड़ा होती है। उसने तुम्हारा अपमान कर दिया। मन से तुम अपने को ज्यादा निकट अनुभव करते हो। अगर कोई आदमी तुम्हारे शरीर के संबंध में कुछ बुरा कहे तो तुम उसे बरदाश्त करना असंभव होगा। क्योंकि उसने गहरे में चोट कर दी।
मन शरीर की भीतरी पर्त है। मन और शरीर दो नहीं है। तुम्हारे शरीर
की बाहरी पर्त शरीर है। और भीतरी पर्त मन है। ऐसा समझो कि तुम्हारा एक घर है; तुम उस घर को बाहर से देख सकते हो और तुम उस घर को भीतर से देख सकते हो। बाहर से दीवारों की बाहरी पर्त दिखाई पड़ेगी; भीतर से भीतरी पर्त दिखाई पड़ेगी। मन तुम्हारी आंतरिक पर्त है। वह तुम्हारे ज्यादा निकट है। लेकिन फिर भी वह शरीर ही है।

मृत्यु में तुम्हारा बाहरी शरीर गिर जाता है। लेकिन उसका भीतरी सूक्ष्म पर्त को तुम अपने साथ ले जाते हो। तुम उससे इतने आसक्त हो कि मृत्यु भी तुम्हें तुम्हारे मन में पृथक नहीं कर पाती। मन जारी रहता है1 यहीं कारण है कि तुम्हारे पिछले जन्मों को जाना जा सकता है। तुम अभी भी अपने सभी अतीत के मनों को अपने साथ लिए हुए हो। वे सब के सब तुम में मौजूद है। अगर तुम कभी कुत्ते थे तो कुत्ते का मन अब भी तुम्हारे भीतर है। अगर तुम कभी वृक्ष थे तो वृक्ष का मन अब भी तुम्हारे साथ है। अगर तुम कभी स्त्री या पुरूष थे तो वे चित अब भी तुम्हारे भी मौजूद है। सारे के सारे चित तुम्हारे पास है। तुम उनसे इतने बंधे हो कि तुम उनकी पकड़ को नहीं छोड़ सकते।
मृत्यु में बाह्म विलीन हो जाता है। लेकिन आंतरिक कायम रहता है।
वह आंतरिक शरीर बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ है। वस्तुत: वह ऊर्जा का स्पंदन मात्र है—विचार की तरंगें। तुम उन्हें अपने साथ लिए चलते रहते हो। और तुम उन्हीं विचार तरंगों के अनुरूप फिर नए शरीर में प्रवेश करते हो। तुम अपने विचारों के ढांचे के अनुकूल अपनी कामनाओं के अनुकूल अपने मन के अनुकूल अपने लिए नया शरीर निर्मित कर लेते हो। मन में उसका ब्लू प्रिंट, उसकी रूपरेखा मौजूद है। और उसके अनुरूप बाहरी पर्त फिर बनती है।
तो पहला सूत्र शरीर को अलग करने के लिए है। दूसरा सूत्र मन को अलग करने का है, आंतरिक शरीर। मृत्यु भी तुम्हें तुम्हारे मन से अलग नहीं कर पाती; यह काम केवल ध्यान कर सकता है। यहीं कारण है कि ध्यान मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु है; वह मृत्यु से भी गहरी शल्य-चिकित्सा है। इसलिए ध्यान से इतना भय होता है। लोग ध्यान के बारे में सतत बात करेंगे लेकिन वे ध्यान कभी करेंगे नहीं। वे बात करेंगे, वे उसके संबंध में लिखेंगे, वे उस पर उपदेश भी देंगे;लेकिन वे कभी ध्यान करेंगे नहीं। ध्यान से एक गहरा भय है। और वह भय मृत्यु का भय है।
जो लोग ध्यान करते है वे किसी न किसी दिन उस बिंदू पर पहुंच जाते
है जहां वे घबड़ा जाते है। जहां से वे पीछे लौट जाते है। वे मेरे पास आते है, और कहते है: ‘अब हम आगे प्रवेश नहीं कर सकते; यह असंभव है।’ एक क्षण आता है जब व्यक्ति को लगता है कि मैं मर रहा हूं। और वह क्षण किसी भी मृत्यु से बड़ी मृत्यु का क्षण है। क्योंकि जो सबसे अंतरस्थ है वहीं अलग हो रहा है। वहीं मिट रहा है। व्यक्ति को लगता है कि मैं मर रहा हूं। उसे लगता है कि में अब अनस्तित्व में सरक रहा हूं। एक गहन अतल का द्वार खुल जाता है। एक अनंत शून्य सामने आ जाता है। वह घबरा जाता है। और पीछे लौट कर शरीर को पकड़ लेता है। ताकि मिट न जाए; क्योंकि पाँव के नीचे से जमीन खिसक रही है। और सामने एक अतल खाई खुल रही है—शून्य की खाई। इसलिए लोग यदि चेष्टा भी करते है तो सदा ऊपर-ऊपर करते है। वे पूरी त्वरा से ध्यान नहीं करते है। कहीं अचेतन में उन्हें बोध है कि अगर हम गहरे उतरेंगे तो नहीं बचेंगे। और यही सही है। यह भय सच है। तुम फिर तुम नहीं रहोगे। एक बार तुमने उस अतल को, शून्य को जान लिया तो तुम फिर वही नहीं रहोगे जो थे। तुम उससे एक नया जीवन लेकिन लौटोगे, तुम नए मनुष्य हो जाओगे।
पुराना मनुष्य तो मिट गया; वह कहां गया, तुम्हें इसका नामों निशान
भी नहीं मिलेगा। पुराना मनुष्य मन के साथ तादात्म्य में था; अब तुम मन के साथ तादात्म्य नहीं कर सकते हो। अब तुम मन का उपयोग कर सकते हो। अब तुम शरीर का उपयोग कर सकते हो। लेकिन अब मन और शरीर यंत्र है और तुम उनसे ऊपर हो। तुम उनका जैसा चाहो वैसा उपयोग कर सकते हो। लेकिन तुम उनसे तादात्म्य नहीं करते हो। यह स्वतंत्रता देता है।

लेकिन यह तभी हो सकता है जब तुम ना कुछ का विचार करो। ‘ना कुछ का विचार’—यह बहुत विरोधाभासी है। तुम किसी चीज के बारे में विचार कर सकते हो, लेकिन ना-कुछ के बारे में कैसे विचार कर सकते हो? इस ‘ना कुछ’ का क्या अर्थ है? और तुम उसके संबंध में विचार कैसे कर सकते हो? जब भी तुम किसी के संबंध में विचार करते हो, वह विषय बन जाता है। वह विचार बन जाता है। और विचार पदार्थ है। तुम ना-कुछ का विचार कैसे कर सकते हो। तुम शून्य के संबंध में कैसे सोच सकते हो। तुम नहीं सोच सकते, यह संभव नहीं है। लेकिन इस प्रयत्न में ही, ना-कुछ के विषय में शून्य के संबंध में सोचने के प्रयत्न में ही सोच-विचार खो जाएगा। विलीन हो जाएगा।
तुमने झेन कोआन के संबंध में सुना होगा। झेन गुरु साधक को एक कोआन देता है। और कहता है कि इस पर विचार करो। यह कोआन जान बूझ कार विचार को बंद करने के लिए दी जीती है। उदाहरण के लिए वे साध से कहता है: ‘जाओ और पता लगाओ कि तुम्हारा मौलिक चेहरा क्या है, वह चेहरा जो तुम्हारे जन्म के भी पहले था। अभी जो तुम्हारा चेहरा है उस पर मत विचार करो, उस चेहरे पर विचार करो जो जन्म के पहले था।’
तुम इस संबंध में क्या सोच विचार कर सकते हो। जन्म के पहले तुम् हारा कोई चेहरा नहीं था। चेहरा तो जन्म के साथ आता है। चेहरा तो शरीर का हिस्सा है। तुम्हारा कोई चेहरा नहीं है। चेहरा शरीर का है। आंखें बंद करो और कोई चेहरा नहीं हे। तुम अपने चेहरे के बारे में दर्पण के द्वारा जानते हो। तुमने खुद उसे कभी देखा नहीं है। तुम उसे देख भी नहीं सकते हो। तो कैसे मौलिक चेहरे के संबंध में सोच-विचार कर सकते हो।
लेकिन साधक चेष्टा करता है। और यह चेष्टा करना ही मदद करता है। साधक चेष्टा वर चेष्टा करेगा—और यह असंभव चेष्टा है। यह बार-बार गुरु के पास आएगा और कहेगा। ‘क्या मौलिक चेहरा यह है?’ लेकिन उसके पूछने के पहले ही गुरू कहता है: ‘नहीं,यह गलत है।’ तुम जो कुछ भी लाओगे वह गलत होने ही बाला है।
साधक महीनों तक बार-बार आता जाता रहता है। कुछ खोजता है, कुछ कल्
पना करता है। कोई चेहरा देखता है और गुरु से कहता है: ‘यह रहा मौलिक चेहरा।’ और गुरु फिर कहता है: नहीं। हर बार उसे यह नहीं सुनने को मिलता है। और धीरे-धीरे वह बहुत ज्यादा भ्रमित हो जाता है। उलझन ग्रस्त हो जाता है। वह कुछ सोच नहीं पाता है। वह हर तरह से प्रयत्न करता है। और हर बार असफल होता है। यह असफलता ही बुनियादी बात है। किसी दिन वह समस्त असफलता पर पहूंच जाता है। उस समग्र असफलता में सब सोच-विचार ठहर जाता है। और उसे बोध होता है। कि मौलिक चेहरे के संबंध में कोई सोच-विचार नहीं हो सकता है। और इस बोध के साथ ही सोच विचार गिर जाता है।
और जब साधक को इस अंतिम असफलता का बोध होता है। और वह गुरु के पास
आता है तो गुरु उससे कहता है: ‘अब कोई जरूरत नहीं है, मैं मौलिक चेहरा देख रहा हूं।’ साधक की आंखें शून्य है। वह गुरु से कुछ कहने नहीं, सिर्फ उनके सान्निध्य में रहने को आया है। उसे कोई उत्तर नहीं मिला; उत्तर था ही नहीं। वह पहली बार उतर के बाना आया है। कोई उत्तर नहीं है। वह मौन होकर आया है।
यहीं अ-मन की अवस्था है। इस अ-मन की अवस्था में ‘सीमित आत्मा असीम
हो जाती है।’ सीमाएं विलीन हो जाती है। और तुम अचानक सर्वत्र हो, सब कहीं हो। तुम अचानक सब कुछ हो। अचानक तुम वृक्ष में हो, पत्थर में हो, आकाश में हो, मित्र में हो, शत्रु में हो—अचानक तुम सक कही हो, सब में हो। सारा अस्तित्व दर्पण के समान हो गया है—और तुम सर्वत्र अपनी ही प्रति छवि देख रहे हो।
यहीं अवस्था आनंद की अवस्था है। अब तुम्हें कुछ भी अशांत नहीं कर सकता; क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त कुछ और नहीं है। अब कुछ भी तुम्हें

नहीं मिटा सकता, क्योंकि तुम्हारे सिवाय कोई और नहीं है। अब मृत्यु नहीं है। क्योंकि मृत्यु में भी तुम हो। अब कुछ भी तुम्हारे विरोध में नहीं है।
इस एकाकीपन को महावीर ने कैवल्य कहा है—समग्र एकांत। एकांत क् यों? क्योंकि सब कुछ तुममें समाहित है, सब कुछ तुममें है।
तुम इस अवस्था को दो ढंगों से अभिव्यक्त कर सकते हो। तुम कह सकते
हो, क्योंकि मैं हूं, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। मैं परमात्मा हूं। मैं समग्र हूं। सब कुछ मेरे भीतर आ गया है। सारी नदिया मेरे सागर में विलीन हो गई है। अकेला मैं ही हूं; और कुछ भी नहीं हूं। सूफी संत यही कहते है। और मुसलमान कभी नहीं समझ पाते कि क्यों सूफी ऐसी बातें कहते है। एक सूफी कहता है: ‘कोई परमात्मा नहीं है, केवल मैं हूं।’ या वह कहता है: ‘मैं परमात्मा हूं।’ यह विधायक ढंग है कहने का कि अब कोई पृथकता न रही। बुद्ध नकारात्मक ढंग। उपयोग करते है; वे कहते है: मैं न रहा, कुछ भी नहीं रहा।
दोनों बातें सच है, क्योंकि जब सब कुछ मुझमें समाहित है तो अपने ‘’मै’’कहने में कोई तुक नहीं है। ‘’मैं’’ सदा ही ‘’तू’’ के विरोध में है। ‘तू’ के संदर्भ में ‘मैं’ अर्थपूर्ण है। जब तूँ न रहा तो ‘मैं व्यर्थ हो गया। इसीलिए बुद्ध कहते है कि ‘मैं’ नहीं हूं, कुछ नहीं है।’
या तो सब कुछ तुममें समा गया है, या तुम शून्य हो गए हो। और सबमें विलीन हो गए हो। दोनों अभिव्यक्तियां ठीक है।
निशचित ही कोई भी अभिव्यक्ति पूरी तरह सही नहीं हो सकती है। यही कारण है कि विपरीत अभिव्यक्ति भी सदा सही है। प्रत्येक अभिव्यक्ति आंशिक है, अंश है; इसीलिए विरोधी अभिव्यक्ति भी सही है। विरोधी अभिव् यक्ति भी उसका ही अंश है।
इसे स्मरण रखो। तुम जो वक्तव्य देते हो वह सच हो सकता है। और उसका विरोध वक्तव्य भी, बिलकुल विरोधी वक्तव्य भी सच हो सकता है। वस्तुत: यह होना अनिवार्य है। क्योंकि प्रत्येक वक्तव्य अंश मात्र है। और अभिव् यक्ति के दो ढंग है। तुम विधायक ढंग चुन सकते हो या नकारात्मक ढंग चून सकते हो। अगर तुम विधायक ढंग चुनते हो तो नकारात्मक ढंग गलत मालूम पड़ता है। लेकिन वह गलत नहीं है। वह परिपूरक है। वह दरअसल उसके विरोध में नहीं है।
तो तुम चाहे उसे ब्रह्म कहो या निर्वाण कहो, दोनों एक ही अनुभव की
तरफ इशारा करते है। और वह अनुभव यह है: ना-कुछ का विचार करने से तुम उसे जान लेते हो।
इस विधि के संबंध में कुछ बुनियादी बातें समझ लेनी चाहिए। एक कि विचार करते हुए तुम अस्तित्व से पृथक हो जाते हो। विचार करना कोई संबंध नहीं है; वह कोई संवाद नहीं है। विचार करना अवरोध है। निर्विचार में तुम अस्तित्व से संबंधित होते हो, जुड़ते हो; निर्विचार में तुम संवाद में होते हो।
जब तुम किसी से बात चीत करते हो तो तुम उससे जुड़े नहीं हो। बातचीत
ही बाधा बन जाती है। और तुम जितना ही बोलते हो तुम उससे उतने ही दूर हट जाते हो। अगर तुम किसी के साथ मौन में होते हो तो तुम उससे जुड़ते हो। अगर तुम दोनों का मौन सच ही गहन हो, अगर तुम्हारे मन में कोई विचार न हो, दोनों के मन पूरी तरह मौन हों—तो तुम एक हो।
दो शुन्य दो नहीं हो सकते, दो शून्य एक हो जाते है। अगर तुम दो शुन्
यों को जोड़ों तो वे दो नहीं रहते। वे मिलकर एक बड़ा शून्य हो जाते है।
और अगर तुम किसी के साथ मौन में होते हो तो तुम उससे जुड़ते हो। अगर तुम दोनों को मौन सच ही गहन हो, अगर तुम्हारे मन में कोई विचार न हो, दोनों के मन पूरी तरह मौन हो—तो तुम एक हो।

यह विधि कहती है कि अस्तित्व के साथ मौन होओ। और तब तुम परमात्मा
को जान लोगे। अस्तित्व के साथ संवाद का एक ही साधन है,मौन। यदि तुम अस् तित्व से बातचीत करते हो तो तुम चूकते हो। तब तुम अपने विचारों में ही बंद हो।
इसे प्रयोग की तरह करो। किसी चीज के साथ भी, एक पत्थर के साथ भी इसे प्रयोग करो। पत्थर के साथ मौन होकर रहो; उसे अपने हाथ में ले लो और मौन हो जाओ। और संवाद घटित होगा। मिलन घटित होगा। तुम पत्थर में गहरे प्रवेश कर जाओगे और पत्थर तुममें गहरे प्रवेश कर जाएगा। तुम्हारे रहस् य पत्थर के प्रति खुल जाएंगे। और पत्थर और रहस्य तुम्हारे प्रति प्रकट कर देगा। लेकिन तुम पत्थर के साथ भाषा का उपयोग नही कर सकते हो। पत्थर कोई भाषा नहीं जानता है। और चूंकि तुम भाषा का उपयोग करते हो, तुम उसके साथ संबंधित नहीं हो सकते।
मनुष्य ने मौन बिलकुल खो दिया है। जब तुम कुछ नहीं कर रहे होते हो
तो भी तुम मौन नहीं हो। मन कुछ न कुछ करता ही रहता है। और इस निरंतर की भीतरी बातचीत के कारण,इस सतत आंतरिक बकवास के कारण तुम किसी के भी साथ संबंधित नहीं होते हो। तुम अपने प्रियजनों के साथ भी संबंधित नहीं हो सकते, क्योंकि यह बातचीत चलती रहती है।
तुम अपनी पत्नी के साथ बैठे हो सकते हो; लेकिन तुम अपने भीतर बातचीत में लगे हो और तुम्हारी पत्नी अपने भीतर बातचीत में लगी है। तुम दोनों अपने-अपने भीतर बातचीत में लगे हो और तुम्हारी पत्नी अपने भीतर बातचीत में लगी है। तब तुम एक दूसरे को दोष देते हो। कि तुम मुझे ‘प्रेम नही करते हो।’
असल में प्रेम का प्रश्न ही नहीं है। प्रेम संभव ही नहीं है। प्रेम मौन का फूल है। प्रेम का फूल मौन से खिलता है। मौन मिलन में खिलता है। यदि तुम निर्विचार नहीं हो सकते हो तो तुम प्रेम में भी हो सकते हो। और फिर प्रार्थना में होना तो असंभव ही है।
लेकिन हम तो प्रार्थना करते हुए भी बातचीत में लगे हो। हमारे लिए प्रार्थना परमात्मा के साथ बातचीत है। हम बातचीत के इतने अभ्यस्त हो गए है, इतने संस्कारित हो गए है, कि जब हम मंदिर या मस्जिद भी जाते है तो वहां भी अपनी बकवास जारी रखते है। हम परमात्मा के साथ भी बोलते रहते है। बातचीत करते रहते है।
यह बिलकुल मूढ़ता पूर्ण हे। परमात्मा या अस्तित्व तुम्हारी भाषा नहीं समझ सकता है। अस्तित्व एक ही भाषा समझता है—मौन की भाषा और मौन न संस्कृत है, न अरबी, न अंग्रेजी, न हिंदी। मौन जागतिक है। मौन किसी एक का नहीं है।
पृथ्वी पर कम से कम चार हजार भाषाएं है। और प्रत्येक मनुष्य अपनी भाषा के घेरे में बंद है। अगर तुम उसकी भाषा नहीं जानते हो तो तुम उसके साथ संबंधित नहीं हो सकते हो। तब तुम एक दूसरे के लिए अजनबी हो। हम एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते है। न ही हम एक दूसरे को समझ सकते है और न ही एक दूसरे को प्रेम कर सकते है।
ऐसा इस लिए है; क्योंकि हमें वह बुनियादी जागतिक भाषा नहीं आती।
जो मौन की है। सच तो यह है कि मौन के द्वारा ही कोई किसी से संबंधित हो सकता है। और अगर तुम मौन की भाषा जानते हो तो तुम किसी भी चीज के साथ संबंधित हो सकते हो। जुड़ सकते हो। क्योंकि चट्टानें मौन है। वृक्ष मौन है। आकाश मौन है। मौन अस्तित्वगत है। यह मानवीय गुण ही नहीं है, यह अस् तित्वगत है। सबको पता है कि मौन क्या है, सबका अस्तित्व मौन में ही है। ध्यान का अर्थ मौन है। कोई विचार नहीं। विचार बिलकुल खो गए है। ध्
यान है मात्र होना—खुला,ग्रहणशील, तत्पर, मिलने को उत्सुक, स्वागत में, प्रेमपूर्ण—लेकिन वहां सोच-विचार बिलकुल नहीं है। और तब तुम्हें अनंत

प्रेम घटित होगा। और तुम यह कभी नहीं कहोगे कि कोई मुझे प्रेम नहीं करता है। तुम यह कभी नहीं कहोगे, तुम्हें कभी यह भाव भी नहीं उठेगा।
अभी तो तुम कुछ भी करो, तुम यही कहोगे कि कोई मुझे प्रेम नहीं करता
है। और तुम्हें यह भाव भी उठेगा कि कोई मुझे प्रेम नहीं देता है। हो सकता है कि तुम यह नहीं कहो; तुम यह दिखावा भी कर सकते हो कि कोई मुझे प्रेम करता है। लेकिन गहरे में तुम जानते हो कि कोई तुम्हें प्रेम नहीं करता है।
प्रेमी भी एक दूसरे से पूछते रहते है: ‘क्या तुम मुझे प्रेम करते
हो?’ अनेक ढंगों से वे निरंतर यही बात पूछते रहते है। सब डरे हुए है। सब अनिश्चित में है, सब असुरक्षित है। बहुत तरीकों से वे यह जानते कि कोशिश करते है। कि दूसरा सच में मुझे प्रेम करता है। और उन्हें कभी भरोसा नहीं हो सकता हे। क्योंकि प्रेमी कह सकता है कि हां, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं; लेकिन इसका भरोसा क्या? तुम्हें पक्का कैसे होगा? तुम कैसे जानोंगे कि प्रेमी तुम्हें धोखा नहीं दे रहा है? वह तुम्हें समझा बुझा सकता है। वह तुम्हें यकीन दिला सकता है। लेकिन इससे सिर्फ बुद्धि संतुष्ट हो सकती है, ह्रदय तृप्त नहीं होगा।
प्रेमी-प्रेमी का सदा दुःखी रहते है। उन्हें कभी इस बात का पक्का भरोसा नहीं होता कि दूसरा मुझे प्रेम करता है। तुम्हें कैसे भरोसा आ सकता है। असल में भाषा के जरिए भरोसा देने का कोई उपाय नहीं है। और तुम भाषा के जरिए पूछ रहे हो। कह रहे हो। और जब प्रेमी मौजूद है तो तुम मन में बातचीत में उलझे हो, प्रश्न पूछ रहे हो। विवाद कर रहे हो। तुम्हें कभी भरोसा नहीं आएगा। और तुम्हें सदा लगेगा कि मुझे प्रेम नहीं मिल रहा है। और यही गहन संताप बन जाता है।
और ऐसा इसलिए नहीं होता है कि कोई तुम्हें प्रेम नहीं करता
हे। ऐसा इसलिए होता है कि तुम बंद हो, तुम विचारों में बंद हो। वहां कुछ भी प्रवेश नहीं कर पाता है। विचारों में प्रवेश नही किया जा सकता है। उन्हें गिराना होगा। और अगर तुम उन्हें गिरा देते हो तो सारा अस्तित्व तुममें प्रवेश कर जाता है।
ये सूत्र कहता है: ‘ना-कुछ का विचार करने से सीमित आत्मा असीम हो जाती है।’
तुम असीम हो जाओगे। तुम पूर्ण हो जाओगे। तुम जागतिक हो जाओगे। तुम
सब कहीं होगे। और तुम आनंद ही हो।
अभी तुम दुःख ही दुःख हो और कुछ नहीं। जो चालाक है वे अपने को धोखे
में रखते है कि हम दुःखी नहीं है। या वे इस आशा में रहते है कि कुछ बदलेगा,कुछ घटित होगा। और हमें अपने जीवन के अंत में सब उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन तुम दुःखी हो। तुम दिखावे और धोखे निर्मित कर सकते हो। तुम मुखौटे ओढ़ सकते हो। तुम निरंतर मुस्कराते रह सकते हो। लेकिन गहरे में तुम जानते हो कि मैं दुःखी हूं, पीड़ित हूं।
यह स्वाभाविक है। विचारों में बंद रहकर तुम दुःख में ही रहोगे।
विचारों से मुक्त होकर, विचारों के पार होकर—सजग। सचेतन, बोधपूर्ण, लेकिन विचारों से अछूते—तुम आनंद ही आनंद हो।
आज इतना ही।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-57

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—86 (ओशो)

‘भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे है, जो पकड़ के परे है। जो अनस्तित्व के, न होने के परे है—मैं।’
‘’भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज कीं चिंतना करता हूं जो दृष्टि के
परे है।‘’ जिसे देखा नहीं जा सकता। लेकिन क्या तुम किसी ऐसी चीज की कल् पना कर सकते हो जो देखी न जा सके। कल्पना तो सदा उसकी होती है जो देखी जा सके। तुम उसकी कल्पना कैसे कर सकते हो, उसका अनुमान कैसे कर सकते हो। जो देखी ही न जा सके। तुम उसकी ही कल्पना कर सकते हो जिसे तुम देख सकते हो। तुम उस चीज का स्वप्न भी नहीं देख सकते जो दृश्य न हो। जो देखी न जा सके। यही कारण है कि तुम्हारे सपने भी वास्तविकता की छायाएं है। तुम्हारी कल्पना भी शुद्ध कल्पना नहीं है; क्योंकि तुम जो भी कल्पना करते हो उसे उस संयोजन के सभी तत्व परिचित होंगे, जाने-माने होंगे।
तुम कल्पना कर सकते हो कि एक सोने का पहाड़ आकाश में बादलों की भांति उड़ा जा रहा है। तुमने कभी ऐसी चीज नहीं देखी है। लेकिन तुमने बादल देखा है; तुमने पहाड़ देखा है; तुमने सोना देखा है। ये तीन तत्व इकट्ठे किए जा सकते है। तो कल्पना कभी मौलिक नहीं होती; वह सदा ही उनका जोड़ होती है जिन्हें तुमने देखा है।
यह विधि कहती है: ‘भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं
जो दृष्टि के परे है।’
यह असंभव है। लेकिन इसीलिए यह प्रयोग करने लायक है। क्योंकि इसे करने में ही तुम्हें कुछ घटित हो जाएगा। ऐसा नहीं कि तुम देखने में सक्षम हो जाओगे। लेकिन अगर तुम उसे देखने की चेष्टा करोगे जो देखी न जा सके तो सारा दर्शन खो जाएगा। ऐसी चीज के देखने के प्रयत्न में तुमने जो भी देखा है वह सब विलीन हो जाएगा।
अगर तुम इस प्रयत्न में धैर्यपूर्वक लगे रहे तो अनेक चित्र, अनेक बिंब तुम्हारे सामने प्रकट होंगे। तुम्हें उन प्रतिबिंबों को इनकार कर देना है, क्योंकि तुम जानते हो कि तुमने उन्हें देखा है। वे देखे जा सकते है। हो सकता है कि तुमने उन्हें बिलकुल वैसे ही न देखा हो जैसे वे है; लेकिन यदि तुम उनकी कल्पना कर सकते हो तो वे देखे भी जा सकते है। उन् हें अलग हटा दो। और इसी तरह अलग करते चलो। यह विधि कहती है कि जो नहीं देखा जा सकता उसे देखने के प्रयत्न में लगे रहो।
यदि तुम मन में उभरने वाले प्रतिबिंबों को हटाते गए तो क्या होगा?
यह कठिन होगा क्योंकि अनेक चित्र उभर कर सामने आएँगे। तुम्हारा मन अनेक चित्र, अनेक बिंब, अनेक सपने सामने ले आएगा। अनेक धारणाएं आएँगी। अनेक प्रतीक पैदा होंगे। तुम्हारा मन नए-नए दृश्य निर्मित करेगा। लेकिन उन् हें हटाते चलो, जब तक कि तुम्हें वह न घटित हो जो अदृश्य है। क्या है वह? यदि तुम हटाते ही गए तो बाहर से तुम्हें कुछ घटित नहीं होगा। सिर्फ मन का पर्दा खाली हो जाएगा। उस पर कोई चित्र कोई प्रतीक कोई बिंब, कोई सपने नहीं होंगे। उस क्षण में रूपांतरण घटित होता है। जब खाली पर्दा रहता है, उस पर कोई चित्र नहीं रहता, उस क्षण में तुम्हें अपना बोध होता है। सारी चेतना पीछे लौट कर देखने लगती है। स्वमुखी हो जाती है। जब तुम्हें देखने को कुछ नहीं होता है तब तुम्हें पहली बार स्वयं का बोध होता है। तब तुम स्वयं को देखते हो।
यह सूत्र कहता है: ‘भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं
जो दृष्टि के परे है, जो पकड़ के परे है। जो अनस्तित्व के, अन होने के परे है—मैं।’
तब तुम स्वयं को उपलब्ध होते हो। स्वयं होते हो। तब तुम पहली दफा
उसे जानते हो। जो देखता है। जो समझता है, जो जानता है। लेकिन यह जानने वाला सदा विषयों मैं छिपा होता है। तुम चीजों को तो जानते हो, लेकिन तुम

कभी जानने वाले को नहीं जानते हो। ज्ञाता ज्ञान में खोया रहता है। मैं तुम्हें देखता हूं और फिर किसी दूसरे को देखता हूं,और यह जुलूस चलता रहता है। जन्म से मृत्यु तक मैं हजार-हजार चीजें देखता हूं। और जो दृष् टा है, जो इस जुलूस को देखता है, वह भूल गया है। वह भीड़ में खो गया है। भीड़ विषयों की और द्रष्टा उसमें खो गया है।
यह सूत्र कहता है कि अगर किसी ऐसी चीज की चिंतना करने की चेष्टा करते हो जो दृष्टि के परे है। पकड़ के परे है। जिसे तुम मन से नहीं पकड़ सकते—और जो अनस्तित्व के, न होने के भी परे है। तो तुरंत मन कहेगा कि अगर कोई चीज देखी नहीं जा सकती और पकड़ी नहीं जा सकती तो वह चीज है ही नहीं। मन तुरंत प्रतिक्रिया करेगा कि अगर कोई चीज अदृष्य और अग्राह्य है तो वह नहीं है। मन कहेगा कि वह नहीं है, असंभव है।
इस मन की बातों में मत पड़ो। यह सूत्र कहता है: ‘दृष्टि के परे, पकड़ के परे, अनस्तित्व के परे।‘ मन कहेगा कि ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता। यह असंभव है। सूत्र कहता है कि इस मन का विश्वास मत करो। कुछ हो जो अनस्तित्व के परे अस्तित्ववान है, जो है और फिरा भी देखा नहीं जा सकता, पकड़ा नहीं जा सकता। वह तुम हो।
तुम अपने को नहीं देख सकते हो। या देख सकते हो? क्या तुम किसी एक
ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकते हो। जिसमें तुम अपना साक्षात्कार कर सको। जिसमें तुम अपने को जान सको? तुम आत्म ज्ञान शब्द को दोहराते रह सकते हो। लेकिन वह एक अर्थ हीन शब्द है। क्योंकि तुम स्वयं को, अपने को नहीं जान सकते हो। आत्मा सदा ज्ञाता है। उसे ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता है।
उदाहरण के लिए, अगर तुम सोचते हो कि मैं आत्मा को जान सकता हूं तो
जिस आत्मा को तुम जानोंगे वह तुम्हारी आत्मा नहीं होगी। आत्मा तो वह होगी जो इस आत्मा को जान रही है। तुम सदा ज्ञाता रहोगे। तुम सदा ही पीछे रहोगे। तुम जो भी जानोंगे वह तुम नहीं हो सकते। इसका यह अर्थ है कि तुम स्वयं को नहीं जान सकते हो। तुम स्वयं को उस भांति नहीं जान सकते हो जिस भांति अन्य चीजों को जानते हो।
मैं अपने को उस भांति नही देख सता जिस भांति मैं तुम्हें देखता हूं। देखेगा कौन? क्योंकि ज्ञान, दृष्टि दर्शन का अर्थ है कि वहां कम से कम दो है: जानने वाला और जाना जाने वाला। इस अर्थ में आत्मज्ञान संभव नहीं है; क्योंकि वहां एक ही है। वहां ज्ञाता और ज्ञेय एक है; वहां द्रष् टा और दृश्य एक है। तुम अपने को विषय नहीं बना सकते हो।
इसलिए आत्मज्ञान शब्द गलत है। लेकिन यह कुछ कहता है। कुछ इशारा करता है। जो कि सच है। तुम अपने को जान सकते हो, लेकिन यह जानना उस जानने से भिन्न होगा। बिलकुल भिन्न होगा। जब सभी विषय खो जाते है, जब जो भी देखा और ग्रहण किया जा सकता है वह विदा हो जाता है। जब तुम सबको अलग कर देते हो, तब तुम्हें अचानक स्वयं का बोध होता है। और यह बोध द्वंद्वात् मक नहीं है। इसमें दो नहीं है। इसमें आब्जेक्ट्स ओर सब्जैक्ट नहीं है। यह अद्वैत है, अखंड है।
यह बोध एक भिन्न ही भांति का जानना है। यह बोध तुम्हें अस्तित्व
का एक भिन्न ही आयाम देता है। तुम दो में नहीं बंटे हो; तुम स्वयं के प्रति बोधपूर्ण हो। तुम उसे देख नहीं रहे, तुम उसे पकड़ नहीं सकते हो; और बावजूद वह है—पूरी तरह है।
इसे इस तरह समझो, हमारे पास ऊर्जा है; वह ऊर्जा विषयों की तरफ बही
जा रही है। ऊर्जा गतिहीन नहीं हो सकती है। कहीं ठहरी हुई नहीं है। स्मरण रहे, अस्तित्व के परम नियम में एक नियम यह है कि ऊर्जा गतिहीन नहीं हो सकती, वह गत्यात्मक है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। उसे सतत गतिमान रहना है। गत्यात्मकता उसका स्वभाव है। ऊर्जा सतत गतिमान है।

तो जब मैं तुम्हें देखता हूं तब मेरी ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहती है।
जब मैं तुम्हें देखता हूं तो एक वर्तुल बन जाता है। मेरी ऊर्जा तुम् हारी तरफ बहती है। और फिर मेरी तरफ बहती है। इस तरह एक वर्तुल निर्मित होता है। यदि मेरी ऊर्जा तुम्हारी तरफ जाए, लेकिन मेरी तरफ वापस न आए तो मैं नहीं जान पाऊंगा। एक वर्तुल जरूरी है। ऊर्जा को जाना चाहिए और फिर लौट कर आना चाहिए।
ज्ञान का अर्थ है ऊर्जा ने एक वर्तुल बनाया है। उसने भीतर से बाहर
की तरफ गति की; और फिर वह वापस मूल स्त्रोत पर लौट आई। अगर मैं इसी भांति जीता रहूँ, दूसरों के साथ वर्तुल बनाता रहूँ, तो मैं कभी स्वयं को नहीं जान पाऊंगा। क्योंकि मेरी ऊर्जा दूसरों की ऊर्जा से भरी है। वह दूसरों के प्रभा, दूसरों के प्रतिबिंब मुझे देती जाती है। इसी भांति तो तुम ज्ञान इकट्ठा करते हो।
यह विधि कहती है कि विषय को विलीन हो जाने दो अपनी ऊर्जा को रिक्
तता में,शून्य में गति करने दो। वह तुम्हारी और से चलती तो है, लेकिन कोई विषय वहां नहीं है। जिसे वह पकड़ या जिसे देखे। तो वह शून्यता से गुजर कर तुम्हारे पास लौट आती है। वहां कोई विषय नहीं है। वह तुम्हारे लिए कोई जानकारी नहीं लाती है। वह खाली रिक्त और शुद्ध लौट आती है। वह अपने साथ कुछ नहीं लाती है। वह कुंवारी की कुंवारी है; कुछ भी उससे प्रविष्ट नहीं हुआ है। वह विशुद्ध है।
यही ध्यान की पूरी प्रक्रिया है। तुम शांत बैठे हो और तुम्हारी ऊर्जा गति कर रही है। वहां कोई विषय नहीं है, जिससे वह दूषित हो सके। जिससे वह आबद्ध हो सके, जिससे वह प्रभावित हो सके। जिसके साथ वह एक हो सके। तब तुम उसे अपने पर लौटा लेते हो। वहां कोई विषय नहीं है। कोई विचार नहीं है। कोई प्रतिबिंब नहीं है। ऊर्जा गति करती है। उसकी गति शुद्ध है। और वह शुद्ध ओर कुंवारी ही तुम्हारे पास लौट आती है। जिस अवस् था में वह तुमसे गई थी उसी अवस्था में वह लौट आती है। अपने साथ कुछ भी नहीं लाती है। वह सिर्फ अपने को अपने साथ लाती है। और शुद्ध ऊर्जा के उस प्रवेश में तुम स्वयं के प्रति बोध से भर जाते हो।
यदि ऊर्जा अपने साथ कोई जानकारी लाए तो तुम उस चीज के प्रति हो बोधपूर्ण होगे। तुम एक फूल को देखते हो। तुम्हारी ऊर्जा फूल पर जाली है। और उस फूल को फूल, फूल के प्रतिबिंब को, फूल के रंग को, फूल की गंध को अपने साथ ले आती है। ऊर्जा फूल को तुम्हारे पास ल रही है। वह तुम्हें फूल की जानकारी देती है। ऊर्जा फूल से आच्छादित है। तुम कभी उस शुद्ध ऊर्जा से परिचित नही हो सकते। तुम दूसरों की तरफ जाते हो और स्त्रोत पर लौट आते हो।
अगर इस ऊर्जा को कुछ भी प्रभावित न करे, अगर वह अप्रभावित संस्कारित, अस्पर्शित लौट जाए, अगर वह वैसी की वैसी लौट आए जैसी गई थी। अगर वह शुद्ध लौट आये तो कुछ साथ न लाए। तो तुम स्वयं को जानते हो। यह ऊर्जा का शुद्ध वर्तुल है। अब ऊर्जा कहीं बाहर न जाकर तुम्हारे भीतर ही गति करती है। तुम्हारे भीतर ही वर्तुल बनाती है। अब कोई दूसरा नहीं है। तुम स्वयं अपने में गति करते हो। यह गति ही आत्म-प्रकाश बन जाती है। आत् मज्ञान, आत्मबोध बन जाती है। बुनियादी तौर से सब ध्यान विधियां इसी के अलग-अलग प्रकार है।
‘भाव करो कि मैं किसी ऐसी चीज की चिंतना करता हूं जो दृष्टि के परे
है। जो पकड़ के परे है। जो अनस्तित्व के, न होने के परे है—मैं।’
अगर यह हो सके तो तुम पहली दफा स्वय को जानोंगे। स्वयं के अस्तित्
व को अस्तित्व को जानोंगे। जानने वाले को, आत्मा को जानोंगे।
ज्ञान दो प्रकार का है: विषयगत ज्ञान और आत्मगत ज्ञान। एक तो विषय
का ज्ञान है और दूसरा स्वयं का ज्ञान है। और कोई आदमी चाहे लाखों चीजें

जान ले। चाहे वह पूरे जगत को जान ले। लेकिन अगर वह स्वयं को नहीं जानता है तो वह अज्ञानी है। वह जानकार हो सकता है। पंडित हो सकता है। लेकिन वह प्रज्ञावान नहीं है। संभव है कि वह बहुत जानकारी इकट्ठी कर ले। बहुत ज्ञान इकट्ठा कर ले, लेकिन उसके पास उस बुनियादी चीज का अभाव है जो किसी को प्रज्ञावान बनाता है। वह स्वयं को नहीं जानता है।
उपनिषदों में एक कथा है। एक युवक, श्वेतकेतु, अपने गुरु के आश्रम
से शिक्षा प्राप्त कर के घर आता है। उसने सभी परीक्षाए उत्तीर्ण कर ली थी। और उसने उनमें विशिष्टता हासिल की थी। गुरु जो भी उसे दे सके, उसने सब संजो कर रख लिया था। और वह बहुत अंहकार से भर गया था।
जब वह अपने पिता के घर पहुंचा तो पहली बात जो पिता ने पूछी वह यह
थी: ‘तुम ज्ञान से बहुत भरे हुए मालूम पड़ते हो और तुम्हारे ज्ञान ने तुम्हें बहुत अहंकारी बना दिया है। यह तुम्हारे चलने के ढंग से—जिस ढंग से तुमने घर में प्रवेश किया—प्रकट होता है। मुझे तुमसे एक ही प्रश्न पूछना है, क्या तुमने उसे जान लिया है जिस के जानने से सब जाना लिया जाता है। तुम स्वय को जान गये हो।’
श्वेतकेतु ने कहा: ‘लेकिन हमारे विद्यापीठ के पाठय क्रम में यह नहीं था। हमारे गुरु ने इसकी कोई चर्चा नहीं की। मैंने सब जान लिया है जो जाना जा सकता है। आप मुझ कुछ भी पूछे और मैं उत्तर दूँगा। लेकिन यह जो आप पूछ रहे है। यह तो कभी बताया ही नहीं गया।’
पिता ने कहा: ‘फिर तुम वापस जाओ। और जब तक उसे नह जान लो जिसे जानकर
सब जान लिया जाता है। और जिसे जाने बिना कुछ भी नहीं जाना जाता। तब तक घर मत लौटना। पहले स्वयं को जानो।’
श्वेतकेतु वापस गया। उसने गुरू से कहा: ‘मेरे पिता ने कहा कि तुम्
हें घर में नहीं आने दिया जाएगा, इस घर में तुम्हारा स्वागत नहीं होगा; क्योंकि हमारे कुल में हम जन्म से ही ब्राह्मण नहीं है। हम ब्रह्म को जानकर ब्राह्मण है। हम ब्राह्मण जन्म से ही नहीं है, प्रामाणिक ज्ञान को प्राप्त करके हम ब्राह्मण है। तो जब तक तुम सच्चे ब्राह्मण न हो जाओ — जो जन्म से नहीं बह्म को जानकर हुआ जाता है। तब तक इस घर में प्रवेश मत करना। तुम हमारे योग्य नहीं हो। इसलिए अब आप मुझे वह ज्ञान सिखाएं।’ गुरु ने कहा: ‘जो भी सिखाया जा सकता है। वह सब मैंने तुम्हें सिखा दिया है। और तुम जिसकी बात कर रहे हो वह सिखाया नहीं जा सकता है। तो तुम एक काम करो; तुम बस इसके प्रति उपलब्ध रहो, इसके प्रति खुल रहो। यह ज्ञान सीधे-सीधे नहीं सिखाया जा सकता है। तुम सिर्फ खुले रहो। और किसी दिन घटना घट जाएगी। तुम आश्रम की गायों को ले जाओ।’ आश्रम में बहुत गायें थी। कहते चार सौ गाये थी—गुरु ने श्वेतकेतु से कहा: ‘तुम गायों को जंगल ले जाओ और गायों के साथ रहो। विचार करना बंद कर दो। शब्दों को छोड़ो; पहले गाय बनो। गायों के साथ रहो, उन्हें प्रेम करो, और वैसे ही मौन हो जाओ। जैसे गायें मौन है। जब गायें के साथ रहो, उन्हें प्रेम करो, और वैसे ही मौन हो जाओ जैसे गायें मौन है। और जब गायें एक हजार हो जाएं तब वापस आ जाना।’
श्वेतकेतु चार सौ गायों को लेकर जंगल चला गया। वहां सोचविचार का
कोई उपयोग नहीं था। वहां कोई नहीं था। जिसके साथ बातचीत की जा सके। उसका चित धीरे-धीरे गाय जैसा हो गया। वह वृक्षों के नीचे मौन बैठा रहता था। और ऐसे वर्षो बीत गए, क्योंकि वह तभी वापस जा सकता था। जब गाएं एक हजार हो जाएं। धीरे-धीरे उसके मन से भाषा विलीन हो गई। धीरे-धीरे समाज उसके मन से विदा हो गया। धीरे-धीरे वह मनुष्य भी नहीं रहा;उसकी आंखें गायों की आंखों जैसी हो गई। वह गायों जैसा ही हो गया।
और कहानी बहुत सुंदर है। कहानी कहती है कि श्वेतकेतु गिनना भूल गया। क्योंकि अगर भाषा विलीन हो जाए, शब्द जाल खो जाए तो गिनना कैसा। वह

भूल गया कि कैसे गिनती की जाती है। वह यह भी भूल गया कि वापस जाना है। और आगे की कहानी तो और भी सुंदर है। तब गायों ने कि: ‘श्वेतकेतु,अब हम हजार हो गई है। अब हम गुरु के घर लौट चलें। गुरु हमारी प्रतीक्षा करते होंगे।’
श्वेतकेतु वापस आया। और गुरु ने दूसरे शिष्यों से कहा: ‘गायों की गिनती करो।’ गायों की गिनती की गई। और शिष्यों ने गुरु से कहा: ‘’एक हजार गाएं है।‘’ गुरु ने कहा: ‘एक हजार नहीं, एक हजार एक गाए है—वह एक श् वेतकेतु है।’
श्वेतकेतु गायों के बीच खड़ा था—मौन,शांत; न कोई विचार था, न मन
था; वह बिलकुल गाय की भांति शुद्ध और सरल और निर्दोष हो गया था। और गुरू ने उससे कहा: ‘तुम्हें यहां आने की जरूरत नहीं है, तुम अपने पिता के घर वापस चले जाओ। तुमने जान लिया; घटना घट गई। तुम अब मेरे पास क्यों आए हो?’
घटना घटती है—जब चित में जानने के लिए कोई विषय नहीं रहता तो तुम जानने वाले को जानते हो। जब मन विचारों से खाली है, जब एक भी लहर नहीं है, एक भी कंपन नहीं है, तब तुम अकेले हो, स्वयं हो। तब तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो। एक आत्म–प्रकाश घटित होता है। आत्मबोध घटित होता है। यह सूत्र आधार भूत सूत्रों में एक है। इसे प्रयोग करो। प्रयोग कठिन है। क्योंकि विचार करने की आदत, विषयों से चिपकने की आदत, देखे जा सकने वाले और पकड़े जा सकने वाले विषयों की आदत इतनी गहरी है कि उससे मुक्त होने के लिए, विषयों में विचारों में फिर ग्रस्त न होकर मात्र साक्षी हो जाने के लिए, नेति-नेति कह कर सब को हटा देने के लिए बहुत समय और सतत श्रम की जरूरत होगी।
उपनिषदों की समस्त विधि का सार निचोड़ इन दो शब्दों में निहित है: ‘नेति-नेति। यह भी नहीं, यह भी नहीं। जो भी मन के सामने आए उसे कहो। यह भी नहीं। यह कहते जाओ और मन के सारे फर्नीचर को बाहर फेंकते जाओ। हटाते जाओ। कमरे को खाली कर देना है। बिलकुल खाली कर देना है। उसी खालीपन में घटना घटती है।’
अगर कुछ भी रह जाएगा तो तुम उससे प्रभावित होते रहोगे। और तब तुम अपने को नहीं जान सकोगे। तुम्हारी निर्दोषता विषयों में खो जाती है। विचारों से भरा मन बाहर भटकता रहता है। तब तुम स्वयं से नहीं जुड़ सकते। ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-59

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—87 (ओशो)

मैं हूं, यह मेरा है। यह-यह है। हे प्रिये, भाव में भी असीमत: उतरो।
‘मैं हूं।’ तुम इस भाव में कभी गहरे नहीं उतरते हो कि मैं हूं। है प्रिये, ऐसे भाव में भी असीमत: उतरो।
मैं तुम्हें एक झेन कथा कहता हूं। तीन मित्र एक रास्ते से गुजर
रहे थे संध्या उतर रही थी। और सूरज डूब रहा था। तभी उन्होंने एक साधु को नजदीक की पहाड़ी पर खड़ा देखा। वे लोग आपस में विचार करने लगे कि साधु क्या कर रहा है। एक ने कहा: ‘यह जरूर अपने मित्रों की प्रतीक्षा कर रहा है। वह अपने झोंपड़े से घूमने के लिए निकला होगा और उसके संगी-साथी पीछे छूट गए होंगे। वह उनकी राह देख रहा है।’

दूसरे मित्र ने इस बात को काटते हुए कहा: ‘यह सही नहीं है, अगर कोई व्यक्ति किसी की राह देखता है तो वह कभी-कभी पीछे मुड़ कर भी देखता है। लेकिन यह आदमी तो पीछे की तरफ कभी नहीं देखता है। इसलिए मेरा अनुमान है कि यह किसी की राह नहीं देख रहा है। बल्कि उसकी गाय खो गई है। सांझ निकट आ रही है। सूरज डूब रहा है। और जल्दी ही अँधेरा घिर जाएगा। इसलिए वह अपनी गाय की तलाश कर रहा है। वह पहाड़ी की चोटी पर खड़ा देख रहा है। जंगल में गाय कहां है।’
तीसरे मित्र ने कहा: ‘ऐसा नहीं हो सकता है। क्योंकि वह इतना शांत खड़ा है, जरा भी इधर-उधर नहीं हिलता है। ऐसा नहीं लगता है कि वह कहीं कुछ देख रहा है—उसकी आंखें भी बंद है। जरूर वह प्रार्थना कर रहा होगा। वह किसी खोई हुई गाय का या किन्हीं पीछे छूट गए मित्रों का इंतजार नहीं कर रहा है।’
इस तरह वह तर्क-वितर्क करते रहे। लेकिन किसी नतीजे पर नहीं पहूंच पाए। फिर उन्होंने तय किया कि हमें पहाड़ी पर चलकर खुद साधु से पूछना चाहिए कि आप क्या कर रहे है। और वे साधु के पास उपर गये। क्या आप अपने मित्र की प्रतीक्षा कर रहे है जो पीछे छूट गए है।
साधु ने आंखें खोली और कहा: मैं किसी की भी प्रतीक्षा में नहीं हूं। और मेरे न मित्र है और न शत्रु, जिनकी मैं प्रतीक्षा करूं। यह कह कर उसने आंखे बंद कर ली।
दूसरे मित्र ने कहा: ‘तब मैं जरूर सही हूं। क्या आप अपनी गाय को
खोज रहे है जो जंगल में खो गई है।’
साधु ने कहा: ‘नहीं मैं किसी को नहीं खोज रहा हूं—न गाय को और न किसी अन्य को। मैं स्वयं के अतिरिक्त किसी में भी उत्सुक नहीं हूं।’ तीसरे मित्र ने कहा: ‘’तब तो निश्चित ही आप कोई प्रार्थना या कोई ध्
यान कर रहे है।‘’
साधु ने फिर आंखे खोली और कहा: ‘मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं मैं बस यहां हूं।’
बौद्ध इसे ही ध्यान कहते है। अगर तुम कुछ करते हो तो वह ध्यान नहीं
है। तुम बहुत दूर चले गए। अगर तुम प्रार्थना करते हो तो वह ध्यान नहीं है; तुम बातचीत करने लगे। अगर तुम कोई शब्द उपयोग में लाते हो तो वह ध् यान नहीं है; मन उसमें प्रविष्ट हो गया। उस साधु ने ठीक कहा। उसने कहा: मैं यहां बस हूं, कुछ कर नहीं रहा हूं।
यह सूत्र कहता है: ‘मैं हूं।’
इस भाव में गहरे उतरो। बस बैठे हुए इस भाव में गहरे उतरो कि मैं मौजूद हूं। मैं हूं। इसे अनुभव करो;इस पर विचार मत करो। तुम अपने मन में कह सकते हो कि मैं हूं; लेकिन कहते ही वह व्यर्थ हो गया। तुम्हारा सिर सब गुड़ गोबर कर देता है। सिर में मत दोहराओं कि मैं जीता हूं, मैं हूं। कहना व्यर्थ है; कहना दो कौड़ी का है। तुम बात ही चूक गए। इसे अपने प्राणों में अनुभव करो। इसे अपने पूरे शरीर में अनुभव करो। केवल सिर में नहीं। इसे समग्र इकाई की भांति अनुभव करो। बस अनुभव करो: ‘मैं हूं।’ मैं हूं, इन शब्दों का उपयोग मत करो। क्योंकि मैं तुम्हें समझा
रहा हूं, इसलिए मुझे इन शब्दों का उपयोग करना पड़ रहा है। शिव पार्वती को समझा रहे थे। इसलिए उन्हें भी मैं हूं को शब्दों में कहना पडा।
तुम शब्दों का उपयोग मत करा। यह कोई मंत्र नहीं है। तुम्हें यह दोहराना नहीं है कि मैं हूं। अगर तुम दोहराओगे तो तुम सो जाओगे। तुम आत् म-सम्मोहित हो जाओगे।
जब तुम किसी चीज को दोहराते हो तो तुम आत्मा-सम्मोहित हो जाते हो। पहले दोहराने से ऊब पैदा होती है। और फिर तुम्हें नींद आने लगती है। और फिर होश खो जाता है। तुम इस आत्म-सम्मोहन में जब वापस आओगे तो बहुत ताजा

अनुभव करोगे—वैसे ही ताजा अनुभव करोगे, जैसे गहरी नींद से जागने पर करते हो।
यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। लेकिन यह ध्यान नहीं है। अगर तुम्
हें नींद न आती हो तो तुम मंत्र का उपयोग कर सकते हो। मंत्र बिलकुल ट्रैंक्विलाइजर जैसा है—उससे भी बेहतर। तुम किसी शब्द को निरंतर दोहराते रहो, उसका एकसुरा जाप करते रहो। और तुम्हें नींद लग जाएगी। जो भी चीज ऊब लाती है। वह नींद पैदा करती है।
मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक अनिद्रा से पीड़ित लोगों को सलाह देते है कि घड़ी की टिक-टिक सुनते रहो और तुम्हें नींद आ जाएगी। यह टिक-टिक लोरी का काम करता है। मां के गर्भ में बच्चा निरंजन नौ महीने तक सोया रहता है। मां का ह्रदय निरंतर धड़कता रहता है और वह धड़कन नींद का कारण बन जाती है।
यही कारण है कि जब तुम्हें कोई अपने ह्रदय से लगा लेता है तो तुम्
हें अच्छा लगाता है। उस धड़कन के पास तुम्हें अच्छा लगता है। तुम विश्राम अनुभव करते हो। जो भी चीज एकरसता पैदा करती है उसे विश्राम मिलता है। तुम सो जाते हो।
तुम गांव में शहर के मुकाबले ज्यादा नींद ले सकते हो। क्योंकि गांव का जीवन एकरस है, सपाट है, उबाऊ है। शहर का जीवन भिन्न है। यहां प्रतिपल कुछ न कुछ नया हो गया है। सड़कों का शोरगुल भी बदलता रहता है। गांव में सब कुछ वहीं का वही रहता है। सच तो यह है गांव में खबर ही निर्मित नहीं होती है। वहां कुछ होता ही नहीं है। गांव में सब कुछ वर्तुल में ही घूमता रहता है। इसलिए गांव के लोग गहरी नींद सोते है। क् योंकि उनके चारों और का जीवन उबाने वाला है। शहर में नींद कठिन है, क् योंकि तुम्हारे चारों और का जीवन उत्तेजना से भरा है; वहां सब कुछ बदल रहा है।
तुम कोई भी मंत्र काम में ला सकते हो। राम-राम या ओम-ओम कुछ भी चलेगा। तुम जीसस क्राइस्ट का नाम जप सकते हो। अवे मारिया जप सकते हो। कोई भी शब्द ले लो और उसे एक ही सुर में जपते रहो, तुम्हें गहरी नींद आ जाएगी। और तुम यह भी कर सकते हो। रमण महर्षि साधना की एक विधि बताते थे कि स्वयं पूछो कि मैं कौन हूं। लोगों ने उसको भी मंत्र बना लिया। वे आंखें बंद करके बैठते थे और दोहराते रहते थे। ‘मैं कौन हूं?’ मैं कौन हूं? यह मंत्र बन गया। लेकिन वह रमण का उद्देश्य नहीं था।
तो इसे मंत्र बनाओ। बैठ कर यह मत दोहराओं कि मैं हूं, उसकी कोई जरूरत नहीं है। सब जानते है और तुम भी जानते हो कि तुम हो। उसकी जरूरत नहीं है। वह फिजूल है। मैं हूं—यह अनुभव करो। अनुभव भिन्न बात है। सर्वथा भिन्न बात है। विचार करना अनुभव से बचने की तरकीब है। विचार करना न केवल भिन्न है। बल्कि धोखा है।
जब मैं कहता हूं कि अनुभव करो कि मैं हूं तो उसका क्या मतलब है।
मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं। अगर मैं अनुभव करने लगू कि मैं हूं तो मैं अनेक चीजों के प्रति बोधपूर्ण हो जाऊँगा। कुर्सी पर पड़ने वाले दबाव का बोध होगा। मखमल के स्पर्श का बोध होगा। कमरे से हवा के गुजरने का बोध होगा। मेरे शरीर से ध्वनि के स्पर्श होने का बोध होगा। ह्रदय की धड़कन का बोध होगा। शरीर में खून मौन प्रवाह का बोध होगा, शरीर की एक सूक्ष्म तरंग का बोध होगा। हमारा शरीर जीवंत और गत्यात्मक है; वह कोई स्थिर, ठहरी हुई चीज नहीं है। तुम तरंगायित हो रहे हो। निरंतर एक सूक्ष्म कंपन जारी है; और जब तक तुम जीवित हो, यह जारी रहेगा। तो एक कंपन का बोध होगा। तुम सारी बहुआयामी चीजों के प्रति बोध से भर जाओगे।
और अगर तुम इसी क्षण अपने भीतर-बाहर होने वाली चीजों के प्रति इतने ही बोधपूर्ण हो जाओ, तो मैं हूं का वह अनुभव होगा जो उसका मतलब है।

अगर तुम पूरी तरह बोधपूर्ण हो जाओ तो विचार रूक जायेगे। क्योंकि जब तुम अनुभव ऐसी समग्र घटना है कि उसमें विचार नहीं चल सकता।
शुरू-शुरू में तुम पाओगे कि विचार तैर रहे है। लेकिन धीरे-धीरे जब अस्तित्व में तुम्हारी जड़ें गहरी होगी। जितने ही तुम अपने होने के अनुभव में थिर होगे। उतने ही विचार दूर होते जाएंगे। और तुम इस दूरी को महसूस करोगे। तुम्हें लगेगा कि यह विचार मुझे नहीं, किसी और को घट रहे है—बहुत-बहुत दूर। दूरी स्पष्ट अनुभव होगी। और तुम जब वस्तुत: अपने केंद्र में अपने होने में स्थित हो जाओगे, तब मन विलीन हो जाएगा। तुम होगे; लेकिन न कोई शब्द होगा, न कोई प्रतिबिंब होगा।
ऐसा क्यों होता है? क्योंकि मन दूसरों से संबंधित होने का एक उपाय
है। यदि मुझे तुमसे संबंधित होना है। तो मुझे मन का उपयोग करना होगा। मुझे शब्दों का और भाषा का उपयोग करना पड़ेगा। यह सामाजिक घटना है, सामूहिक क्रिया है। अगर तुम अकेले में भी बोलते हो तो तुम अकेले नहीं हो। तुम किसी अन्य व्यक्ति से बोल रहे हो। भले ही तुम अकेले हो, लेकिन अगर तुम बातचीत कर रहे हो तो तुम अकेले नहीं हो। तुम किसी से बातें कर रहे हो। तुम अकेले कैसे बातें कर सकते हो। कोई और मन के भीतर मौजूद है और तुम उससे बोल रहे हो।
मैं दर्शन शास्त्र के एक अध्यापक की आत्मकथा पढ़ रहा था। उसने अपने संस्मरण में कहा है कि एक दिन वह अपनी पाँच साल कि बेटी को स्कूल छोड़ने जा रहा था। बेटी को स्कूल में छोड़कर उसे विश्वविद्यालय पहुंचना था और वहां लेक्चर देना था। तो वह रास्ते में
अपने लेक्चर की तैयारी करने लगा। वह भूल ही गया कि उसकी बेटी कार में उसके बगल में बैठी है और वह बोल-बोल कर लेक्चर देने लगा। लड़की कुछ क्षणों तक सब सुनती रही और फिर उसने पूछा: ’डैडी, आप मुझसे बोल रहे है या मेरे बिना बोल रहे है।’
जब भी तुम बोलते हो तो किसी से बोलते हो—किसी न किसी से बोलते हो। चाहे वह वहां उपस्थित न हो, लेकिन तुम्हारे लिए वह उपस्थित है, तुम्हारे मन के लिए वह उपस्थित है। सब विचार वार्तालाप है विचार मात्र वार्तालाप है। वह एक सामाजिक कृत्य है। इसलिए अगर किसी बच्चे को समाज के बाहर बड़ा किया जाए तो वह भाषा से वंचित रह जाएगा। वह बातचीत करना नहीं सीख पाएगा। समाज तुम्हें भाषा देता है। समाज के बिना भाषा नहीं हो सकती। भाषा सामाजिक घटना है।
जब तुम अपने में प्रतिष्ठित हो जाते हो तो कोई समाज नहीं रहता है।
कोई भी नहीं रहता है। मात्र तुम होते हो। मन विलीन हो जाता है। तब तुम किसी से संबंधित नहीं हो रहे हो—कल्पना में भी नहीं—और इसीलिए मन विलीन हो जाता है। तुम मन के बिना होते हो—और यही ध्यान है। मन के बिना होना ही ध्यान है। तुम मूर्च्छित नहीं हो, पूर्णत: सजग और सावचेत हो, अस् तित्व को उसकी समग्रता में उसके बहु-आयाम मे अनुभव कर रहे हो। लेकिन मन खो गया है।
और मन के खोने के साथ ही अनेक चीजें विदा हो जाती है। मन के साथ तुम्हारा नाम विदा हो जाता हे। मन के साथ तुम्हारा रूप विदा हो जाता है। मन के साथ तुम्हारा हिंदू, मुसलमान या पारसी होना विदा हो जाता है। मन के साथ ही तुम्हारा भला या बुरा होना, पुण्यात्मा या पापी होना सुंदर या कुरूप होना विदा हो जाता है। मन के साथ ही तुम्हारा सब कुछ, जो तुम पर थोपा गया था, विलीन हो जाता है। तब तुम अपनी मौलिक शुद्धता में प्रकट होते हो। तब तुम अपनी समग्र निर्दोषता में, अपने कुँवारे पन में प्रकट होते हो। तब तुम तिनके की तरह झोंकों में उड़ते रहते हो। तुम अस्तित्व में प्रतिष्ठित होते हो।

मन के साथ तुम अतीत में गति कर सकते हो। मन के साथ तुम भविष्य की यात्रा कर सकते हो। मन के बिना न तुम अतीत में जा सकते हो और न भविष्य में। मन के बिना तुम यहां और अभी हो। मन के विलीन होते ही वर्तमान क्षण शाश्वत हो जाता है। वर्तमान क्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता है। और आनंद घटित होता है। तुम्हें किसी खोज में नहीं जाना है। वर्तमान क्षण में स्थित, आत्मा में प्रतिष्ठित—तुम आनंदित हो। और यह आनंद कुछ ऐसा नहीं है जो तुम्हें घटित होता है। तुम स्वयं आनंद हो।
तुमने कभी अपने शरीर को अनुभव नहीं किया। तुम्हारे हाथ है, लेकिन तुमने उन्हें भी कभी अनुभव नहीं किया। तुमने कभी नहीं जाना कि हाथ क्या करते है। वे सतत तुम्हें क्या-क्या सूचनाएं देते रहते है। हाथ कभी भारी और उदास होता है और कभी हलका और प्रफुल्लित। कभी उसमें रसधार बहती है। और कभी सब कुछ मुर्दा हो जाता है। कभी तुम उसे जीवंत और नृत्य करते हुए पाते हो और कभी ऐसा लगता है कि उसमें जीवन नहीं है। वह जड़ और मृत है, तुमसे लटका है, लेकिन जीवित नहीं है।
जब तुम अपने अस्तित्व को अनुभव करने लगते हो तो सारा जगत तुम्हारे
लिए सर्वथा नए रूप में जीवित हो उठता है। अब तुम उसी सड़क से गुजरते हो जिससे रोज गुजरते थे, लेकिन अब वह सड़क वही सड़क नहीं है। क्योंकि अब तुम अस्तित्व में केंद्रित हो। तुम उन्हीं मित्रों से मिलते हो जिनसे सदा मिलते थे। लेकिन अब वे वही नहीं है। क्योंकि तुम बदल गए हो। तुम अपने घर वापस आते हो तो जिस पत्नी के साथ वर्षों से रहते आए हो उसी भी सर्वथा भिन्न पाते हो। वह भी वही नहीं रही।
तुम सोए-सोए चलते हो और ऐसे ही सोए लोगों की भीड़ के बीच जीते हो। प्रत्येक व्यक्ति गहरी नींद में है। तुम्हें बस इतना होश है कि तुम गहरी नींद में सोए लोगों के बीच से गुजरते हो और बिना किसी दुर्घटना के अपने घर वापस आ जाते हो। बस इतना ही। इतना होश तुम्हें है। और मनुष्य के लिए यह अल्पतम संभावना है। यही कारण है कि तुम इतने ऊबे हुए हो। इतने सुस्त और मंद हो। जीवन एक बोझ है। और भीतर प्रत्येक मनुष्य मृतयु की प्रतीक्षा कर रहा है। ताकि जीवन से छुटकारा हो। मृत्यु ही एक मात्र आशा मालूम पड़ती है।
ऐसा क्यों है? जीवन परम आनंद हो सकता है। वह इतना ऊब भरा क्यो है? क्योंकि तुम जीवन में केंद्रित नहीं हो। तुम जीवन से उखड़़ गये हो। तुम अल्पतम पर जीते हो। और जीवन तो तभी घटित होता है जब तम अधिकतम पर जीते हो।
यह सूत्र तुम्हें अधिकतम जीवन प्रदान करेगा। विचार तुम्हें अल्
पतम ही दे सकता है। भाव तुम्हें अधिकतम दे सकता है। जीवन की रहा मन से होकर नहीं जाती, ह्रदय से होकर ही उसकी राह है।
‘मैं हूं। इसे ह्रदय से अनुभव करो। और अनुभव करो कि यह अस्तित्व मेरा है।’
‘यह मेरा है। यह-यह है।’
यह बहुत सुंदर है—इसे अनुभव करो। इसमे स्थित होओ। और फिर जानो कि
यह मेरा है, यह अस्तित्व, यह प्रवाहमान जीवन मेरा है।
तुम कहे चले जाते हो कि यह घर मेरा है, यह सामान मेरा है। तुम अपनी
चीज की बातें करते रहते हो और तुम्हें पता भी नहीं चलता की तुम्हारी सच् ची संपदा क्या है। समग्र जीवन, समस्त आत्मा तुम्हारी संपदा है। तुम् हारे भीतर गहनत्म संभावना है। अस्तित्व का आत्यंतिक रहस्य तुममें छिपा है और तुम उसके मालिक हो।
शिव कहते है: ‘मैं हूं—इसे अनुभव करो। और अनुभव करो कि यह मेरा है।

यह बात सतत स्मरण रखनी है कि इसे विचार नहीं बना लेना है। इसे अनुभव करो, ह्रदय से अनुभव करो कि यह मेरा है। यह अस्तित्व मेरा है और तब तुम कृत्यज्ञता अनुभव करोगे, तब तुम अहोभाव अनुभव करोगे।
अभी तो तुम परमात्मा को धन्यवाद कैसे दे सकते हो? तुम्हारा धन् यवाद भी ऊपरी है। औपचारिकता है। और कैसी हमारी दीनता है कि हम परमात्मा के साथ भी औपचारिकता बरतते है। तुम कृतज्ञ कैसे हो सकते हो? कृतज्ञ होने लायक तुमने कुछ किया ही नहीं है, कुछ ऐसा जाना ही नहीं है।
अगर तुम अपने को अस्तित्व में केंद्रित अनुभव कर सको। उसके साथ एक अनुभव कर सको, उससे परिपूरित अनुभव कर सको। उसके साथ नृत्य में सहभागी हो सको—तब तुम अनुभव करोगे कि यह मेरा है, यह अस्तित्व मेरा है। तब तुम् हें प्रतीति होगी कि यह समस्त रहस्यमय ब्रह्मांड मेरा है। यह सारा जगत मेरा लिए अस्तित्व में है। उसने पैदा किया है और मैं उसका ही फूल हूं। यह चेतना जो तुम्हें मिली है, यही जगत का सुंदरतम फूल है। और करोड़ो-करोड़ो वर्षो से यह पृथ्वी तुम्हारे होने के लिए तैयार है।
‘’यह मेरा है। यह-यह है।‘’
यह अनुभव करना है। अनुभव करना है कि यही जीवन है, ऐसा है—यह तथाता। अनुभव करना कि मैं नाहक ही चिंता कर रहा हूं। मैं व्यर्थ ही भिखारी बना हुआ था। व्यर्थ ही अपने को भिखारी समझ रहा था। मैं तो मालिक हूं। जब तुम केंद्रित होते हो तो तुम समष्टि के साथ पूर्ण के साथ हो जाते हो। और तब समस्त अस्तित्व तुम्हारे लिए है; तब तुम भिखारी नहीं हो, तुम अचानक सम्राट हो जाते हो।
यह-यह है। प्रिये ऐसे भाव में भी असीमत: उतरो।
और यह अनुभव करते हुए उसकी कोई सीमा मत बनाओ, उसे असीमत: अनुभव करो। उस पर कोई सीमा-रेखा मत खींचो; कोई सीमा है भी नहीं। वह कहीं समाप्त होता है। अस्तित्व का न कोई आरंभ है और न अंत। और तुम्हारा भी कोई आरंभ और अंत नहीं है।
आरंभ और अंत मन के कारण है। मन का आरंभ है और मन का अंत है। अपने जीवन में वापस लोटों, पीछे की और चलो। और तुम पाओगे कि एक क्षण आता है जहां सब कुछ ठहर जाता है। वहां आरंभ है—मन का आरंभ। तुम पीछे वहां तक स् मरण कर सकते हो। जब तुम तीन वर्ष के रहे होगे या ज्यादा से ज्यादा दो वर्ष के रहे होगे। दो वर्ष तक लौटना बहुत दुर्लभ है—वहां जाकर स्मृति ठहर जाती है। तुम अपनी स्मृति में ज्यादा से ज्यादा वहां तक लौट सकते हो जब तुम दो वर्ष के थे। इसका क्या अर्थ है? इसके पहले की, दो वर्ष की उम्र के पहले की कोई स्मृति तुम्हारे पास नहीं है। अचानक एक शून्य, एक गैप आ जाता है। तुम्हें उसके आगे कुछ भी नहीं मालूम है।
क्या तुम्हें अपने जन्म के संबंध में कुछ याद है? क्या तुम्हें उन
नौ महीनों का कुछ स्मरण है जब तुम मां के पेट में थे? तुम तो थे, लेकिन मन नहीं था। मन का आरंभ दो वर्ष की उम्र के आसपास हुआ। यही कारण है कि दो वर्ष की उम्र तक तुम लौटकर स्मरण कर सकते हो। उसके आगे मन नहीं है। वहां स्मृति ठहर जाती है।
तो मन का आरंभ है। मन का अंत है। लेकिन तुम्हारा कोई आरंभ नहीं है।
तुम अनादि हो। अगर गहन ध्यान में, अगर ऐसे ध्यान में तुम अस्तित्व को अनुभव कर सको तो मन नहीं है। केवल एक आरंभहीन, अंतहीन ऊर्जा का प्रवाह है, जागतिक ऊर्जा का प्रवाह है। तुम्हारे चारो और एक अनंत असीम सागर है और तुम उसमें मात्र एक लहर हो। लहर का आरंभ है और अंत है। लेकिन सागर का कोई आरंभ और अंत नहीं है। और जब तुम जान लेते हो कि तुम लहर नहीं हो, सागर हो, तो सब दुख, सब संताप विलीन हो जाता है।
तुम्हारे दुःख की नींव में, उसकी गहराई में क्या है? उसकी गहराई
में मृत्यु है। तुम भयभीत हो कि तुम्हारा अंत होगा, तुम्हारी मृत्यु

होगी। वह बिलकुल निश्चित है। जगत में कुछ भी उतना निश्चित नहीं है। जितनी मृत्यु निश्चित है। वही भय है। वही कंपन है। वहीं दुःख है। कुछ भी करो। तुम मृत्यु के सामने असहाय हो। लाचार हो। कुछ भी नहीं किया जा सकता है। मृत्यु होने ही वाली है। और यह बात तुम्हारे चेतन-अचेतन मन में चलती ही रहती है। जब यह बात चेतन मन में उभर आती है। तुम मृत्यु से भयभीत हो जाते हो। फिर तुम उसे दबा देते हो, और वह भय अचेतन में सरकता रहता है। प्रत्येक क्षण तुम मृत्यु से, मिटने से भयभीत हो।
मन मिटेगा, लेकिन तुम नहीं मिटोगे। मगर तुम अपने को नहीं जानते
हो। तुम जिसे जानते हो वह मन है। वह निर्मित हुआ है। उसका आरंभ है और उसका अंत हे। जिसका आरंभ है, उसका अंत निश्चित है। अगर तुम अपने भीतर खोज सको जिसका कोई आरंभ नहीं है। जो बस है, जिसका कोई अंत नहीं है। तो मृत्यु का भय विलीन हो जाता है।
और जब मृत्यु का भाव खो जाता है। तब तुमसे प्रेम प्रवाहित होता है
— उसके पहले नहीं। जब तक मृत्यु है तब तक तुम प्रेम कैसे कर सकते हो? तुम किसी से चिपके रह सकते हो। लेकिन तुम प्रेम नही कर सकते। तुम किसी का उपयोग कर सकते हो। तुम प्रेम नहीं कर सकते। तुम किसी का शोषण कर सकते हो। तुम प्रेम का फूल नहीं खिला सकते हो।
प्रत्येक मनुष्य मरने वाला है, प्रत्येक मनुष्य क्यू में, कतार
में खड़ा अपने समय का इंतजार कर रहा है। तुम प्रेम कैसे कर सकते हो। पूरी बात ही बेतुकी मालूम पड़ती है। मृत्यु है तो प्रेम अर्थहीन मालूम पड़ता है। क्योंकि मृत्यु सब कुछ मिटा देगी। प्रेम भी शाश्वत नहीं है।
तुम अपने प्रियजन के लिए चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सकते हो। क्योंकि तुम मृत्यु को नहीं टाल सकते हो। मृत्यु सब के पीछे खड़ी है।
तुम मृत्यु को भूल सकते हो। तुम एक धोखा निर्मित कर सकते हो। तुम
मान सकते हो की मृत्यु नहीं है। लेकिन तुम्हारा सब मानना ऊपर का है। गहरे में तुम जानते हो कि मृत्यु होने वाली है। अगर मृत्यु है तो जीवन अर्थ हीन मालूम होता है। तुम झूठे अर्थ रच ले सकते हो। लेकिन उनसे कुछ हल नहीं होगा। थोड़ी देर के लिए उनसे सहारा मिल सकता है। लेकिन फिर सचाई उभरेगी और अर्थ खो जाएंगे। तुम बस अपने को धोखे में रख सकते हो, तुम सतत आत्म वंचना में रह सकते हो—यदि तुम उसे नहीं जानते हो जो अनादि और अंनत है, जो मृत्यु के पार है।
अमृत को जानने पर ही प्रेम संभव है, क्योंकि तब मृत्यु नहीं है। प्रेम संभव है। बुद्ध तुम्हें प्रेम करते है। जीसस तुम्हें प्रेम करते है। लेकिन वह प्रेम तुम्हारे लिए बिलकुल अपरिचित है। सर्वथा अज्ञात है। वह प्रेम भय के विलीन होने से आया है।
तुम्हारा प्रेम तो भय से बचने का उपाय भर है। इसलिए जब तुम प्रेम
में होते हो, तुम निर्भय मालूम पड़ते हो। कोई तुम्हें बल देता है। और यह पारस्परिक बात है। तुम दूसरे को बल देते हो। दूसरा तुम्हें बल देता है। दोनों दीन-हीन है और दोनों किसी दूसरे को खोज रहे है। और फिर दो दीन हीन व्यक्ति मिलते है और एक दूसरे को बल देने की चेष्टा करते है। यह चमत्कार है। यह हो कैसे सकता है? यह केवल वंचना है, धोखा है। तुम सोचते हो कि कोई तुम्हारे पीछे है, तुम्हारे साथ है। लेकिन तुम भली भांति जानते हो कि मृत्यु में कोई भी तुम्हारे साथ नहीं हो सकता। और जब कोई मृत्यु में तुम्हारे साथ नहीं हो सकता तो वह जीवन में तुम्हारे साथ कैसे हो सकता है। यह मृत्यु को टालने का, भुलाने का उपाय भर है। क्योंकि तुम भयभीत हो, तुम्हें निर्भय होने के लिए किसी की जरूरत नहीं है।
कहा जाता है, इमर्सन ने कहीं कहा है, कि बड़े से बड़ा योद्धा भी अपनी पत्नी के सामने कायर होता है। नेपोलियन भी पत्नी के सामने कायर है। क्योंकि पत्नी जानती है कि पति को उसके सहारे की जरूरत है। उसे स्

वयं होने के लिए उसके बल की जरूरत है। पति पत्नी पर निर्भर है। जब वह युद्ध क्षेत्र से वापस आता है, लड़ कर वापस आता है, तो कांपता आता है। भयभीत आता है। पत्नी की बाँहों में विश्राम पाता है। आश्वासन पाता है। पत्नी उसे सांत्वना देती है। आश्वस्त करती है। पत्नी के सामने वह बच्चे जैसा हो जाता है। हरेक पति पत्नी केसामने बच्चा है। और पत्नी? वह पति पर निर्भर है। वह पति के सहारे जीती है। वह पति के बिना नहीं जी सकती है। पति उसका जीवन है।

पारस्परिक धोखा है। दोनों भयभीत है, क्योंकि मृत्यु है। दोनों एक दूसरे के प्रेम में मृत्यु को भुलाने की चेष्टा करते है। प्रेमी-प्रेमिका निर्भीक हो जाती है। या निर्भीक होने की चेष्टा करते है। वे कभी-कभी बहुत निर्भीकता के साथ मृत्यु का मुकाबला भी कर लेते है। लेकिन वह भी ऊपरी है; वैसा दिखता भर है।

हमारा प्रेम भय का ही अंग है। उससे बचने के लिए है। सच्चा प्रेम तब घटित होता है जब भय नहीं रहता है। जब भय विलीन हो जाता है। जब तुम जानते हो कि न तुम्हारा कोई आरंभ है और न तुम्हारा कोई अंत है।

और इस पर विचार मत करो। भय के कारण तुम ऐसा सोचने लग सकते हो। तुम सोच सकते हो। 'हां, मैं जानता हूं,मेरा कोई अंत नहीं है। मेरी कोई मृत्यु नहीं है। आत्मा अमर है।' तुम भय के कारण ऐसा सोच सकते हो, लेकिन उसमे कुछ भी नहीं होगा।

प्रामाणिक अनुभव तभी होगा जब तुम ध्यान में गहरे उतरोगे। तब भय विसर्जित हो जाएगा। क्योंकि तुम स्वयं को अनंत-असीम देखते हो। तुम अनंत की तरह फैल जाते हो—आदिहीन अतीत में, अंतहीन भविष्य में। और इस क्षण में,इस वर्तमान क्षण में उसकी गहराई में तुम हो। तुम बस हो, सनातन से हो—तुम्हारा कभी आरंभ नहीं था, तुम्हारा कभी अंत नहीं होगा।

इसे असीमत: अनुभव करो, अनंतत: अनुभव करो।

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]-59

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—88 ([illegible])

'[illegible]'

जब भी तुम कुछ जानते हो, तुम उसे ज्ञान के द्वारा, जानने के द्वारा जानते हो। ज्ञान की क्षमता के द्वारा ही कोई विषय तुम्हारे मन में पहुंचता है। तुम एक फूल को देखते हो; तुम जानते हो कि यह गुलाब का फूल है। गुलाब का फूल बाहर है और तुम भीतर हो। तुमसे कोई चीज गुलाब तक पहुँचती है। तुमसे कोई चीज फूल तक आती है। तुम्हारे भीतर से कोई उर्जा गति करती है। गुलाब तक आती है, उसका रूप रंग और गंध ग्रहण करती है और लौट कर तुम्हें खबर देती है कि यह गुलाब का फूल है। सब ज्ञान, तुम जो भी जानते हो, जानने की क्षमता के द्वारा तुम पर प्रकट होता है। जानना तुम्हारी क्षमता है; सारा ज्ञान इसी क्षमता के द्वारा अर्जित किया जाता है।

लेकिन यह जानना दो चीजों को प्रकट करता है—ज्ञात को और ज्ञाता को। जब भी तुम गुलाब के फूल को जानते हो, तब अगर तुम ज्ञाता को, जो जानता है उसको भूल जाते हो। तो तुम्हारा ज्ञान आधा ही है। तो गुलाब को जानने में तीन चीजें घटित हुई: ज्ञेय यानी गुलाब, ज्ञाता यानी तुम और दोनों के बीच का संबंध यानी ज्ञान।

तो जानने की घटना को तीन बिंदुओं में बांटा जा सकता है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। ज्ञान दो बिंदुओं के बीच, ज्ञाता और ज्ञेय के बीच सेतु की भांति है। सामान्यत: तुम्हारा ज्ञान सिर्फ ज्ञेय को, विषय को प्रकट करता है। और ज्ञाता जानने वाला अप्रकट रह जाता है। सामान्यत: तुम्हारे ज्ञान में एक ही तीर होता है। वह तीर गुलाब की तरफ तो जाता है। लेकिन वह कभी तुम्हारी तरफ नहीं जाता। और जब तक वह तीर तुम्हारी तरफ भी न जाने लगे तब तक ज्ञान तुम्हें संसार के संबंध में तो जानने देगा। लेकिन वह तुम्हें स्वयं को नहीं जानने देगा।
ध्यान की सभी विधियां जानने वाले को प्रकट करने की विधियां है। जार्ज गुरजिएफ इसी तरह की एक विधि का प्रयोग करता था। वह इसे आत्म-स्मरण करता था। उसने कहा है कि जब तुम किसी चीज को जान रहे हो तो सदा जानने वाले को भी जानो। उसे विषय में मत भुला दो; जानने वाले को भी स्मरण रखो। अभी तुम मुझे सुन रहे हो। जब तुम मुझे सुन रहे हो तो तुम दो ढंगों
से सुन सकते हो। एक कि तुम्हारा मन सिर्फ मुझ पर केंद्रित हो। तब तुम सुनने वाले को भूल जाते हो। तब बोलने वाला तो जाना जाता है, लेकिन सुनने वाला भुला दिया जाता है। गुरजिएफ कहता था कि सुनते हुए बोलने वाले के साथ-साथ सुनने वाले को भी जानों।
तुम्हारे ज्ञान को द्विमुखी होना चाहिए। वह एक साथ दो बिंदुओं की
ओर, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों की और प्रवाहित हो। उसे एक ही दिशा में सिर्फ विषय की दिशा में नहीं बहना चाहिए। उसे एक साथ दो दिशाओं में, ज्ञेय और ज्ञाता की तरफ प्रवाहित होना चाहिए। इसे ही आत्मा–स्मरण कहते है। फूल को देखते हुए उसे भी स्मरण रखो जो देख रहा है।
यह कठिन है। क्योंकि अगर तुम प्रयोग करोगे, अगर देखने वाले को स्
मरण रखने की चेष्टा करोगे तो तुम गुलाब को भूल जाओगे। तुम एक ही दिशा में देखने के ऐसे आदी हो गए हो कि साथ-साथ दूसरी दिशा को भी देखने में थोड़ा समय लगाता है। अगर तुम ज्ञाता के प्रति सजग होते हो तो ज्ञेय विस् मृत हो जाएगा। और अगर तुम ज्ञेय के प्रति सजग होते हो तो ज्ञाता विस्मृत हो जाएगा। लेकिन थोड़े प्रयेत्न से तुम धीरे-धीरे दोनों के प्रति सजग होने में समर्थ हो जाओगे।
इसे ही गुरजिएफ आत्म-स्मरण कहता है। यह एक बहुत प्राचीन विधि है। बुद्ध ने इसका खूब उपयोग किया था। फिर गुरजिएफ इस विधि को पश्चिमी जगत में लाया। बुद्ध इसे सम्यक स्मृति कहते थे। बुद्ध ने कहा कि तुम्हारा मन सम्यक रूपेण स्मृतिवान नहीं है। अगर वह एक ही बिंदु को जानता है। उसे दोनों बिंदुओं को जानना चाहिए।
और तब एक चमत्कार घटित होता है। अगर तुम ज्ञेय और ज्ञाता दोनों के प्रति बोधपूर्ण हो तो अचानक तुम तीसरे हो जाते हो। तुम दोनों से अलग तीसरे हो जाते हो। ज्ञेय और ज्ञाता दोनों को जानने के प्रयत्न में तुम तीसरे हो जाते हो। साक्षी हो जाते हो। तत्क्षण एक तीसरी संभावना प्रकट होती है—साक्षी आत्मा का जन्म होता है। क्योंकि तुम साक्षी हुए बिना दोनों को कैसे जान सकते हो? अगर तुम ज्ञाता हो तो तुम एक बिंदु पर स्थिर हो जाते हो। उससे बंध जाते हो। आत्मा-स्मरण में तुम ज्ञाता के स्थिर बिंदु से अलग हो जाते हो। उससे बंध जाते हो। आत्म-स्मरण में तुम ज्ञाता के एक अलग हो जाते हो। तब ज्ञाता तुम्हारा मन है और ज्ञेय संसार है और तुम तीसरा बिंदू हो जाते हो—चैतन्य, साक्षी, आत्मा।
इस तीसरे बिंदु का अतिक्रमण नहीं हो सकता। और जिसका अतिक्रमण नहीं हो सकता,जिसके पार नहीं जाया जा सकता, वह परम है। जिसका अतिक्रमण हो सकता है वह महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम उसका अतिक्रमण कर सकते हो।

मैं इस एक उदाहरण से समझाने की कोशिश करूंगा। रात में तुम सोते हो
और सपना देखते हो; सुबह तुम जानते हो और सपना खो जाता है। जब तुम जागे हुए हो, जब तुम सपना नहीं देख रहे हो, तब एक भिन्न ही जगत तुम्हारे सामने होता है। तुम रास्तों पर चलते हो; तुम किसी कारखाने या कार्यालय में काम करते हो। फिर तुम अपने घर लौट आते हो। और रात में सो जाते हो। और वह संसार जिसे तुमने जागते हुए जाना था, विदा हो जाता है। तब तुम्हें स्मरण नहीं रहता कि मैं कौन हूं। तब तुम नहीं जानते हो कि मैं काला हूं या गोरा हूं। गरीब हूं या अमीर हूं, बुद्धिमान हूं या बेवकूफ, तुम कुछ भी नहीं जानते हो। कि मैं जवान हूं या बूढ़ा। तुम नहीं जानते हो कि मैं स्त्री हूं या पुरूष हूं। जाग्रत चेतना से जो कुछ संबंधित था वह सब विलीन हो जाता है। और तुम फिर स्वप्न के संसार में प्रवेश कर जाते हो। तुम उस जगत को भूल जाते हो जो तुमने जागते में जाना था; वह बिलकुल खो जाता है। और सुबह फिर सपने का संसार विदा हो जाता है। तुम यथार्थ की दुनियां में लौट आते हो।
इनमें से कौन सच हो? क्योंकि जब तुम सपना देख रहे हो तब वह यथार्थ संसार, जिसे तुम जागते हुए जानते हो, खोजता है। तुम तुलना भी नहीं कर सकते; क्योंकि जब तुम जागे हुए हो तो सपने का संसार नहीं रहता है। इसलिए तुलना असंभव है। कौन सच है? तुम स्वप्न जगत को झूठा कैसे कहते हो? कसौटी क्यों है?
अगर तुम यह कहते हो कि क्योंकि जब मैं जागता हूं तो स्वप्न जगत विलीन हो जाता है। तो यह दलील कसौटी नहीं बन सकती, क्योंकि जब तुम सपना देखते हो तो तुम्हारा जाग्रत जगत वैसे ही विलीन हो जाता है। और सच तो यह है कि अगर तुम इसी को कसौटी मानो तो स्वप्न जगत ज्यादा सच मालूम पड़ता है। क्योंकि जागने पर तुम स्वप्न को याद कर सकते हो, लेकिन जब तुम स्वप् न देख रहे हो जब जाग्रत चेतना को और उसके चारों ओर के जगत को बिलकुल पोंछ देता है। जिसे तुम असली संसार कहते हो। और तुम्हारा असली संसार स्वप्न के संसार को पूरी तरह से नहीं पोंछ पाता है। तब कसौटी क्या है? कैसे तय किया जाए? कैसे तुलना की जाए?
तंत्र कहता है कि दोनों झूठ है। तब सत्य क्या है? तंत्र कहता है कि सत्य वह है जो स्वप्न जगत को जानता है और जो जाग्रत जगत को भी जानता है। वही सत्य है; क्योंकि उसका कभी अतिक्रमण नहीं हो सकता। वह कभी हटाया नहीं जा सकता है। चाहे तुम सपना देख रहे हो या जागे हुए हो, वह है, वह अमिट है। तंत्र कहता है कि वह जो स्वप्न को जानता है कि अब जाग्रत जगत खो गया है। वह सत्य है—क्योंकि ऐसा कोई बिंदु नहीं है जहां वह नहीं है; वह सदा है। जिसे किसी भी अनुभव से अलग नहीं किया जा सकता, वह सत्य है।
वह जिसका अतिक्रमण नहीं हो सकता, जिसके पार तुम नहीं जा सकते हो,
वह तुम हो, वह तुम्हारी आत्मा है। और अगर तुम उसके पार जा सकते हो तो वह तुम्हारी आत्मा नहीं है।
गुरजिएफ की यह विधि जिसे वह आत्म-स्मरण कहता है, यह बुद्ध की यह विधि जिसे वह सम्यक स्मृति कहते है, या तंत्र की यह विधि तुम्हें एक ही जगह पहुंचा देती है। वह तुम्हें भीतर उस बिंदु पर पहुंचा देती है जो न ज्ञेय है और न ज्ञाता है। बल्कि जो साक्षी आत्मा है, जो ज्ञेय और ज्ञाता दोनों को जानती है। यह साक्षी परम है; तुम उसके पार नहीं जा सकते हो। क् योंकि अब तुम जो भी करोगे वह साक्षी-भाव ही होगा। तुम साक्षी भाव के आगे नहीं जा सकते। तो साक्षी-भाव चैतन्य का परम आधार है, आत्यंतिक तत्व है। यह सूत्र तुम पर साक्षी को प्रकट कर देगा।
‘प्रत्येक वस्तु ज्ञान के द्वारा ही देखी जाती है। ज्ञान के द्वारा ही आत्मा क्षेत्र में प्रकाशित होती है। उस एक को ज्ञाता और ज्ञेय की भांति देखो।’

यदि तुम अपने भीतर उस बिंदु को देख सके तो ज्ञाता और ज्ञेय दोनों
है। तो तुम आब्जेक्ट्स और सब्जैक्ट दोनों के पार हो गए। तब तुम उस पदार्थ और मन दोनों का अतिक्रमण कर गए; तब तुम बाह्म और आंतरिक दोनों के पार हो गए। तब तुम उस बिंदु पर आ गए जहां ज्ञाता और ज्ञेय एक है। उनमें कोई विभाजन नहीं है। मन के साथ विभाजन है; साक्षी के साथ विभाजन समाप्त हो जाता है। साक्षी के साथ तुम यह नहीं कह सकते कि कौन ज्ञेय है और कौन ज्ञाता है; वह दोनों है।
लेकिन इस साक्षी का अनुभव होना चाहिए; अन्यथा वह दार्शनिक ऊहा पोह
बन कर रह जाता है। इसलिए इसे प्रयोग करो। तुम गुलाब के फूल के पास बैठे हो; उसे देखो। पहला काम ध्यान को एक जगह केंद्रित करना है। गुलाब के प्रति पूरे ध्यान को लगा देना है—जैसे कि सारी दुनिया विलीन हो गई है। और सिर्फ गुलाब ही रह गया है। तुम्हारी चेतना गुलाब के अस्तित्व के प्रति पूरी तरह उन्मुख हो।
और अगर ध्यान समग्र हो तो संसार विलीन हो जाता है। क्योंकि ध्यान जितना ही एकाग्र होगा,उतना ही गुलाब के बाहर की दुनिया खो जाएगी। सारा संसार विलीन हो जाता है। केवल गुलाब रहता है। गुलाब ही सारा संसार हो जाता है।
यह पहला कदम है। गुलाब पर एकाग्र होना पहला कदम है। अगर तुम गुलाब
पर एकाग्र नहीं हो सकते तो तुम ज्ञाता की तरफ गति नहीं कर सकते; क्योंकि तब तुम्हारा मन सदा भटक-भटक जाता है। इसलिए ध्यान की तरफ जाने के लिए एकाग्रता पहला कदम है। तब सिर्फ गुलाब बचता है और सारा संसार विलीन हो जाता है। अब तुम भीतर की तरफ गति कर सकते हो; अब गुलाब वह बिंदु है जहां से तुम गति कर सकते हो। अब गुलाब को देखो और साथ ही स्वयं के प्रति, ज्ञाता के प्रति जागरूक होओ।
आरंभ में तुम चूक-चूक जाओगे। अगर तुम ज्ञाता की और गति करोगे तो गुलाब तुम्हारी चेतना से ओझल हो जाएगा। तब गुलाब धुंधला जाएगा, खो जाएगा। जब तुम फिर गुलाब पर आओगे तो स्वयं को भूल जाओगे। यह लुकाछिपी का खेल कुछ समय तक चलता रहेगा। लेकिन अगर तुम प्रयत्न करते ही रहे, करते ही रहे तो देर-अबेर एक क्षण आएगा जब तुम अपने को दोनों के बीच में पाओगे। ज्ञाता होगा,मन होगा। गुलाब होगा। और तुम ठीक माध्य में होगे,दोनों को देख रहे होगे। वह मध्य बिंदु, वह संतुलन का बिंदु ही साक्षी है।
और एक बार तुम यह जान गए तो तुम दोनों हो जाओगे। तब गुलाब और मन, ज्ञेय और ज्ञाता,तुम्हारे पंख हो जाएंगे। तब आब्जेक्ट्स और सब्जैक्ट दो पंख है और तुम दोनों के केंद्र हो। तब वे तुम्हारे ही विस्तार है। तब संसार और भगवता दोनों तुम्हारे ही विस्तार है। तुम अपने अस्तित्व के केंद्र पर पहुंच गए। और यह केंद्र साक्षी मात्र है।
‘उस एक को ज्ञाता और ज्ञेय की भांति देखो।’
किसी चीज पर एकाग्रता शुरू करो। और जब एकाग्रता समग्र हो तो भीतर
की और मुड़ो, स्वयं के प्रति जागरूक होओ। और तब संतुलन की चेष्टा करो। इसमें समय लगेगा। महीनों लग सकते है। वर्षों भी लग सकते है। यह इस पर निर्भर है कि तुम्हारा प्रयत्न कितना तीव्र है। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म संतुलन है। लेकिन यह संतुलन आता है। और जब यह आता है तो तुम अस् तित्व के केंद्र पर पहुंच गए। उस केंद्र पर तुम आत्मस्थ हो। अचल हो, शांत हो, आनंदित हो, समाधिस्थ हो। वहां द्वैत नहीं रह जाता है। इसे ही हिंदुओं ने समाधि कहा है। इसे ही जीसस ने प्रभु का राज्य कहा है।
इसे सिर्फ शाब्दिक रूप से, सिर्फ शब्दों के तल पर समझना बहुत काम
का नहीं है। लेकिन अगर तुम प्रयोग करते हो तो तुम्हें आरंभ से ही अनुभव होने लगेगा कि कुछ घटित हो रहा है। जब तुम गुलाब पर एकाग्रता करोगे तो सारा संसार विलीन हो जाएगा। यह चमत्कार है कि सारा संसार विलीन हो जाता

है। तब तुम्हें बोध होता है कि बुनियादी चीज मेरा ध्यान है। तुम जहां भी अपनी दृष्टि को ले जाते हो वहीं एक संसार निर्मित हो जाता है। और जहां से तुम अपनी दृष्टि हटा लेते हो वह संसार खो जाता है। तो तुम अपनी दृष् टि से, अपने ध्यान से संसार की रचना कर सकते हो।
इसे इस भांति देखो। तुम यहां बैठे हो। अगर तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में हो तो अचानक इस हॉल में एक ही व्यक्ति रह जाता है। शेष सब कुछ खो जाता है। मानो यहां और कुछ नहीं है। क्या हो जाता है। क्यों तुम्हारे प्रेम में होने पर एक ही व्यक्ति रह जाता है। सारा संसार बिलकुल खो जाता है। जैसे कि धूप छाया का खेल हो। सिर्फ एक व्यक्ति यथार्थ है, सच है। क् योंकि तुम्हारा मन एक व्यक्ति पर केंद्रित है, एकाग्र है; तुम्हारा मन एक व्यक्ति पर पूरी तरह तल्लीन है। शेष सब कुछ छाया वत हो जाता है। धूप छाया का खेल हो जाता है। तुम्हारे लिए यह यर्थाथ न रहा।
जब भी तुम एकाग्र होते हो, यह एकाग्रता तुम्हारे अस्तित्व के पूरे
ढंग ढांचे को बदल देती है। तुम्हारे चित की सारी रूपरेखा बदल देती है। इसका प्रयोग करो—किसी भी चीज पर प्रयोग करो। बुद्ध की किसी प्रतिमा के साथ प्रयोग करो। या किसी फूल या वृक्ष या किसी भी चीज के साथ प्रयोग करो। या अपनी प्रेमिका या अपने मित्र के चेहरे पर प्रयोग करो—चेहरे को सिर्फ देखो।
यह सरल होगा, क्योंकि अगर तुम किसी चेहरे को प्रेम करते हो तो उस
पर एकाग्र होना सरल होगा। और सच बात तो यह है जिन लोगों ने बुद्ध या जीसस या कृष्ण पर एकाग्र होने की कोशिश की, वे प्रेमी थे; बुद्ध को प्रेम करते थे। सारिपुत्र या मौद्गल्यायन या अनय शिष्यों के लिए बुद्ध के चेहरे पर ध्यान करना सरल था। जैसे ही वे बुद्ध के चेहरे को देखते थे, वे सरलता से उसकी तरफ प्रवाहित होने लगते थे। उन्हें उनसे प्रेम था; वे उनसे मोहित थे।
तो कोई चेहरा खोज लो—और जिस चेहरे से भी तुम्हें प्रेम हो वह काम देगा—बस आंखों में झांको चेहरे पर एकाग्र होओ। और अचानक तुम पाओगे कि सारा संसार विलीन हो गया है। और एक नया ही आयाम खुल गया है। तब तुम्हारा चित किसी एक चीज पर एकाग्र होता है तब वह व्यक्ति या वह चीज तुम्हारे लिए सारा संसार बन जाती है।
मेरे कहने का मतलब यह है कि जब तुम्हारा ध्यान किसी चीज पर समग्र होता है, तब वह चीज ही सारा संसार हो जाती है। तुम अपने ध्यान के द्वारा अपना संसार निर्मित करते हो। तुम अपना संसार अपने ध्यान से बनाते हो। और जब तुम पूरी तरह तल्लीन हो, तुम्हारी चेतना जैसे नदी की धार की तरह विषय की तरफ बह रही है। तो अचानक तुम उस मूल स्त्रोत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ जहां से ध्यान प्रवाहित हो रहा है। नदी बह रही है। तुम उसके उद्गम के प्रति मूल स्त्रोत के प्रति होश पूर्ण हो जाओ।
आरंभ में तुम बार-बार होश खो दोगे; तुम यहां से वहां डोलते रहोगे।
अगर तुम उद्गम की तरफ ध्यान दोगे तो तुम नदी को भूल जाओगे। और उस विषय को, सागर को भूल जाओगे। जिसकी और नदी प्रवाहित हो रही है। यह फिर बदलेगा — यदि तुम लक्ष्य पर ध्यान दोगे तो मूल स्त्रोत भूल जाएगा। यह स्वभाविक है; क्योंकि मन का बंधा-बंधाया ढंग है—यह ऑब्जेक्ट को देखता है या सब्जैक्ट को।
यही कारण है कि बहुत से लोग एकांत में चले जाते है। ये संसार को छोड़ ही देते है। संसार को छोड़ने का बुनियादी कारण है कि वे विषय को छोड़ रहे है। ताकि वे अपने आप पर एकाग्र हो सके। यह सरल है। अगर तुम संसार छोड़ दो और आँख बंद कर लो, इंद्रियों को बंद कर लो, तो तुम आसानी से स्वयं के प्रति बोधपूर्ण हो सकते हो।

लेकिन यह बोध भी झूठा है। क्योंकि तुमने द्वैत का एक बिंदू ही चुना है। यह उसी रोग की दूसरी अति है। पहले तुम विषय के प्रति सजग थे, ज्ञेय के प्रति सजग थे और तुम स्वयं का, ज्ञाता का बोध नहीं था। और अब तुम ज्ञाता से बंधे हो और ज्ञेय को भूल गए हो। लेकिन तुम द्वैत में ही हो। और फिर यह पुराना ही मन है जा नए रूप में प्रकट हो रहा है। कुछ भी नहीं बदला है।
यही करण है कि मैं इस बात पर जोर देता हूं कि आब्जेक्ट्स के संसार
को नहीं छोड़ना है। आब्जेक्ट्स के जगत से मत भागों; बल्कि ऑब्जेक्ट और सब्जैक्ट दोनों के प्रति साथ-साथ बोधपूर्ण होने की कोशिश करो, बाह्म और आंतरिक दोनों के प्रति साथ-साथ सजग बनो। अगर दोनों मौजूद है तो ही तुम दोनों के बीच संतुलित हो सकते हो। अगर एक ही है तो तुम उससे ग्रस्त हो जाओगे।
जो लोग हिमालय चले जाते है और अपने को बंद कर लेते है, वे तुम्हारे
ही जैसे लोग है सिर्फ शीर्षासन में खड़े है। तुम आब्जेक्ट्स से बंधे हो; वे सब्जैक्ट से बंध गए है। तुम बाहर अटके हो; वे भीतर अटक गए है। ने तुम मुक्त हो, न वे मुक्त है। क्योंकि एक के साथ तुम मुक्त नहीं हो सकते; एक के साथ तुम तादात्म्य कर लेते हो।
मुक्त तो तुम तभी हो सकते हो जब तुम दोनों के प्रति सजग होते हो, दोनों को जानते हो। तब तुम तीसरे हो जाते हो। और यह तीसरा ही मुक्ति का बिंदू है। एक के साथ तुम तादात्म्य कर लेते हो। दो के साथ गति संभव है, बदलाहट संभव है, संतुलन संभव है—और तुम मध्य बिंदु पर ठीक मध्य बिंदु पर पहुंच सकते हो।
बुद्ध कहते थे कि मेरा मार्ग मज्झम निकाय है। मध्य मार्ग है। यह
बात ठीक से नहीं समझी गई कि क्यों वे इसे मध्यमार्ग कहने पर इतना जोर देते थे। कारण यह है; उनकी पूरी प्रक्रिया सजगता की है। सम्यक स्मृति की है—यह मध्य मार्ग है। बुद्ध कहते है: इस संसार को मत छोड़ो और परलोक से मत बंधो; मध्य में रहो। एक अति को छोड़कर दूसरी अति पर मत सरक जाओ। ठीक मध्य में रहो। क्योंकि मध्य में लोक और परलोक दोनों नहीं है। ठीक मध्य में तुम मुक्त हो। ठीक मध्य में द्वैत नही है। तुम अद्वैत को उपलब्ध हो गए और द्वैत तुम्हारा विस्तार भर है—जैसे दो पंख हो।
बुद्ध का मज्झम निकाय इसी विधि पर आधारित है। यह बहुत सुंदर विधि
है। अनेक कारणों से यह सुंदर है। एक कि यह बहुत वैज्ञानिक है; क्योंकि तुम केवल दो के बीच संतुलन को उपलब्ध हो सकते हो। अगर एक ही बिंदु हो तो असंतुलन अनिवार्यतः: अनिवार्यतः: रहेगा। इसलिए बुद्ध कहते है। कि जो संसारी है तो असंतुलित और जो त्यागी है वे भी दूसरी अति पर असंतुलित है। संतुलित आदमी वह है जो न इस अति पर है और न उस अति पर; जो ठीक मध्य में है। तुम उसे संसारी नहीं कह सकते; तुम उसे गैर संसारी भी नहीं कह सकते। वह गति करने के लिए स्वतंत्र है; वह किसी से भी आसक्त नहीं है, बंधा नहीं है। वह मध्य बिंदू पर स्वर्णिम मध्य पर पहुंच गया है।
दूसरी बात: दूसरी अति पर चला जाना बहुत आसान है—बहुत ही आसान। अगर
तुम बहुत भोजन लेते हो तो तुम उपवास आसानी से कर सकते हो; लेकिन सम्यक भोजन लेना कठिन है। अगर तुम बहुत बातचीत करते हो तो तुम मौन में आसानी से उतर सकत हो। लेकिन तुम मितभाषी नहीं हो सकते। अगर तुम बहुत खाते हो तो बिलकुल न खाना बहुत आसान है—यह दूसरी अति है। लेकिन सम्यक भोजन लेना, मध्य बिंदु पर रूक जाना बहुत मुश्किल है। किसी को प्रेम करना सरल है, किसी को धृणा करना भी सरल है; लेकिन उदासीन रहना बहुत मुश्किल है। तुम एक अति से दूसरी अति पर जा सकत हो। लेकिन मध्य में ठहरना बहुत कठिन है। क्यों?

क्योंकि मध्य में तुम्हें अपना मन गंवाना पड़ेगा। तुम्हारा मन
अतियों में जीता है। मन का मतलब अति है। मन सदा अतियों में डोलता रहता है। तुम या तो किसी के पक्ष में होते हो यह विपक्ष में; तुम तटस्थ नहीं हो सकते। मन तटस्थता में नहीं हो सकता है। वह यहां हो सकता है या वहां हो सकता है। क्योंकि मन को विपरीत की जरूरत है; उसे किसी के विरोध में होना जरूरी है। अगर वह किसी के विरोध में नह हो तो वह तिरोहित हो जाता है। तब उसकी कोई प्रयोजन नहीं रहा जाता है।
इसे प्रयोग करो। किसी भी बात में तटस्थ हो जाओ, उदासीन हो जाओ, और
तुम पाओगे कि अचानक मन को कोई काम न रहा। अगर तुम पक्ष में हो तो तुम सोच-विचार कर सकते हो। अगर तुम विपक्ष में हो तो भी तुम सोच विचार कर सकते हो। लेकिन अगर तुम न पक्ष में हो न विपक्ष में तो सोच विचार के लिए क्या रह जाता है।
बुद्ध कहते है कि उपेक्षा मज्झम निकाय का आधार है। उपेक्षा—
अतियों की उपेक्षा करो। बस इतना ही करो के अतियों के प्रति उदासीन रहो, और संतुलन घटित हो जाएगा।
यह संतुलन तुम्हें अनुभव का एक नया आयाम देगा। जहां तुम ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हो, लोक और परलोक, यह और वह शरीर और मन दोनों हो; जहां तुम दोनों हो और साथ ही साथ दोनों नहीं हो, दोनों के पार हो, एक त्रिकोण निर्मित हो गया।
तुमने देखा होगा कि अनेक रहस्यवादी गुह्म संप्रदायों ने त्रिकोण
को अपना प्रतीक चुना है। त्रिकोण गुह्म विद्या का एक अति प्राचीन प्रतीक रहा, उसका यही कारण है। त्रिकोण में तीन कोण है। सामान्यत: तुम् हारे दो कोण ही है। तीसरा कोण गायब है। तीसरा कोण अभी नहीं है। वह अभी विकसित नहीं हुआ है। तीसरा कोण दोनों के पार है। दोनों कोण इस तीसरे कोण के अंग है। और फिर भी यह कोण उनके पार है और दोनों से ऊँचा है।
अगर तुम यह प्रयोग करो तो तुम्हें अपने भीतर त्रिकोण निर्मित
करने में सहयोगी होगा। तीसरा कोण धीरे-धीरे ऊपर उठेगा। और जब वह अनुभव में आता है तो तुम दुःख में नहीं रह सकते। एक बार तुम साक्षी हुए कि दुःख नहीं रह सकता है। दुःख का अर्थ है किसी चीज के साथ तादात्म्य बना लेना। लेकिन एक सूक्ष्म बात याद रखने जैसी है—तब तुम आनंद के साथ भी तादात्म्य नहीं जोड़ोगे। यही कारण है कि बुद्ध कहते है: ‘मैं इतना ही कहा सकता हूं,कि दुःख नहीं होगा। समाधि में दुःख नहीं होगा। मैं यह नहीं कहा सकता कि आनंद होगा। बुद्ध कहते है: मैं यह बात नहीं कह सकता; मैं यही कह सकता हूं कि दुःख नहीं होगा।’
और बुद्ध ठीक कहते है। क्योंकि आनंद का अर्थ है कि किसी भी तरह का तादात्म्य नहीं रहा, आनंद के साथ भी तादात्म्य नहीं रहा। यह बहुत बारीक बात है। सूक्ष्म बात है। अगर तुम्हें ख्याल है कि मैं आनंदित हूं तो देर अबेर तुम फिर दुःखी होने की तैयारी कर रहे हो। तुम अब भी किसी मनोदशा से तादात्म्य कर रहे हो।
तुम सुखी अनुभव करते हो; अब तुम सुख के साथ तादात्म्य कर रहे हो।
और जिस क्षण तुम्हारा सुख से तादात्म्य होता है उसी क्षण दुख शुरू हो जाता है। अब तुम सुख से चिपकोगे; अब तुम उसके विपरीत से, दुःख से भयभीत होगे और चाहोगे कि सुख सदा तुम्हारे साथ रहे। अब तुमने वे सब उपाय कर लिए जो दुःख के होने के लिए जरूरी है। और फिर दुःख आएगा। और जब तुम सुख से तादात्म्य करते हो तो तुम दुःख से भी तादात्म्य कर लोगे। तादात्म्य ही रोग है।
इस तीसरे बिंदु पर तुम किसी के साथ भी तादात्म्य नहीं करते हो। जो
भी आता-जाता है, बस आता-जाता है। तुम मात्र साक्षी रहते हो। देखते हो— तटस्थ, उदासीन और तादात्म्य रहित। सुबह आती है, सूरज उगता है। और तुम

उसे देखते हो, तुम उसके साक्षी रहते हो। तूम यह नहीं कहते कि मैं सुबह हूं। फिर जब दोपहर आती है तो तुम यह नहीं कहते कि मैं दोपहर हूं। और जब सूरज डूबता है, अँधेरा उतरता है और रात आती है, तब तुम यह नहीं कहते कि मैं अँधेरा हूं, कि मैं रात हू। तुम उनके साक्षी रहते हो। तुम कहते हो कि सुबह थी, फिर दोपहर हुई फिर श्याम हुई, अब रात है। और फिर सुबह होगी और यह चक्र चलता रहेगा। और मैं केवल द्रष्टा हूं। देखनेवाला हूं, मैं देखता रहता हूं।
और अगर यही बात तुम्हारी मनोदशा ओर के साथ लागू हो जाए—सुबह की मनोदशा, दोपहर की मनोदशा, श्याम की, रात की मनोदशा और उनके अपने वर्तुल है, वे घूमते रहते है। तो तुम साक्षी हो जाते हो। तुम कहते हो: अब सूख आया है—ठीक सुबह की भांति,और अब रात आयेगी—दूःख की रात। मेरे चारों और मन:स्थितियां बदलती रहेंगी और मैं स्वयं में केंद्रित, स्थिर बना रहूंगा। मैं किसी भी मन स्थिति में आसक्त नही होऊंगा। मैं किसी भी मन: स्थिति में चिपकूंगा नहीं, बाधूंगा नहीं। मैं किसी चीज की आशा नहीं करुंगा और न मैं निराशा ही अनुभव करूंगा। मैं केवल साक्षी रहूंगा। जो भी होगा मैं उसका देखूँगा। जब वह आएगा,मैं उसका आना देखूँगा; जब वह जाएगा मैं उसका जाना देखूँगा।
बुद्ध इसका बहुत प्रयोग करते है। वे बार-बार कहते है कि जब कोई
विचार उठे तो उसे देखो। दूःख का विचार उठे, सूख का विचार उठे, उसे देखते रहो। जब वह शिखर पर आए तब उसे देखो, उसके साक्षी रहो। और जब वह उतरने लगे तब भी उसके द्रष्टा बने रहो। विचार अब पैदा हो रहा है। वह अब है, और अब वह विदा हो रहा है—सभी अवस्थाओं में तुम उसे देखते रहो। उसके साक्षी बने रहो।
यह तीसरा बिंदु तुम्हें साक्षी बना देता है। और साक्षी चैतन्य की
परम संभावना है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-61

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—89 (ओशो)
‘हे प्रिये, इस क्षण में मन, ज्ञान, प्राण, रूप, सब को समाविष्ट होने दो।’
यह विधि थोड़ी कठिन है। लेकिन अगर तुम इसे प्रयोग कर सको तो यह विधि बहुत अद्भुत और सुंदर है। ध्यान में बैठो तो कोई विभाजन मत करो;ध् यान में बैठे हुए सब को—तुम्हारे शरीर, तुम्हारे मन, तुम्हारे प्राण, तुम्हारे विचार, तुम्हारे ज्ञान—सब को समाविष्ट कर लो। सब को समेट लो, सब को सम्मिलित कर लो। कोई विभाजन मत करो, उन्हें खंडों में मत बांटो। साधारणत: हम खड़ों में बांटते रहते है। तोड़ते रहते है। हम कहते
है: ‘यह शरीर मैं नहीं हूं।’ ऐसी विधियां भी है जो इसका प्रयोग करती है। लेकिन यह विधि सर्वथा भिन्न है, बल्कि ठीक विपरीत है। तो कोई विभाजन मत करो। मत कहो कि मैं शरीर नहीं हूं। मत कहो कि मैं श्वास नहीं हूं। मत कहो कि मैं मन नहीं हूं। कहो कि मैं सब हूं और सब हो जाओ। अपने भीतर कोई विभाजन, कोई बँटाव मत निर्मित करो। यह एक भाव दशा है। आंखें बंद कर लो और तुम्हारे भीतर जो भी है। सब को सम्मिलित कर लो। अपने को कहीं एक जगह केंद्रित मत करो—अकेंद्रित रहो।
श्वास आती है और जाती है। विचार आता है और चला जाता है। शरीर का
रूप बदलता रहता है। इस पर तुमने कभी ध्यान नहीं दिया है। अगर तुम आंखें

बंद करके बैठो तो तुम्हें कभी लगेगा कि मेरा शरीर बहुत बड़ा है और कभी लगेगा कि मेरा शरीर बिलकुल छोटा है। कभी शरीर बहुत भारी मालूम पड़ता है। और कभी इतना हलका कि तुम्हें लगेगा कि मैं उड़ सकता हूं। इस रूप के घटने-बढ़ने को तुम अनुभव कर सकते हो। आंखों को बंद कर लो और बैठ जाओ। और तुम अनुभव करोगे कि कभी शरीर बहुत बड़ा है। इतना बड़ा कि सारा कमरा भर जाए और कभी इतना छोटा लगेगा जैसे कि अणु हो। यह रूप क्यो बदलता है? जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान बदलता है। वैसे-वैसे तुम्हारे शरीर का
रूप भी रूप बदलता है। अगर तुम्हारा ध्यान सर्वग्राही है तो रूप बहुत बड़ा हो जायेगा। और अगर तुम तोड़ते हो करते हो, विभाजन करते हो, कहते हो कि मैं यह नहीं हूं, तो तुम बहुत छोटा, बहुत सूक्ष्म और आणविक हो जाता है।
यह सूत्र कहता है: ‘हे प्रिय, इस क्षण में मन, ज्ञान, रूप, सब को समाविष्ट होने दो।’
अपने अस्तित्व में सब को सम्मिलित करो, किसी को भी अलग मत करो, बाहर मत करो। मत कहो कि मैं यह नहीं हूं, कहो कि मैं यह हूं और सब को सम् मिलित कर लो। अगर तुम इतना ही कर सको तो तुम्हें बिलकुल नए अनुभव, अद्भुत अनुभव घटित होंगे। तुम्हें अनुभव होगा कि कोई केंद्र नहीं है। मेरा कोई केंद्र नहीं है।
और केंद्र के जाते ही अहंभाव नहीं रहता। अहंभाव नहीं रहता। केंद्र के जाते ही केवल चैतन्य रहता है—आकाश जैसा चैतन्य जो सब को घेरे हुए है। और जब यह प्रतीति बढ़ती है तो तुममें न सिर्फ तुम्हारी श्वास समाहित होगी, न केवल तुम्हारा रूप समाहित होगा, बल्कि अंतत: तुम में सारा ब्रह्मांड समाहित हो जाएगा।
स्वामी रामतीर्थ ने अपनी साधना में इस विधि का प्रयोग किया था। और
एक क्षण आया जब उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि सारा जगत मुझमें है और ग्रह-नक्षत्र मेरे भीतर घूम रहे है। कोई उनसे बात कर रहा था और उसने कहा कि यहां हिमालय में सब कुछ कितना सुंदर है। रामतीर्थ हिमालय में थे। और उस व्यक्ति ने उनसे कहा: यह हिमालय कितना सुंदर है। और कहते है रामतीर्थ ने उससे कहा: ‘हिमालय? हिमालय मेरे भीतर है।’
उस आदमी ने सोचा कि रामतीर्थ पागल है। हिमालय कैसे उनके भीतर हो सकता है? लेकिन यदि तुम इस विधि का प्रयोग करो तो तुम यह अनुभव कर सकते हो। कि हिमालय तुममें है। मैं तुम्हें थोड़ा स्पष्ट करूं कि यह कैसे संभव है।
सच तो यह है कि जब तुम मुझे देखते हो तो उसे नहीं देखते जो कुर्सी
पर बैठा हुआ है, तुम दरअसल मेरी तस्वीर को देखते हो जो तुम्हारे भीतर है। जो तुम्हारे मन में बनती है। तुम इस कुर्सी में बैठे हुए मुझको कैसे जान सकते हो? तुम्हारी आंखें केवल मेरी तस्वीर ले सकती है। तस्वीर भी नहीं, सिर्फ प्रकाश की किरणें तुम्हारी आंखों में प्रवेश कर सकती है। फिर तुम्हारी आंखें खुद मन के पास नहीं पहुँचती है; सिर्फ आंखों से होकर गुजरने वाली किरणें भीतर जाती है। फिर तुम्हारा स्नायु-तंत्र जो उन किरणों को ले जाता है। उन्हें किरणों की भांति नहीं ले जा सकता । वह उन किरणों को रासायनिक पदार्थों में रूपांतरित कर देता है। तो केवल रासायनिक पदार्थ यात्रा करते है। वहां इन रासायनिक पदार्थों को पढ़ा जाता है। उन्हें डिकोड़ किया जाता है। उन्हें उनके मूल चित्र में फिर बदला जाता है। और तब तुम अपने मन में मुझे देखते हो।
तुम कभी अपने मन के बाहर नहीं गए हो। सम्पूर्ण जगत को, जिसे तुम जानते हो। तुम अपने मन में देखते हो। मन में ही उघाड़ते हो। मन में ही जानते हो। सारे हिमालय, समस्त सूर्य और चाँद-तारे तुम्हारे मन के भीतर अत्यंत सूक्ष्म अस्तित्व मे मौजूद है। अगर तुम अपनी आंखें बंद करो और

अनुभव करो कि सब कुछ सम्मिलित है तो तुम जानोंगे कि सारा जगत तुम्हारे भीतर घूम रहा है।
और जब तुम यह अनुभव करते हो कि सारा जगत मेरे भीतर घूम रहा है। तो तुम्हारे सभी व्यक्तित्व दुःख विसर्जित हो गए। विदा हो गए। अब तुम व् यक्ति न रहे, अव्यक्ति हो गए। परम हो गए। अब तुम समस्त अस्तित्व हो गए। यह विधि तुम्हारी चेतना को विस्तृत करती है। उसे फैलाव देती है।
अब पश्चिम में चेतना को विस्तृत करने के लिए अनेक नशीली चीजों का प्रयोग हो रहा है। एल एस डी है, मारीजुआना है, दूसरी मादक द्रव्य है। भारत में भी पुराने दिनों में उनका प्रयोग होता था। क्योंकि ये मादक द्रव्य चेतना के विस्तार का एक झूठा भाव पैदा कर देते है। और जो लोग भी मादक द्रव्य लेते है, उनके लिए ये विधियां बहुत सुंदर है, बहुत काम की है। क्योंकि वे लोग चेतना के विस्तार के लिए लालायित है।
जब तुम एल एस डी लेते हो तो तुम अपने में ही सीमित नही रहते, तब तुम
सब को अपने में समेट लेते हो। इसके प्रयोग के अनेक उदाहरण है। एक लड़की सात मंजिल के मकान से कूद पड़ी, क्योंकि उसे लगा कि मैं नहीं मर सकती हूं। कि मृत्यु असंभव है। उसे लगा कि मैं उड़ सकती हूं, और उसे लगा कि इसमें कोई बाधा नहीं है। कोई भय नहीं है। वह लड़की सात मंजिल मकान से कूद पड़ी और मर गई। उसकी देह टूट फूट कर बिखर गई लेकिन उसके मन में—नशे के प्रभाव में—कोई सीमा का भाव नहीं था। मृत्यु का ख्याल नहीं था। चेतना का विस्तार एक सनक का रूप ले चुकी है। क्योंकि जब तुम्हारी चेतना फैलती है तो तुम अपने को बहुत ऊँचाई पर अनुभव करते हो,सारा संसार धीरे-धीरे तुममें समा जाता है। तुम विराट हो जाते हो। अति विराट हो जाते हो। और तुम्हारे व्यक्तित्व दुःख विदा हो जाते है। लेकिन एल एस डी या अन्य ऐसी चीजों से पैदा होने वाला यह भाव भ्रामक है, झूठा है।
तंत्र की इस विधि से यह भाव वास्तविक हो जाता है। यथार्थत: सारा संसार तुम्हारे भीतर आ जाता है।
इसके दो कारण है। एक हमारी व्यक्तिगत चेतना दरअसल व्यक्तित्व नहीं है। बहुत गहराई में यह सामूहिक ऊपर हम द्वीपों जैसे अलग-अलग दिखते है। लेकिन गहरे में सभी द्वीप पृथ्वी से जुड़े है। हम द्वीपों जैसे दिखते है—मैं चेतन हूं तुम चेतन हो—लेकिन तुम्हारी चेतना और मेरी चेतना किसी गहराई में एक ही है। वे धरती से मूल आधार से संबद्ध है।
यही कारण है कि ऐसी बहुत सी बातें घटती है जो बेबूझ लगती है। अगर
तुम अकेले ध्यान करते हो तो ध्यान में प्रवेश बहुत कठिन होता है। लेकिन अगर तुम समूह में ध्यान करते हो तो प्रवेश बहुत ही आसान हो जाता है। कारण यह है कि समूचा समूह एक इकाई की तरह काम करता है। ध्यान-शिविरों में मैंने देखा है, अनुभव किया है कि दो या तीन दिन के बाद तुम्हारी वैयक्तिकता जाती है। तुम एक वृहत चेतना के हिस्से बन जाते हो। और तब बहुत सूक्ष्म तरंगें अनुभव होने लगती है, बहुत सूक्ष्म तरंगें गति करने लगती है। और एक समूह चेतना विकसित होती है।
तो जब तुम नाचते हो तो असल में तुम नहीं नाच रहे होते हो, वरन समूह-चेतना नाच रही होती है। और तुम उसके अंग भर होते हो। नृत्य तुम्हारे ही नहीं है, तुम्हारे बाहर भी है। तुम्हारे चारों तरफ एक तरंग है। समूह में तुम नहीं होते हो, समूह ही होता है। द्वीप होने की सतही घटना भूल जाती है। और एक होने की गहरी घटना घटती है। समूह में तुम भगवता के निकटतर होते हो। अकेले में तुम उसके बहुत दूर होते हो। क्योंकि अकेले में तुम फिर अपने अहंकार पर सतही भेद पर सतही अलगाव पर केंद्रित हो जाते हो।
यह विधि सहयोगी है, क्योंकि सचाई यही है कि तुम ब्रह्मांड के साथ
एक हो। प्रश्न इतना ही है कि कैसे इसे आविष्कृत किया जाए, कैसे इसमें उतरा जाए और इसे उपलब्ध हुआ जाए।

किसी मैत्री पूर्ण समूह के साथ होना तुम्हें सदा ऊर्जा से भरता
है। किसी ऐसे व्यक्ति के साथ होने में, जो शत्रुतापूर्ण है, तुम्हें सदा अनुभव होता है कि मेरी ऊर्जा चूसी जा रही है। क्यों? अगर तुम मित्रों के साथ हो, परिवार के साथ हो और आनंदित हो और सुख ले रहे हो, तो तुम ऊर्जस्वी अनुभव करते हो। शक्तिशाली अनुभव करते हो। किसी मित्र के मिलने पर तुम ज्यादा जीवंत मालूम पड़ते हो—उससे ज्यादा जितना मिलने के पहले जीवंत थे। और किसी दुश्मन के पास से गुजरने पर तुम्हें लगता है कि तुम्हारी थोड़ी ऊर्जा कम हो गई, तुम थके-थके लगते हो। क्या होता है?
जब तुम किसी मैत्रीपूर्ण,सहानुभूतिपूर्ण समूह से मिलते हो तो तुम अपनी वैयक्तिकता को भूल जाते हो। तुम उस मूल आधार पर उतर आते हो जहां पर मिल सकते हो। जब किसी शत्रुतापूर्ण व्यक्ति से मिलते हो तो तुम ज्यादा वैयक्तिक, ज्यादा अहंकारी हो जाते हो। तुम अपने अहंकार से चिपक जाते हो। और इसी अहंकार से चिपकने के कारण तुम थके-थके लगते हो। सब ऊर्जा मूल स्त्रोत से आती है। सब ऊर्जा सामूहिक जीवन के भाव से आती है। यह ध्यान करते समय प्रारंभ में तुम्हें सामूहिक जीवन के भाव का अनुभव होगा, और अंत में जागतिक चेतना का अनुभव होगा। जब सब भेद गिर जाते है, सारी सीमाएं विलीन हो जाती है। और अस्तित्व एक इकाई हो जाता है। पूर्ण होता है, तब सब सम्मिलित हो जाता है। समाहित हो जाता है। यह सब को समाविष्ट करने का प्रयत्न अपने निजी अस्तित्व से शुरू होता है। सब कुछ को समाविष्ट करो।
हे प्रिय, इस क्षण में मन, ज्ञान,प्राण, रूप, को समाविष्ट होने दो।‘
याद रखने की बुनियादी बात है समावेश—सब को अपने में समाविष्ट करो। किसी को अलग मत करो, बाहर मत रखो। इस सूत्र की कुंजी है: सब का समावेश। सब को समाविष्ट करो, सब को अपने भीतर समेट लो। समाविष्ट करो और बढते जाओ। समाविष्ट करो और विस्तृत होओ। पहले अपने शरीर से यह प्रयोग शुरू करो और फिर बाहरी संसार के साथ भी यही प्रयोग करो।
किसी वृक्ष के नीचे बैठकर वृक्ष को देखो। और फिर आंखें बंद कर लो
और अनुभव करो कि वृक्ष मेरी भीतर है। आकाश को देखो; और फिर आंखें बंद करके महसूस करो कि आकाश मेरे भीतर है। उगते हुए सूरज को देखो;फिर आंखें बंद करके भाव करो कि सूरज मेरे भीतर उग रहा है। और-और फैलते जाओ। विराट होते जाओ।
एक अद्भुत अनुभव तुम्हें होगा। जब तुम अनुभव करते हो कि वृक्ष मेरे भीतर है तो तुम तत्क्षण ज्यादा युवा हो जाते हो। और यह कल्पना नहीं है। क्योंकि वृक्ष और तुम दोनों पृथ्वी के अंग हो। पृथ्वी से आए हो। तुम दोनों की जड़ें एक ही धरती में गड़ी है। और अंतत: तुम्हारी जड़ें एक ही अस्तित्व में समाई है। तो जब तुम भाव करते हो कि वृक्ष मेरे भीतर होगा। वृक्ष की जीवंतता उसकी हरियाली उसकी ताजगी, उससे गुजरती हुई हवा, सब तुम्हारे भीतर तुम्हारे ह्रदय में अनुभव होगा।
तो अस्तित्व को और-और अपने भीतर समाविष्ट करो,कुछ भी बाहर मत छोड़ो।
अनेक ढंगों से अनेक जगह गुरु इसकी शिक्षा देते रहे है। जीसस कहते
है: ‘अपने शत्रु को वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने को करते हो।’ यह समावेश का प्रयोग है।
फ्रायड कहा करता था: ‘मैं क्यों अपने शत्रु को अपने समान प्रेम करूं? वह मेरा शत्रु है; फिर क्यों मैं उसे स्वयं की भांति प्रेम करूं? और मैं उसे प्रेम कैसे कर सकता हूं?
उसका प्रश्न संगत मालूम पड़ता है। लेकिन फ्रायड को पता नहीं है कि क्यों जीसस कहते थे कि अपने शत्रु को वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने को करते हो। यह किसी सामाजिक राजनीति की बात नहीं है। यह कोई समाज-सुधार

की, एक बेहतर समाज बनाने की बात नहीं है। यह तो सिर्फ तुम्हारे जीवन और तुम्हारे चैतन्य को विस्तार देने की बात है।
अगर तुम शत्रु को अपने में समाविष्ट कर सको तो वह तुम्हें चोट नहीं पहुंचा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह तुम्हारी हत्या नहीं कर सकता। वह तुम्हारी हत्या कर सकता है। लेकिन वह तुम्हें चोट नहीं पहुंचा सकता। चोट तो तब लगती है जब तुम उसे अपने से बारह रखते हो। जब तुम उसे अपने से बाहर रखते हो तो तुम अहंकारी हो जाते हो। पृथक और अकेले हो जाते हो, तुम अस्तित्व से विच्छिन्न हो जाते हो। कट जाते हो। अगर तुम को अपने भीतर समाविष्ट कर सको तो सब समाविष्ट हो जाता है। जब शत्रु समाविष्ट हो सकता है तो फिर वृक्ष और आकाश क्यों समाविष्ट नहीं हो सकते।
शत्रु पर जोर इसलिए है कि अगर तुम शत्रु को सम्मिलित कर सकते हो तो
तुम सब को सम्मिलित कर सकते हो। तब किसी को बाहर छोड़ने की जरूरत नहीं रही। और अगर तुम अनुभव कर सको कि तुम्हारा शत्रु भी तुममें समाविष्ट है तो तुम्हारा शत्रु भी तुम्हें शक्ति देगा। ऊर्जा देगा,वह अब तुम्हारे लिए हानिकारक नहीं हो सकता। वह तुम्हारी हत्या कर सकता है; लेकिन तुम् हारी हत्या करते हुए भी वह तुम्हें हानि नहीं पहुंचा सकता। हानि तो तुम्हारे मन से आती है। जब तुम किसी को पृथक मानते हो, अपने से बाहर मानते हो।
लेकिन हमारे साथ तो बात पूरी तरह विपरीत है, बिलकुल उलटी है। हम तो मित्रों को भी अपने में सम्मिलित नहीं करते। शत्रु तो बाहर होते ही है; मित्र भी बाहर ही होते है। तुम अपने प्रेमी-प्रेमिकाओं को भी बाहर ही रखते हो। अपने प्रेमी के साथ होकर भी तुम उसमें डूबते नहीं, एक नहीं होते; तुम पृथक बने रहते हो। तुम अपने को नियंत्रण में रखते हो। तुम अपनी अलग पहचान गंवाना नहीं चाहते हो।
और यही कारण है कि प्रेम असंभव हो गया है। जब तक तुम अपनी अलग पहचान नहीं छोड़ते हो, अहंकार को विदा नहीं देते हो। तब तक तुम प्रेम कैसे कर सकते हो? तुम-तुम बने रहते हो, तुम्हारा प्रेमी भी अपने को बचाए रहता है। तुम दोनों में कोई भी एक दूसरे में डूबने को समाविष्ट होने को राजी नहीं है। तुम दोनो एक दूसरे को बाहर रखते हो। तुम दोनों अपने-अपने घेरे में बंद रहते हो। परिणाम यह होता है कि कोई मिलन नहीं होता है, कोई संवाद नहीं होता है। और जब प्रेमी भी समाविष्ट नहीं हो सकते है तो यह सुनिश्चित है कि तुम्हारा जीवन दरिद्रतम जीवन है। तब तुम अकेले हो, दीन-हीन हो। भिखारी हो। और जब सारा अस्तित्व तुममें समाविष्ट होता है। तो तुम सम्राट हो।
इसे स्मरण रखो। समाविष्ट करने को अपनी जीवन-शैली बना लो। उसे ध्
यान ही नहीं,जीवन शैली, जीने का ढंग बना लो। अधिक से अधिक को सम्मिलित करने की चेष्टा करो। तुम जितना ज्यादा सम्मिलित करोगे तुम्हारा उतना ही ज्यादा विस्तार होगा। तब तुम्हारी सीमाएं अस्तित्व के और-छोर को छूने लगेंगी। और एक दिन केवल तुम होगे। समस्त अस्तित्व तुममें समाविष् ट होगा। यही सभी धार्मिक अनुभवों का सार सूत्र है।
हे प्रिय, इस क्षण में मन, ज्ञान,प्राण, रूप, सब को समाविष्ट होने
दो
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-61

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—90 (ओशो)

‘[illegible]’

विधि में प्रवेश के पहले कुछ भूमिका की बातें समझ लेनी है। पहली बात कि आँख के बाबत कुछ समझना जरूरी है। क्योंकि पूरी विधि इस पर निर्भर करती है।

पहली बात यह है कि बाहर तुम जो भी हो या जो दिखाई पड़ते हो वह झूठ हो सकता है। लेकिन तुम अपनी आंखों को नहीं झुठला सकते। तुम झूठी आंखें नहीं बना सकते हो। तुम झूठा चेहरा बना सकते हो। लेकिन झूठी आंखे नहीं बना सकते। वह असंभव है। जब तक कि तुम गुरजिएफ की तरह परम निष्णात हीन हो जाओ। जब तक तुम अपनी सारी शक्तियों के मालिक न हो जाओ। तुम अपनी आंखों को नहीं झुठला सकते। सामान्य आदमी यह नहीं कर सकता है। आंखों को झुठलाना असंभव है।

यहीं कारण है कि जब कोई आदमी तुम्हारी आंखों में झाँकता है, तुम्हारी आंखों में आंखें डालकर देखता है तो तुम्हें बहुत बुरा लगाता है। क्योंकि वह आदमी तुम्हारी असलियत में झांकने की चेष्टा कर रहा है। और वहां तुम कुछ भी नहीं कर सकते; तुम्हारी आंखें असलियत को प्रकट कर देंगी, वे उसे प्रकट कर देंगी तो तुम सचमुच हो। इसीलिए किसी की आंखों में झांकना शिष्टाचार के विरूद्ध माना जाता है। किसी से बातचीत करते समय भी तुम उसकी आंखों में झांकने से बचते हो। जब तक तुम किसी के प्रेम में नहीं हो। जब तक कोई तुम्हारे साथ प्रामाणिक होने को राज़ी नहीं था। तब तक तुम उसकी आँख में नहीं देख सकते।

एक सीमा है। मनस्विदों ने बताया है कि तीस सेकेंड सीम है। किसी अजनबी की आंखों में तुम तीस सेकेंड तक देख सकते हो—उससे अधिक नहीं। अगर उससे ज्यादा देर तक देखेंगे तो तुम आक्रामक हो रहे हो और दूसरा व्यक्ति तुरंत बुरा मानेगा। हां, बहुत दूर से तुम किसी की आँख में देख सकते हो; क्योंकि तब दूसरे को उकसा बोध नहीं होता। अगर तुम सौ फीट की दूरी पर हो तो मैं तुम्हें घूरता रह सकता हूं। लेकिन अगर सिर्फ दो फीट की दूरी हो तो वैसा करना असंभव है।

किसी भीड़-भरी रेलगाड़ी में, या किसी लिफ्ट में आस-पास बैठे या खड़े होकर भी तुम एक दूसरे की आंखों में नहीं देखते हो। हो सकता है किसी का शरीर छू जाए वह उतना बुरा नहीं है; लेकिन तुम दूसरे की आंखों में कभी नहीं झाँकते हो। क्योंकि वह जरा ज्यादा हो जाएगा। इतनी निकट से तुम आदमी की असलियत में प्रवेश कर जाओगे।

तो पहली बात कि आंखों का कोई संस्कारित रूप नहीं होता; आंखें शुद्ध प्रकृति है। आंखों पर मुखौटा नहीं है। और दूसरी बात याद रखने की यह है कि तुम संसार में करीब-करीब सिर्फ आँख के द्वारा गति करते हो। कहते हो कि तुम्हारी अस्सी प्रतिशत जीवन यात्रा आँख के सहारे होती है। जिन्होंने आंखों पर काम किया है उन मनोवैज्ञानिक को का कहना है कि संसार के साथ तुम्हारा अस्सी प्रतिशत संपर्क आंखों के द्वारा ही होता है। तुम्हारा अस्सी प्रतिशत जीवन आँख से चलता है।

यही कारण है कि जब तुम किसी अंधे आदमी को देखते हो तो तुम्हें दया आती है। तुम्हें उतनी दया और सहानुभूति तब नहीं होती जब कि बहरे आदमी को देखते हो। लेकिन जब तुम्हें कोई अंधा आदमी दिखाई देता है तो तुम्हें अचानक उसके प्रति सहानुभूति और करूणा अनुभव होती है। क्यों? क्योंकि यह अस्सी प्रतिशत मरा हुआ है। बहरा आदमी उतना मरा हुआ नहीं है। अगर तुम्हारे हाथ-पाँव भी कट जाएं तो भी तुम इतना मृत अनुभव नहीं करोगे। लेकिन अंधा आदमी अस्सी प्रतिशत मुर्दा है। वह केवल बीस प्रतिशत जीवित है।

तुम्हारी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा तुम्हारी आंखों से बाहर जाती है।
तुम संसार में आंखों के द्वारा गति करते हो। इसलिए जब तुम थकते हो तो सबसे पहले आंखें थकती है। और फिर शरीर के दूसरे अंग थकते है। सबसे पहले तुम्हारी आंखें ही ऊर्जा से रिक्त होती है। अगर तुम अपनी आंखें तुम् हारी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा है। अगर तुम अपनी आंखों को पुनर्जीवित कर लो तो तुमने अपने को पुनर्जीवन दे दिया।
तुम किसी प्राकृतिक परिवेश में कभी उतना नहीं थकते हो जितना किसी अप्राकृतिक शहर में थकते हो। कारण यह है कि प्राकृतिक परिवेश में तुम् हारी आंखों को निरंतर पोषण मिलता है। वहां की हरियाली, वहां की ताजी हवा,वहां की हर चीज तुम्हारी आंखों को आराम देती है। पोषण देती है। एक आधुनिक शहर में बात उलटी है; वहां सब कुछ तुम्हारी आंखों को शोषण करता है; वहां उन्हें पोषण नहीं मिलता।
तुम किसी दूर देहात में चले जाओ। या किसी पहाड़ पर चले जाओ जहां के माहौल में कुछ भी कृत्रिम नहीं है। जहां सब कुछ प्राकृतिक है, और वहां तुम्हें भिन्न ही ढंग की आंखें देखने को मिलेंगी। उनकी झलक उनकी गुणवता और होगी। वह ताजी होंगी। पशुओं जैसी निर्मल होंगी। गहरी होंगी। जीवंत और नाचती हुई होंगी। आधुनिक शहर में आंखें मृत होती है। बुझी-बुझी होती है। उन्हें उत्सव का पता नहीं है। उन्हें मालूम नहीं है कि ताजगी क्या है। वहां आंखों में जीवन का प्रवाह नहीं है। बस उनका शोषण होता है। भारत में हम अंधे व्यक्तियों को प्रज्ञाचक्षु कहते है। उसका विशेष कारण है। प्रत्येक दुर्भाग्य को महान अवसर में रूपांतरित किया जा सकता है। आंखों से होकर अस्सी प्रतिशत ऊर्जा काम करती है; और अंधा आदमी अस्सी प्रतिशत मुर्दा होता है, संसार के साथ अस्सी प्रतिशत संपर्क टूटा होता है। जहां तक बाहरी दुनिया का संबंध है, वह आदमी बहुत दीन है। लेकिन अगर वह इस अवसर का, इस अंधे होने के अवसर का उपयोग करना चाहे तो वह इस अस्सी प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग कर सकता है। वह अस्सी प्रतिशत ऊर्जा, जिसके बहने के द्वार बंद है। बिना उपयोग के रह जाती है। यदि वह उसकी कला नहीं जानता है।
तो उसके पास अस्सी प्रतिशत ऊर्जा का भंडार पडा है। और जो ऊर्जा सामान्यत: बहिर्यात्रा में लगती है वही ऊर्जा अंतर्यात्रा में लग सकती है। अगर वह उसे अंतर्यात्रा में संलग्न करना जान ले तो वह प्रज्ञाचक्षु हो जाएगा। विवेकवान हो जाएगा।
अंधा होने से कही कोई प्रज्ञाचक्षु नहीं होता है। लेकिन वह हो सकता है। उसके पास सामान्य आंखें तो नहीं है। लेकिन उसे प्रज्ञा की आंखें मिल सकती है। इसकी संभावना है। हमने उसे प्रज्ञाचक्षु नाम यह बोध देने के इरादे से दिया कि वह इसके लिए दुःख न माने कि उसे आंखें नही है। वह अंतर्चक्षु निर्मित कर सकता है। उसके पास अस्सी प्रतिशत उर्जा का भंडार अछूता पडा है। जो आँख वालों के पास नहीं है। वह उसका उपयोग कर सकता है।
यदि अंधा आदमी बोधपूर्ण नहीं है तो भी वह तुमसे ज्यादा शांत होता
है। ज्यादा विश्रामपूर्ण होता है। किसी अंधे आदमी को देखो वह ज्यादा शांत है। उसका चेहरा ज्यादा विश्राम पूर्ण है। वह अपने आप में संतुष्ट है, उसमें अंसतोष नहीं है। यह बात बहरे आदमी के साथ नहीं होती है। बहरा आदमी तुमसे ज्यादा अशांत होगा और चालाक होगा। लेकिन अंधा आदमी न अशांत होता है और न चालाक और हिसाबी-किताबी होता है। यह बुनियादी तौर से श्रद्धावान होता हे। अस्तित्व के प्रति श्रद्धावान होता है।
ऐसा क्यों होता है। क्योंकि उसकी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा,हालांकि वह उसके बारे में कुछ नहीं जानता है। भीतर की और प्रवाहित हो रही है। वह ऊर्जा सतत भीतर गिर रही है। ठीक जलप्रपात की तरह गिर रही है। उसे इसका

बोध नहीं है। लेकिन यह ऊर्जा उसके ह्रदय पर बरसती रहती है। वही ऊर्जा जो बाहर जाती है, उसके ह्रदय में जा रही है। और यह चीज उसके जीवन का गुणधर्म बदल देती है। प्राचीन भारत में अंधे आदमी को बहुत आदर मिलता था—बहुत-बहुत आदर। अत्यंत आदर में हमने उसे प्रज्ञाचक्षु कहा है।
तुम यही अपनी आंखों के साथ कर सकते हो। यह विधि उसके लिए ही है। यह तुम्हारी बाहर जाने वाली ऊर्जा को वापस लाने, तुम्हारे ह्रदय केंद्र पर उतारने की विधि है। अगर वह ऊर्जा तुम्हारे ह्रदय में उतर जाए तो तुम बहुत हलके हो जाओगे। तुम्हें ऐसा लगेगा कि सारा शरीर एक पंख बन गया है, कि तुम पर अब गुरूत्वाकर्षण का कोई प्रभाव न रहा। और तुम तब तुरंत अपने अस्तित्व के गहनत्म स्त्रोत से जुड़ जाते हो। और वह तुम्हें पुनरुज्जीवित कर देता है।
तंत्र के अनुसार गाढ़ी नींद के गाद तुम्हें जो नव जीवन मिलता है,
जो ताजगी मिलती है उसका कारण नींद नहीं है। उसका कारण है कि जो ऊर्जा बाहर जा रही थी, वही ऊर्जा भीतर आ जाती है। अगर तुम यह राज जान लो तो जो नींद सामान्य व्यक्ति छह या आठ घंटों में पूरी करता है। तुम कुछ मिनटों में पूरी कर सकते हो। छह या आठ घंटे की नींद में तुम खुद कुछ नहीं करते हो, प्रकृति ही कुछ करती है। और इसका तुम्हें बोध नहीं है कि यह क्या करती है। तुम्हारी नींद में एक रहस्यपूर्ण प्रक्रिया घटती है। उसकी एक बुनियादी बात यह है कि तुम्हारी ऊर्जा बाहर नहीं जाती है। वह तुम्हारी ह्रदय पर बरसती रहती है। और वहीं चीज तुम्हें नया जीवन देती है। तुम अपनी ही ऊर्जा में गहन स्नान कर लेते हो।
इस गतिशील ऊर्जा के संबंध में कुछ और बातें समझने की है। तुमने
गौर किया होगा कि अगर कोई व्यक्ति तुमसे ऊपर है तो वह तुम्हारी आंखों में सीधे देखता है। और अगर वह तुमसे कमजोर है तो वह नीचे की तरफ देखता है। नौकर गुलाम या कोई भी कम महत्व का व्यक्ति अपने से बड़े व्यक्ति की आंखों में नहीं देखेगा। लेकिन बड़ा आदमी घूर सकता है। सम्राट घूर सकता है। लेकिन सम्राट के सामने खड़े होकर तुम उसकी आंखे से आँख मिलाकर नहीं देख सकते हो। वह गुनाह समझा जाएगा। तुम्हें अपनी आंखों को झुकाएं रहना है।
असल में तुम्हारी ऊर्जा तुम्हारी आंखों से गति करती है। और वह सूक्ष्म हिंसा बन सकती है। यह बात मनुष्यों के लिए ही नहीं, पशुओं के लिए भी सही है। जब दो अजनबी मिलती है, दो जानवर मिलते है। तो वे एक-दूसरे की आँख नीची कर ली तो मामला तय हो गया; फिर वे लड़ते नहीं। बात खत्म हो गई। निशचित हो गया कि उनमें कौन श्रेष्ठ है।
बच्चे भी एक दूसरे की आँख में घूरने का खेल खेलते है; और जो भी आँख पहले हटा लेता है। वह हार गया माना जाता है। और बच्चे सही है। जब दो बच् चे एक दूसरे की आंखों में घूरते है तो उनमें जो भी पहले बेचैनी अनुभव करता है। इधर-उधर देखने लगता है। दूसरे की आँख से बचता है। वह पराजित माना जाता है। और तो घूरता ही रहता है। वह शक्तिशाली माना जाता है। अगर तुम्हारी आंखें दूसरे की आंखों को हरा दे तो वह इस बात का सूक्ष्म लक्षण है कि तुम दूसरे से शक्तिशाली हो।
जब कोई व्यक्ति भाषण देने या अभिनय करने के लिए मंच पर खड़ा होता
है। तो वह बहुत भयभीत होता है। वह कांपने लगता है। जो लोग पुराने अभिनेता है, वे भी जब मंच पर आते है तो उन्हें भय पकड़ लेता है। कारण यह है कि उन्हें इतनी आंखें देख रही है। उनकी और इतनी आक्रामक ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। उनकी और हजारों लोगों से इतनी ऊर्जा प्रवाहित होती है वे अचानक अपने भीतर कांपने लगते है।

एक सूक्ष्म ऊर्जा आंखों से प्रवाहित होती है। एक अत्यंत सूक्ष्म, अत्यंत परिष्कृत शक्ति आंखों से प्रवाहित होती है। और व्यक्ति-व्यक्ति के साथ इस ऊर्जा का गुण धर्म बदल जाती है।
बुद्ध की ऊर्जा एक तरह की आंखों से प्रवाहित होती है, हिटलर की आंखों से सर्वथा भिन्न तरह की ऊर्जा प्रवाहित होती है। अगर तुम बुद्ध की आंखों से देखो तो पाओगे कि वह आंखें तुम्हें बुला रही है। तुम्हारा स्वागत कर रही है। बुद्ध की आंखें तुम्हारे लिए द्वार बन जाती है। और अगर तुम हिटलर की आंखों से देखो तो पाओगे कि वे तुम्हें अस्वीकार कर रही है। तुम्हारी निंदा कर रही है। तुम्हें दूर हटा रही है। हिटलर की आंखें तलवार जैसी है और बुद्ध की आंखें कमल जैसी है, हिटलर कि आंखों में हिंसा है, बुद्ध की आंखों में करूणा।
आंखों का गुणधर्म अलग-अलग है। देर अबेर हम आँख की ऊर्जा को नापने
की विधि खोज लेंगे। और तब मनुष्य के संबंध में जानने को बहुत नहीं बचेगा। सिर्फ आँख की ऊर्जा आँख का गुणधर्म बता देगा कि उसके पीछे किस किस्म का व्यक्ति छिपा है। देर-अबेर इसे नापना संभव हो जाएगा।
सह सूत्र यह विधि इस प्रकार है: ‘आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन ह्रदय में खुलता है और वहां ब्रह्मांड व् याप जाता है।’
‘आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से.....।’
दोनों हथेलियों का उपयोग करो, उन्हें अपनी आंखों पर रखो और हथेलियों से पुतलियों को स्पर्श करो—जैसे पंख से उन्हें छू रहे हो। पुतलियों पर जरा भी दबाव मत डालों। अगर दबाव डालते हो तो तुम पूरी बात से चूक जाते हो। तब पूरी विधि ही व्यर्थ हो गई। कोई दबाव मत डालों; बस पंख की तरह छुओ।
ऐसा स्पर्श, पंखवत स्पर्श धीरे-धीरे आएगा। आरंभ में तुम दबाव दोगे। इस दबाव को कम से कम करते जाओ—जब तक कि दबाव बिलकुल न मालूम हो, तुम्हारी हथैलियां पुतलियों को स्पर्श भर करें। मात्र स्पर्श। इस स् पर्श में जरा भी दबाव न रहे। यदि जरा भी दबाव रह गया तो विधि काम न करेगी। इसलिए इसे पंख-स्पर्श कहा गया है।
क्यों? क्योंकि जहां सूई से काम चले वहां तलवार चलाने से क्या होगा। कुछ काम है जिन्हें सुई ही कर सकती है। उन्हें तलवार नहीं कर सकती। अगर तुम पुतलियों पर दबाव देते हो तो स्पर्श का गुण बदल गया; तब तुम आक्रामक हो गए। और जो ऊर्जा आंखों से बहती है वह बहुत सूक्ष्म है। बहुत बारीक है। जरा सा दबाव, और स्पर्श, एक संघर्ष, एक प्रतिरोध पैदा कर देता है। दबाव पड़ने से आंखों से बहने वाली ऊर्जा लड़ेंगी, प्रतिरोध करेगी। एक संघर्ष चलेगा।
तो बिलकुल दबाव मत डालों; आँख की ऊर्जा को हलके से दबाव का भी पता
चल जाता है। वह बहुत सूक्ष्म है, कोमल है। तो दबाव बिलकुल नहीं, तुम् हारी हथैलियां पंख की तरह पुतलियों को ऐसे छुएँ जैसे न छू रही हो। आंखों को ऐसे स्पर्श करो कि वह स्पर्श पता भी न चले। किंचित भी दबाव न पड़े;बस हलका सा अहसास हो कि हथेली पुतली को छू रही है। बस।
इससे क्या होगा? जब तुम किसी दबाव के बिना स्पर्श करते हो तो ऊर्जा भीतर की और गति करने लगती है। और अगर दबाव पड़ता है तो ऊर्जा हाथ से लड़ने लगाती है। और वह बाहर चली जाती है। लेकिन अगर हलका सा स्पर्श हो, पंख-स्पर्श हो, तो ऊर्जा भीतर की और बहने लगती है। एक द्वार बंद है। और ऊर्जा पीछे की तरफ लौट पड़ती है। और जिस क्षण ऊर्जा पीछे की तरफ बहने लगेगी, तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे पूरे चेहरे पर और तुम्हारे सिर में एक हलकापन फैल गया। यह प्रतिक्रमण करती हुई ऊर्जा ही, पीछे लौटती है।

और इन दो आंखों में माध्य में तीसरी आँख है। प्रज्ञाचक्षु है। इन्
हें दो आंखों के मध्य में शिवनेत्र कहते है। आंखों से पीछे की और बहने वाली ऊर्जा तीसरी आँख पर चोट करती है। और उसके कारण ही हल्का पन महसूस करते हो। जमीन से ऊपर उठते मालूम पड़ते हो। मानों गुरूत्वाकर्षण समाप् त हो गया। और यही ऊर्जा तीसरी आँख से चलकर ह्रदय पर बरसती है।
यह एक शारीरिक प्रक्रिया है। बूंद-बूंद ऊर्जा नीचे गिरती है। ह्रदय पर बरसती है। और तुम्हारे ह्रदय में बहुत हलकापन अनुभव होगा। ह्रदय की धड़कन बहुत धीमी हो जाएगी और श्वास की गति धीमी हो जाएगी और तुम्हारा शरीर विश्राम अनुभव करेगा।
यदि तुम इसे ध्यान की तरह नहीं भी करते हो तो भी यह प्रयोग तुम्हें शारीरिक रूप से सहयोगी होगा। दिन में कभी भी कुर्सी पर बैठे हुए, या यदि कुर्सी न हो तो रेलगाड़ी या कहीं भी बैठे हुए, आंखें बंद कर लो, पूरे शरीर को शिथिल छोड़ दो और अपनी हथेलियों को आंखों पर रखो। लेकिन आंखों पर दबाव मत डोलो—यही बात बहुत महत्व पूर्ण है—पंख की भांति छुओ भर। जब तुम बिना दबाव के छूते हो तो तुम्हारे विचार तत्क्षण बंद हो जाते है। शांत मन में विचार नहीं चल सकते है। वह ठहर जाते है। विचारों को गति करने के लिए पागलपन जरूरी है। तनाव जरूरी है। विचार तनाव के सहारे जीते है। जब आंखें मौन, शिथिल और शांत है और ऊर्जा पीछे की तरफ गति करने लगती है तो विचार ठहर जाते है। तुम्हें एक सूक्ष्म सुख का अनुभव होगा जो रोज प्रगाढ़ होता जाता है।
दिन में यह प्रयोग कई बार करो। एक क्षण के लिए भी यह छूना अच्छा रहेगा। जब भी तुम्हारी आंखें थक जाएं, जब भी उनकी ऊर्जा चुक जाए। वे बोझिल अनुभव करें—जैसा पढ़ने, फिल्म देखने या टी वी शो देखने से होता है—तो आंखें बंद कर लो और उन्हें स्पर्श करो। उसका असर तत्क्षण होगा। लेकिन अगर तुम इसे ध्यान बनाना चाहते हो तो कम से कम चालीस मिनट तक
इसे करना चाहिए। और कुल बात इतनी है कि दबाव मत डालों, सिर्फ छुओ। क् योंकि एक क्षण के लिए तो पंख जैसा स्पर्श आसान है। लेकिन ऐसा स्पर्श चालीस मिनट रह, यह कठिन है। अनेक बार तुम भूल जाते हो, और दबाव शुरू हो जाता है।
दबाव मत डालों। चालीस मिनट तक यह बोध बना रहे कि तुम्हारे हाथों
में कोई वचन नहीं है। वे सिर्फ स्पर्श कर रहे है। इसका सतत होश बना रहे कि तुम आंखों को दबाते नहीं, केवल छूते हो। फिर वह श्वास की भांति गहरा बोध बन जाएगा। जैसे बुद्ध कहते है कि पूरे होश से श्वास लो, वैसे ही स् पर्श भी पूरे होश से करो। तुम्हें सतत स्मरण रहे कि मैं बिलकुल दबाव न डालु। तुम्हारे हाथों को पंख जैसा हलका होना चाहिए। बिलकुल वज़न शून्य मात्र स्पर्श। तुम्हारा अवधान एकाग्र होकर वहां रहेगा। और ऊर्जा निरंतर बहती रहेगी।
आरंभ में ऊर्जा बूंद-बूंद आएगी। फिर कुछ ही महीनों में तुम देखोगें कि वह सरित प्रवाह बन गया है। और वर्ष भर के भीतर वह बाढ़ बन जाएगी। और जब वह घटित होगा—‘आँख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन’—जब तुम छूओगे तो तुम्हें हलकापन अनुभव होगा। तुम इसे अभी ही अनुभव कर सकते हो। जैसे ही तुम छूते हो, तत्काल एक हलकापन पैदा हो जाता है। और वह उनके बीच का हलकापन ह्रदय में खुलता है, वह हलकापन गहरे उतरता है, ह्रदय में खुलता है।
ह्रदय में केवल हल्कापन प्रवेश कर सकता है। कुछ भी जो भारी है वह ह्रदय में नहीं प्रवेश कर सकता है। ह्रदय में सिर्फ हलकी चीजें घटित हो सकती है। दो आंखों के बीच का यह हलकापन ह्रदय में गिरने लगेगा और ह्रदय उसे ग्रहण करने को खुल जाएगा।
‘और वहां ब्रह्मांड व्याप जाता है।’

और जैसे-जैसे यह ऊर्जा की वर्षा पहले झरना बनती है, फिर नदी बनती
है और फिर बाढ़ बनती है। तुम उसमें खो जाओगे। बह जाओगे। तुम्हें अनुभव होगा कि तुम नहीं हो। तुम्हें अनुभव होगा कि सिर्फ ब्रह्मांड है। श्वास लेते हुए, श्वास छोड़ते हुए तुम ब्रह्मांड ही हो जाओगे। तब श्वास के साथ-साथ ब्रह्मांड ही भीतर आएगा। और ब्रह्मांड ही बाहर जायेगा। तब अहंकार, जो सदा रहे हो, नहीं रहेगा। तब अहंकार गया।
यह विधि बहुत सरल है; इसमें खतरा नहीं है। तुम जैसे चाहो इसके साथ प्रयोग कर सकते हो। लेकिन इसके सरल होने के कारण ही तुम इसे करने से भूल भी सकते हो। पूरी बात इस पर निर्भर है कि दबाव के बिना छूना है।
तुम्हें यह सीखना पड़ेगा। प्रयोग करते रहो। एक सप्ताह के भीतर यह
सध जायेगा। अचानक किसी दिन जब तुम दबाव दिए बिना छूओगे, तुम्हें तत् क्षण वह अनुभव होगा जिसकी मैं बात कर रहा हूं। एक हलकापन, ह्रदय का खुलना और किसी चीज का सिर से ह्रदय में उतरना अनुभव होगा।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-63

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—91 (ओशो)
दूसरी विधि:
‘’हे दयामयी, अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे, आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।‘’
यह दूसरी विधि तभी प्रयोग की जा सकती है, जब तुमने पहली विधि पूरी
कर ली है। यह प्रयोग अलग से भी किया जा सकता है। लेकिन तब यह बहुत कठिन होगा। इसलिए पहली विधि पूरी करके ही इसे करना अच्छा है। और तब यह विधि बहुत सरल भी हो जायेगी।
जब भी ऐसा होता है—कि तुम हलके-फुलके अनुभव करते हो, जमीन से उठते
हुए अनुभव करते हो,मानों तुम उड़ सकते हो—तभी अचानक तुम्हें बोध होगा कि तुम्हारा शरीर को चारों और एक नीली आभा मंडल घेरे है।
लेकिन यह अनुभव तभी होगा जब तुम्हें लगे कि मैं जमीन से ऊपर उठ सकता हूं, कि मेरा शरीर आकाश में उड़ सकता है। कि यह बिलकुल हलका और निर्भार हो गया है। कि वह पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से बिलकुल मुक्त हो गया है।
ऐसा नहीं है कि तुम उड़ सकते हो; वह प्रश्न नहीं है। हालांकि कभी-
कभी यह भी होता है। कभी-कभी ऐसा संतुलन बैठ जाता है। कि तुम्हारा शरीर ऊपर उठ जाता है। लेकिन यह प्रश्न ही नहीं है। उसकी सोचो ही मत। बंद आंखों से इतना महसूस करना काफी है कि तुम्हारा शरीर ऊपर उठ गया है। जब तुम आँख खोलोगे तो पाओगे कि तुम जमीन पर ही बैठे हो। उसकी चिंता मत करो। अगर तुम बंद आंखों से महसूस कर सके कि शरीर ऊपर उठ गया है, कि उसमें कोई वज़न रहा, तो इतना काफी है।
ध्यान के लिए इतना काफी है। लेकिन अगर आकाश में उड़ना सीखने की चेष्टा कर रहे हो तो यह काफी नहीं है। लेकिन मैं उसमें उत्सुक नहीं हूं,और मैं तुम्हें उसके संबंध में कुछ नहीं बताऊंगा। इतना पर्याप्त है कि तुम्हें महसूस हो कि तुम्हारे शरीर पर कोई भार नहीं है, वह निर्भार हो गया है।
और जब भी यह हलकापन महसूस हो तो आंखें बंद रखे हुए ही अपने शरीर के आकार के प्रति बोधपूर्ण होओ। आंखों को बंद रखते हुए अँगूठों को और उनके आकार को महसूस करो, पैरों को और उनके आकार को महसूस करो। अगर तुम बुद्ध की भांति सिद्धासन में बैठे हो तो बैठे ही बैठे अपने शरीर के आकार को

अनुभव करो। तुम्हें अनुभव होगा, स्पष्ट अनुभव होगा। और उसके साथ ही साथ तुम्हें बोध होगा कि उस आकार के चारों और नीला सा प्रकाश फैला है।
आरंभ में यह प्रयोग आंखों को बंद रख कर करो। और जब यह प्रकाश फैलता
जाए और तुम्हें आकार के चारों और नीला प्रकाश मंडल महसूस हो, तब कभी यह प्रयोग रात में, अंधेरे कमरे में करते समय आंखें खोल लो, और तुम अपने शरीर के चारों और एक नीला प्रकाश, एक नीला आभा मंडल देखोगें। अगर तुम इसे बंद आंखों से नहीं, खुली आंखों से देखना चाहते हो तो इसे सचमुच देखना चाहते हो तो यह प्रयोग अंधेरे कमरे में करो जहां कोई रोशनी न हो। यह नीला प्रकाश, यह नीला आभा मंडल तुम्हारे आकाश शरीर की उपस्थिति
है। तुम्हारे शरीर एक द्वार है। यह विधि आकाश-शरीर से संबंध रखती है। और तुम आकाश शरीर के द्वारा ऊंची से ऊंची समाधि में प्रवेश कर सकते हो। सात शरीर है और भगवत्ता में प्रवेश के लिए प्रत्येक शरीर का उपयोग
हो सकता है। प्रत्येक शरीर एक द्वार है। यह विधि आकाश शरीर का उपयोग करती है। और आकाश शरीर को प्राप्त करना सबसे सरल है। शरीर के तल पर जितनी ज्यादा गहराई होगी उतनी ही उसकी उपलब्धि कठिन होगी। लेकिन आकाश शरीर तुम्हारे बहुत निकट है, स्थूल शरीर के बहुत निकट है। आकाश शरीर तुम्हारा दूसरा शरीर है। जो तुम्हारे चारों और है—तुम्हारे स्थूल शरीर के चारों और। यह तुम्हारे शरीर के भीतर भी है और यह शरीर को चारों और से एक धुँधली आभा की तरह, नीले प्रकाश को तरह ढीले परिधार की तरह घेर हुए है।
‘हे दयामयी, अपने रूप के बहुत ऊपर और बहुत नीचे, आकाशीय उपस्थिति
में प्रवेश करो।’
बहुत ऊपर, बहुत नीचे—तुम्हारे चारों और सर्वत्र। यदि तुम अपने सब
और उस नीले प्रकाश को देख सको तो विचार तुरंत ठहर जाएगा। क्योंकि आकाश शरीर के लिए विचार करने की जरूरत नही है। और यह नीला प्रकाश बहुत शांति दायी है। क्यों? क्योंकि वह तुम्हारे आकाश शरीर का प्रकाश है। नीला आकाश ही कितना विश्रामपूर्ण है। क्यों? क्योंकि वह तुम्हारे आकाश शरीर का रंग है। और आकाश-शरीर स्वयं बहुत विश्रामपूर्ण है।
जब भी कोई व्यक्ति तुम्हें प्रेम करता है, जब भी कोई व्यक्ति तुम्
हें प्रेम से स्पर्श करता है, तब वह तुम्हारे आकाश शरीर को स्पर्श करता है। इसीलिए तुम्हें वह इतना सुखदायी मालूम पड़ता है। इसका तो फोटोग्राफ भी लिया जा चुका है। जब दो प्रेमी में संभोग में उतरते है, और यदि उनका संभोग एक खास अवधि तक चले, चालीस मिनट से ऊपर चले और स्खलन न हो, तो गहन प्रेम में डूबे उन दो शरीरों के चारों ओर एक नीला प्रकाश छा जाता है। उनका फोटो भी लिया जा सकता है।
और कभी-कभी तो बहुत अजीब घटनाएं घटती है। क्योंकि यह प्रकाश बहुत
ही सूक्ष्म विद्युत शक्ति है। सारे संसार में बहुत सी ऐसी घटनाएं घटी है। नए प्रेमियों का एक जोड़ा हनीमून मनाने के लिए नए कमरे में ठहरा है; पहली रात है और वे एक दूसरे के शरीर से परिचित नहीं है, वे नहीं जानते है कि क्या संभव है। अगर दोनों के शरीर प्रेम के आकर्षण के लगाव और हार्दिकता के एक विशेष तरंग से तरंगायित है। एक दूसरे के प्रति खुले है, ग्रहणशील है कि उनके शरीर इतने विद्युत्मय हो गया है। उनके आकाश शरीर इतने आविष्ट और जीवंत हो गए है कि उनके प्रभाव से कमरे की चीजें गिरने लगी है।
बहुत अजीब घटनाएं घटी है। मेज पर एक मूर्ति रखी है। वह जमीन पर गिर जाती है। मेज का शीशा अचानक टूट जाता है। वहां कोई तीसरा व्यक्ति नही है। मात्र वह जोड़ा है वहां। उन्होंने मेज या शीशे को स्पर्श भी नहीं किया और ऐसा भी हुआ है कि अचानक कुछ जलने लगता है। दुनियाभर में ऐसे मामलों की खबरें पुलिस चौकियों में दर्ज हुई है। उन पर खोजबीन की गई है

ओर पाया गया है कि गहन प्रेम में संलग्न दो व्यक्ति ऐसी विद्युत शक्ति का सृजन कर सकते है कि उससे उनके आस-पास की चीजें प्रभावित हो सकती है। वह शक्ति भी आकाश शरीर से आती है। तुम्हारा आकाश शरीर तुम्हारा विद्युत शरीर है। जब भी तुम ऊर्जा से भरे होते हो तब तुम्हारा आकाश-शरीर बड़ा हो जाता है। और जब तुम उदास,बुझे-बुझे होते हो तो तुम्हारा आकाश शरीर सिकुड़कर शरीर के भीतर सिमट जाता है। इसीलिए उदास और दुःखी व्यक् ति के पास तुम भी उदास और दुःखी हो जाते हो। अगर कोई दुःखी व्यक्ति इस कमरे में प्रवेश करे तो तुम्हें लगेगा कि कुछ गड़बड़ हो रही है, क्योंकि उसका आकाश शरीर तुम्हें तुंरत प्रभावित करता है। वह शक्ति चूसता है; क् योंकि उसकी अपनी शक्ति इतनी बुझी-बुझी है कि वह दूसरों की शक्ति चूसने लगता है।
उदास आदमी तुम्हें उदास बना देता है। दुःखी आदमी तुम्हें दुःखी
कर देता है। बीमार व्यक्ति तुम्हें बीमार कर देगा। क्यो? क्योंकि वह उतना ही नहीं है जितना तुम देखते हो, उसके भीतर कुछ छिपा है जो काम कर रहा है। हालांकि उसने कुछ नहीं कहा है। हालांकि वह बाहर से मुस्कुरा रहा है; तो भी यदि वह दुःखी है तो वह तुम्हारा शोषण करेगा, तुम्हारे आकाश शरीर की ऊर्जा क्षीण हो जाएगी। वह तुम्हारी उतनी शक्ति खींच लेगा, वह तुम्हें उतना चूस लगा। और जब कोई सुखी व्यक्ति कमरे में प्रवेश करता है तो तुम भी तत्क्षण सुख महसूस करने लगते हो। सुखी व्यक्ति इतनी आकाशीय शक्ति बिखेरता है कि वह तुम्हारे लिए भोजन बन जाता है। वह तुम्हारा पोषण बन जाता है। उसके पास अतिशय ऊर्जा उससे बह रही है।
जब कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, कोई कृष्ण तुम्हारे पास से गुजरते है
तो वह तुम्हें निरंतर एक सूक्ष्म भोजन दे रहे है। और तुम निरंतर उनके मेहमान हो। और जब तुम किसी बुद्ध के दर्शन करके लौटते हो तो तुम अत्यंत पुन जीवित, अत्यंत ताजा,अत्यंत जीवंत अनुभव करते हो। हुआ क्या? बुद्ध कुछ बोले भी न हों; मात्र दर्शन से तुम्हें लगता है कि मेरे भीतर कुछ बदल गया है। मेरे भीतर कुछ प्रविष्ट हो गया है। क्या प्रविष्ट हो गया है? बुद्ध इतने आप्तकाम है, इतने आपूरित है, इतने लबालब भरे है। कि वे ऊर्जा का सागर बन गए है। और उनकी ऊर्जा बाढ़ की भांति बहा रही है।
जो भी व्यक्ति स्वास्थ होता है, शांत होता है, वह सदा बाढ़ बन जाता
है। क्योंकि अब उसकी ऊर्जा उन व्यर्थ की बातों में उन ना समझियों में व् यय नहीं होती जिनमें तुम अपनी ऊर्जा गंवा रहे हो। उसके साथ उसके चारों और सदा ऊर्जा की बाढ़ चलती है। और जो भी उसके संपर्क में आता है। वह उसका लाभ ले सकता है।
जीसस कहते है: ‘मेरे पास आओ, अगर तुम बहुत बोझिल हो तो मेरे पास आओ।
मैं तुम्हें निर्बोझ कर दूँगा।’
असल में जीसस कुछ नहीं करते है, बस उनकी उपस्थिति में कुछ होता है। कहते है कि जब कोई भगवता को उपलब्ध पुरूष, कोई तीर्थंकर, कोई अवतार, कोई क्राइस्ट पृथ्वी पर चलता है तो उसके चारो और एक विशेष वातावरण, एक प्रभाव-क्षेत्र निर्मित होता है। जैन योगियों ने तो इसका माप भी लिया है। वे कहते है कि यह प्रभाव-क्षेत्र चौबीस मील होता है। तीर्थंकर के चारों और चौबीस मील की परिधि होती है। चाहे उसे इसका बोध हो या न हो, चाहे वह मित्र हो या शत्रु हो, अनुयायी हो या विरोधी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
हां,यदि तुम अनुयायी हो तो तुम खूब भर जाते हो। क्योंकि तुम खुले
हुए हो। विरोधी भी भरता है, लेकिन उतना नहीं। क्योंकि विरोधी बंद होता है। लेकिन ऊर्जा तो सब पर बरसती है। एक अकेला व्यक्ति यदि अनुद्विग्न है, शांत है, मौन है, आनंदित है, तो वि शक्ति का पुंज बन जाता है—ऐसा

पुंज कि उसके चारों और चौबीस मील में एक विशेष वातावरण बन जाता है। और उस वातावरण में तुम्हें एक सूक्ष्म पोषण मिलता है।
यह घटना आकाश-शरीर के द्वारा घटती है। तुम्हारा आकाश शरीर विद्युत शरीर है। जो शरीर हमें दिखाई पड़ता है। वह भौतिक है, पार्थिव है। यह सच्चा जीवन नहीं है। इस शरीर में विद्युत शरीर आकाश शरीर के कारण जीवन आता है। वहीं तुम्हारा प्राण है।
तो शिव कहते है: ‘हे दयामयी, आकाशीय उपस्थिति में प्रवेश करो।’
पहले तुम्हें अपने भौतिक शरीर को घेरने वाले आकाश शरीर के प्रति बोधपूर्ण होना होगा। और जब तुम्हें उसका बोध होने लगे तो उसे बढ़ाओं। बड़ा करो, फैलाओ। इसके लिए तुम क्या कर सकते हो?
बस चुपचाप बैठना है और उसे देखना है। कुछ करना नहीं है; बस अपने चारो और फैले इस नीले आकार को देखते रहना है। और देखते-देखते तुम पाओगे कि वह बढ़ रहा है। बड़ा हो रहा है। सिर्फ देखने से वह बड़ा हो रहा है। क् योंकि जब तुम कुछ नहीं करते हो तो पूरी ऊर्जा आकाश शरीर को मिलती है। इसे स्मरण रखो। और जब तुम कुछ करते हो तो आकाश शरीर से ऊर्जा बाहर जाती है।
लाओत्से कहता है: ‘मैं कुछ नहीं करता हूं और मुझसे शक्तिशाली कोई नहीं है। मैं कभी कुछ नहीं करता है। और कोई मुझसे शक्तिशाली नहीं है। जो कुछ करने के कारण शक्ति शाली है, उन्हें हराया जा सकता है। लाओत्से कहता है; ‘मुझे हराया नहीं जा सकता क्योंकि मेरी शक्ति कुछ न करने से आती है। तो असली बात कुछ न करना है।’’
बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध क्या कर रहे थे? कुछ नहीं कर रहे थे। वे
उस क्षण कुछ भी नहीं कर रहे थे। वे शून्य हो गया थे। और मात्र बैठे-बैठे उन्होंने परम को पा लिया। यह बात बेबूझ लगती है। यह बात बहुत हैरानी की लगती है। हम इतना प्रयत्न करते है और कुछ नहीं होता है। और बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे-बैठे बिना कुछ किये परम को उपलब्ध हो जाते है। जब तुम कुछ नहीं करते हो तब तुम्हारी ऊर्जा बाहर गति नहीं करती
है। तब वह ऊर्जा आकाश-शरीर को मिलती है। और वहां इकट्ठी होती है। फिर तुम्हारा आकाश-शरीर विद्युत शक्ति का भंडार बन जाता है। और वह भंडार जितना बढ़ता है। फिर तुम्हारी शक्ति उतनी ही बढ़ती है। और तुम जितना ज् यादा शांत होते हो उतनी ही ऊर्जा का भंडार भी बढ़ता है। और जिस क्षण तुम जान लेते हो। कि आकाश शरीर जो ऊर्जा कैसे दी जाए और कैसे ऊर्जा को व् यर्थ नष्ट न किया जाए, उसी क्षण गुप्त कुंजी तुम्हारे हाथ लग गई।
और तब तुम आनंदित हो सकते हो। वस्तुत: तभी तुम आनंदित हो सकते हो। उत्सव मना सकते हो। तुम अभी जैसे हो ऊर्जा से रिक्त, तुम कैसे उत् सवपूर्ण हो सकते हो? तुम कैसे उत्सव मना सकते हो? तुम कैसे फूल की तरह खिल सकते है। फूल तो अतिरिक्त ऊर्जा का वैभव है। वृक्ष ऊर्जा से लबालब होते हो तो उसमें फूल खिलते है। वृक्ष यदि भूखा हो तो उसमे फूल नहीं आएँगे। क्योंकि पत्तों के लिए भी पर्याप्त पोषण नहीं है। जड़ों के लिए भी पर्याप्त भोजन नहीं है।
उनमें भी एक क्रम है। पहले जड़ों को भोजन मिलेगा। क्योंकि वे बुनियादी है। अगर जड़ें ही सूख गईं तो फूल की संभावना कहां रहेगी? तो पहले जड़ों को भोजन दिया जाएगा। फिर शाखाओं को। अगर सब ठीक-ठाक चले और फिर भी ऊर्जा शेष रह जाए, तब पत्तों को पोषण दिया जाएगा। और उसके बाद भी भोजन बचे और वृक्ष समग्रत: संतुष्ट हो, जीने के लिए और भोजन की जरूरत न रहे, तब अचानक उसमें फूल लगते है। ऊर्जा का अतिरेक ही फूल बन जाता है। फूल दूसरों के लिए दान है। फूल भेंट है। फूल वृक्ष की तरफ से तुम्हें भेंट है।

और यही घटना मनुष्य में भी घटती है। बुद्ध वह वृक्ष है जिसमें फूल लगे। अब उनकी ऊर्जा इतनी अतिशय है कि उन्होंने सबको पूरे अस्तित्व को उसमे सहभागी होने के लिए आमंत्रित किया है।
पहले पहली विधि को प्रयोग करो और फिर दूसरी विधि को। तुम दोनों को अलग-अलग भी प्रयोग कर सकते हो। लेकिन तब आकाश-शरीर के नीले आभा मंडल को प्राप्त करना थोड़ा कठिन होगा।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-चार प्रवचन-63

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—92 (ओशो)
‘चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।’
तीन बातें। पहली,यदि ज्ञान महत्वपूर्ण है तो मस्तिष्क केंद्र होगा। यदि बच्चों जैसी निर्दोषिता महत्वपूर्ण है तो ह्रदय केंद्र होगा। बच्चा ह्रदय में जीता है। हम मस्तिष्क में जीते है। बच्चा अनुभव करता है। हम विचार करते है। जब हम कहते है कि हम अनुभव कर रहे है। तब भी हम विचार करते है। कि हम अनुभव कर रहे है। सोचना हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। और अनुभव गौण हो जाता है। विचार विज्ञान का ढंग है। और अनुभव धर्म का।
तुम्हें फिर से अनुभव करना शुरू करना चाहिए। और दोनों ही आयाम बिलकुल अलग है। जब तुम विचार करते हो, तुम अलग बने रहते हो। जब तुम अनुभव करते हो, तुम पिघलते हो।
एक गुलाब के फूल के बारे में सोचो। जब तुम सोच रहे हो तो तुम अलग
हो; दोनों के बीच एक दूरी है। सोचने के लिए दूरी की जरूरत है। विचारों को गति करने के लिए दूरी चाहिए। फूल को अनुभव करो और अलगाव समाप्त हो जाता है दूरी विदा हो जाती है। क्योंकि भाव के लिए दूरी बाधा है। जितने ही तुम किसी चीज के निकट आते हो, उतना ही अधिक उसे अनुभव कर सकते हो। एक क्षण आता है कि जब निकटता भी एक तरह की दूरी लगती है—और तब तुम पिघलते हो। तब तुम अपनी ओर फूल की सीमाओं को अनुभव नहीं कर सकते, तुम नहीं कह सकते कि तुम कहां समाप्त होते हो और फूल कहां शुरू होता है। तब सीमाएं एक दूसरे में विलीन हो जाती है। फूल एक तरह से तुम में प्रवेश कर जाता है और तुम एक तरह से फूल में प्रवेश कर जाते हो।
भाव है सीमाओं का खो जाना; विचार है सीमाओं का बनना। यही कारण है
कि विचार सदा परिभाषाएं मांगता है; क्योंकि परिभाषाओं के बिना तुम सीमाएं नहीं खड़ी कर सकते। विचार कहता है पहले परिभाषा कर लो; और भाव कहता है परिभाषा मत करो। यदि तुम परिभाषा करते हो तो भाव समाप्त कर जाते हो।
बच्चा अनुभव करता है; हम विचार करते है। बच्चा अस्तित्व के निकट
आता है, वह पिघलता है और अस्तित्व को स्वयं में पिघलने देता है। हम अकेले, अपने मस्तिष्क में बंद है। हम ऐसे है जैसे द्वीप।
यह सूत्र कहता है कि ह्रदय के केंद्र पर लौट आओ। चीजों को अनुभव करना शुरू करो। यदि तुम अनुभव करना शुरू करो तो अद्भुत अनुभव होगा। जो भी कुछ तूम करो अपनी थोड़ा समय और थोड़ी ऊर्जा भाव को दो। तुम यहां बैठे हो, तुम मुझे सुन सकते हो—लेकिन वह सोच-विचार का हिस्सा होगा। तुम मुझे यहां महसूस भी कर सकते हो। लेकिन वह सोच-विचार का हिस्सा नहीं होगा। यदि तुम मेरी उपस्थिति को महसूस कर सको तो परिभाषाएं खो जाती है। तब वास्तव में यदि तुम भाव की सम्यक स्थिति में पहुंच जाओ तो तुम्हें पता नहीं

रहता कि कौन बोल रहा है, और कौन सुन रहा है। तब वक्ता श्रोता बन जाता है, श्रोता वक्ता बन जाता है। तब वास्तव में वे दो नहीं रहते। बल्कि एक ही घटना के दो ध्रुव है, अलग-अलग। वास्तविक चीज तो दोनों के मध्य में है— जो कि जीवन है, प्रवाह है।
जब भी तुम अनुभव करते हो तो तुम्हारे अहंकार को अतिरिक्त कुछ और महत्वपूर्ण हो जाता है। विषय और विषयी अपनी परिभाषाएं खो देते है। एक प्रवाह एक तरंग बचती है—एक और वक्ता और दूसरी और श्रोता,लेकिन मध्य में जीवन की धारा।
मस्तिष्क तुम्हें व्याख्या देता है। और इस व्याख्या के कारण बहुत भ्रांति पैदा हुई है। क्योंकि मस्तिष्क साफ-साफ परिभाषा करता है, सीमा बांधता है। नक्शे बनाता है। तर्क से सब सुस्पष्ट हो जाता है। किसी प्रकार की अनिशिचतता, किसी रहस्य की कोई संभावना नहीं रह जाती। हर अनिश्चिति अस्वीकृत हो जाती है। केवल जो स्पष्ट है वही वास्तविक है। तर्क तुम्हें एक स्पष्टता देता है। और इस स्पष्टता के कारण भ्रम पैदा होता है।
वास्तविकता का स्पष्टता से लेना-देना नहीं है। सत्य सदा बेबूझ
है। धारणाएं सुस्पष्ट होती है। सत्य रहस्यमय होता है। धारणाएं संगत होती है। सत्य असंगत होता है।
शब्द स्पष्ट होते है, तर्क स्पष्ट होता है। परंतु जीवन अनिश्चित रहता है। ह्रदय तुम्हें तुम्हें एक तरल अनिश्चिता देता है। ह्रदय सत्य के अधिक निकट पहुंचता है। परंतु तर्क की सुस्पष्टता नहीं होती। और क् योंकि हमने सुस्पष्टता को लक्ष्य बना लिया है। इसलिए हम सत्य को चूकते चले जाते है। सत्य में दोबारा प्रवेश करने के लिए तुम्हें आंखें चाहिए। तुम्हें तरल होना चाहिए, तुम्हें धारणा-शुन्य, अतर्क्य, विस्मयकारी और जीवंत सत्य में प्रवेश करने के लिए तैयार रहना चाहिए।
सुस्पष्टता तो मृत है। उसमें बदलाहट नहीं है। जीवन एक बहाव है, उसमें कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। अगले क्षण कुछ भी वैसा नहीं रहता। तो जीवन के प्रति तुम कैसे सुस्पष्ट हो सकते हो। यदि तुम सुस्पष्टता का अधिक ही आग्रह करोगे तो जीवन में तुम्हारा संबंध टूट जाएगा। यही हुआ है।
यह सूत्र कहता है कि पहली बात है। अपने ह्रदय के केंद्र पर वापस
लौट आओ। लेकिन वापस कैसे लोटे।
‘चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।’
मन का अर्थ है मानसिक प्रक्रिया, सोच-विचार। और चित का अर्थ है वह पृष्ठभूमि जिस पर विचार तैरते है—ऐसे ही जैसे आकाश में बादल तैरते है। बादल है विचार और आकाश है वह पृष्ठभूमि जिस पर वे तैरते है। उस आकाश उस चेतना को चित कहा गया है। तुम्हारा मन विचार-शून्य हो सकता है; तब वह चित है, तब वह शुद्ध मन है। जब विचार होते है तो मन अशुद्ध होता है।
विचार शून्य मन अस्तित्व की सूक्ष्मतम घटना है। इससे अधिक सूक्ष्
म संभावना की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। चेतना अस्तित्व की सबसे सूक्ष्म घटना है। तो जब मन में कोई विचार नहीं होते तब तुम्हारा मन शुद्ध होता है। शुद्ध मन ह्रदय की और गति कर सकता है। अशुद्ध मन नहीं कर सकता। अशुद्धता से मेरा अर्थ मन में अशुद्ध विचारों का होना नहीं है, अशुद्धता से मेरा अर्थ है सारे विचार—विचार मात्र ही अशुद्धि है।
यदि तुम परमात्मा के बारे में सोच रहे हो तो भी यह अशुद्धता है, क् योंकि बादल तो तैर ही रहे है। बादल बहुत शुभ्र है, लेकिन फिर भी है और आकाश निर्मल नहीं है। आकाश निरभ्र नहीं है। बादल काला हो सकता है। मन में कोई कामुक विचार गुजर जाए,या बादल सफेद हो सकता है—मन में कोई

सुंदर प्रार्थना गुजर सकती है। लेकिन दोनों ही स्थितियों में मन शुद्ध नहीं है। मन अशुद्ध है, बादलों से घिरा है। और मन यदि बादलों से घिरा हो तो तुम ह्रदय की और नहीं बढ़ सकते।
यह समझ लेने जैसा है, क्योंकि विचारों के रहते तुम मस्तिष्क से जुड़े रहते हो। विचार जड़ें है, और जब तक तुम उन जड़ों को ही काट डोलो तुम वापस ह्रदय पर नहीं लौट सकते। बच्चा उस क्षण तक ह्रदय में रहता है जिस क्षण तक विचार उसके मन में पैदा होने शुरू नहीं होते। फिर वे जड़ें जमाते है; फिर शिक्षा; संस्कृति और सभ्यता से विचार जमते हे। फिर धीरे- धीरे चेतना ह्रदय से मस्तिष्क की और मुड़ने लगती है। चेतना मस्तिष्क में केवल तभी रह सकती है जब विचार हों। यही आधार है। जब विचार नहीं होते तो चेतना तत्क्षण ह्रदय में अपनी वास्तविक निर्दोषता पर वापस लौट आती है।
इसीलिए ध्यान पर निर्विचार अवस्था पर, विचार-शुन्य सजगता पर, चुनाव-रहित बोध पर इतना जोर दिया गया है। या बुद्ध के ‘सम्यक चित’ पर इतना जोर दिया गया है। जिसका अर्थ है विचार शून्य चित का होना, केवल होश पूर्ण होना। तब क्या होता है? एक अद्भुत घटना घटती है। क्योंकि जड़ें कट जाती है तो चेतना तत्क्षण ह्रदय पर,अपने मूल स्त्रोत पर लौट आती है। तुम फिर बच्चे बन जाते हो।
जीसस कहते है, ‘केवल वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर पाएंगे जो बच्चों जैसे है।’
वह ऐसे ही लोगों की बात कर रहे है जिनकी चेतना अपने ह्रदय पर लौट
आई है; जो निर्दोष हो गए है। बच्चों जैसे हो गए है। लेकिन पहली आवश्यकता है चित को अव्याख्य सूक्ष्मता में ले जाना।
विचारों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। ऐसा कोई भी विचार नहीं है जिसे अभिव्यक्त न किया जा सके। यदि उसे अभिव्यक्त न किया जा सके तो तुम उसे सोच भी नहीं सकते। यदि तुम उसे सोच सकते हो तो उसे अभिव्यक्त भी कर सकते हो। ऐसा एक भी विचार नहीं है। जैसे तुम अनिर्वचनीय कह सको। जिस क्षण तुमने उसे सोचा,वह वचनीय हो गया—तुमने उसे अपने से तो कह ही दिया। चेतना शुद्ध चैतन्य, अव्याख्य है। इसीलिए तो संत कहते है कि वे जो जानते है उसे अभिव्यक्त नही कर सकते। तार्किक सदा यह प्रश्न उठाते है कि अगर तुम जानते हो तो कह क्यों नहीं सकते। और उनके तर्क में अर्थ है, बल है। अगर तुम सच में कह सकते हो कि तुम जानते हो तुम अभिव्यक्त क्यों नही कर सकते?
तार्किक के लिए ज्ञान व्याख्या होना चाहिए—जिसे जाना जा सकता है,
उसे दूसरों को जनाया भी जा सकता है। उसमें कोई समस्या नहीं है। यदि तुमने जान ही लिया है तो फिर क्या समस्या है? तुम उसे दूसरों को भी जना सकते हो। लेकिन संत का ज्ञान विचारों को नहीं होता। उसने विचार की भांति नहीं जाना है। एक अनुभूति की भांति जाना है। तो वास्तव में यह कहना ठीक नहीं है, ‘मैं परमात्मा को जानता हूं।’ यह कहना बेहतर है, ‘मैं अनुभव करता हूं।’ यह कहना ठीक नहीं है, परमात्मा को जाना है। यह कहना अच् छा है। मैंने उसका अनुभव किया है। यह उस घटना की ज्यादा उचित अभिव्यक् ति है। क्योंकि ज्ञान ह्रदय के द्वारा होता है। वह अनुभूति की तरह है। जानने की तरह नहीं।
‘चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में रखो.......।’
चित अव्याख्य है। यदि कोई विचार चल रहा हो तो वह व्याख्य है। इसलिए मन को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में रखने का अर्थ है ऐसी स्थिति में पहूंच जाना जहां तुम चैतन्य तो हो, पर किन्हीं विचारों के प्रति नहीं; तुम पूरी तरह सजग तो हो, पर तुम्हारे मन में कोई विचार नहीं चल

रहे। यह बहुत सूक्ष्म और बहुत कठिन बात है—तुम आसानी से इसे चूक सकते हो।
हम मन की दो अवस्थाओं को जानते है। एक अवस्था तो वह जब विचार होते है।जब विचार होते है तो तुम ह्रदय की और नहीं जा सकते। फिर हम मन की एक दूसरी अवस्था जानते है—जब विचार नहीं होते। जब विचार नहीं होते तुम सो जाते हो। हर रात कुछ क्षणों कुछ घंटों के लिए तुम विचार से बाहर हो जाते हो। विचार खो जाते हो। पर तुम ह्रदय तक नहीं पहुंचते क्योंकि तुम अचेतन हो। तो एक बड़े सूक्ष्म संतुलन की जरूरत है। विचार ऐसे ही खो जाने चाहिए जैसे वे गहरी नींद में खो जाते है। जब कोई सपने नहीं चलते—और तुम्हें उतना सजग होना चाहिए जितना तुम जागते हुए होते हो। मन उतना विचार रहित होना चाहिए जितना गहरी नींद में होता है। लेकिन तुम्हें सोया हुआ नहीं होना चाहिए। तुम्हें पूरी तरह जाग्रत, होश पूर्ण होना चाहिए।
जब जागरण और इस विचार शून्यता का मिलन होता है तो ध्यान घटित होता
है। इसीलिए पंतजलि कहते है कि समाधि सुषुप्ति की तरह है। परम आनंद गहनत्म नींद की तरह है, बस एक ही भेद है; इसमें तुम सोये नहीं होते। लेकिन गुण वही है—विचार शुन्य, स्वप्न शुन्य,शांत कोई तरंग नहीं। एकदम शांत और मौन, लेकिन जागरूक।
जब तुम होश में होते हो और कोई विचार नहीं होता तो तुम अपनी चेतना
में अचानक एक रूपांतरण अनुभव करते हो। केंद्र बदल जाता है। तुम वापस फेंक दिए जाते हो। तुम ह्रदय पर वापस फेंक दिए जाते हो। और ह्रदय से जब तुम संसार को देखते हो तो संसार नहीं होता। बस परमात्मा होता है। बुद्धि से जब तुम अस्तित्व को देखते हो तो परमात्मा नहीं होता है, बस भौतिक अस्तित्व होता है।
पदार्थ, भौतिक अस्तित्व, संसार और परमात्मा दो चीजें नहीं है। देखने के दो ढंग है, दो परिप्रेक्ष्य है। वि एक ही अस्तित्व को दो अलग-अलग केंद्रों से देखी गई घटनाएं है।
‘चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।’
पूरी तरह से उसमें डूब जाओ। विलीन हो जाओ। ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर एक चैतन्य मात्र रह जाए—पूरा ह्रदय बस एक चेतना से घिर जाए, किसी बारे में भी मत सोचो, बस सजग रहो। बिना किसी शब्द के, बिना किसी विचारा के बस होओ।
चित को ह्रदय के ऊपर नीचे और भीतर रखो और तुम्हारे लिए सब कुछ संभव
हो जाएगा। देखने के सब द्वार स्वच्छ हो जाएंगे। और रहस्यों के सब द्वार खुल जाएंगे। अचानक कोई समस्या न रहेगी। अचानक कोई दुःख न रहेगा। जैसे अंधकार पूरी तरह मिट गया हो।
एक बार तुम इसे जान लो तो तुम वापस बुद्धि पर जा सकते हो, पर तुम अब वहीं नहीं होओगे। अब तुम बुद्धि का एक यंत्र की तरह उपयोग कर सकते हो। उससे काम ले सकते हो। पर तुम उसके साथ तादात्म्य नहीं बनाओगे। उससे काम लेते समय भी जब तुम संसार को देखोगे तो तुम्हें पता होगा कि जो भी तुम देख रहे हो वह बुद्धि के कारण है। अब तुम एक उच्चतर अवस्था, एक गहनतर दृष्टिकोण से परिचित हो—और जिस क्षण तुम चाहो तुम वापस लौट सकते हो।

एक बार तुम्हें मार्ग का पता लग जाए और ख्याल आ जाए कि कैसे चेतना वापस लौटती है, कैसे तुम्हारी आयु, तुम्हारा अतीत, तुम्हारी स्मृति और तुम्हारा ज्ञान समाप्त हो जाता है। और तुम दोबारा एक नवजात शिशु हो जाते हो। एक बार तुम्हें इस रहस्य का पता चल जाए—तो तुम जब चाहे केंद्र की यात्रा कर सके हो और पुन: जीवंत, ताजे, प्राणवान हो सकते हो। यदि तुम् हें फिर बुद्धि में लौटना पड़े तो तुम उसका उपयोग कर सकते हो। तुम

सामान्य संसार में जा सकते हो। तुम उसमे कार्य करोगे पर उससे तादात्म्य नहीं करोगे। क्योंकि गहरे में तुम जानते हो कि बुद्धि के द्वारा जो भी जाना जाता है वह आंशिक है, वह पूर्ण सत्य नहीं है। और आंशिक सत्य झूठ से भी खतरनाक होता है। क्योंकि वह सत्य जैसा प्रतीत होता है तुम उससे धोखा खा सकते हो।
कुछ और बातें। जब तुम ह्रदय पर लौटते हो तो तुम अस्तित्व को एक पूर्ण इकाई की तरह देखते हो। ह्रदय विभाजित अंग नहीं है। ह्रदय तुम् हारा एक हिस्सा नहीं है। ह्रदय का अर्थ है तुम्हारी संपूर्ण समग्रता। मन एक हिस्सा है, पाँव एक हिस्सा है, पेट एक हिस्सा है। पूरे शरीर को अगर हम अलग-अलग लें तो वह हिस्सों में बंट जाता है। पर ह्रदय एक हिस्सा एक नहीं है। यही कारण है कि अगर मेरा हाथ काट दिया जाए तो भी मैं जीवित रहूंगा। मेरा मस्तिष्क भी निकाल दिया जाए भी में जीवित रहूंगा। लेकिन मेरा ह्रदय गया कि मैं गया।
वास्तवमें मेरा पूरा शरीर अलग किया जा सकता है। लेकिन अगर मेरा ह्रदय धड़क रहा है तो मैं जीवित हूं। ह्रदय का अर्थ है। तुम्हारी पूर्णता। तो जब तुम्हारा ह्रदय बंद होता है, तुम नहीं रहते। और दूसरी सब चीजें हिस्से है। दूसरी लगाई जा सकती है। यदि ह्रदय धड़क रहा तो तुम सुरक्षित होगे। ह्रदय का केंद्र तुम्हारे अस्तित्व का अंतरतम केंद्र बिंदु है।
मैं अपने हाथ से तुम्हें छू सकता हूं। वह स्पर्श मुझे तुम्हारे बारे में एक जानकारी देगा। तुम्हारी त्वचा के बारे में जानकारी देगा कि वह चिकनी है या नहीं। हाथ मुझे कुछ जानकारी देगा। लेकिन वह जानकारी बस आंशिक होगा क्योंकि हाथ मेरी समग्रता नहीं है। मैं तुम्हें देख सकता हूं। मेरी आंखें तुम्हारे बारे में एक अलग जानकारी देंगी। लेकिन वह भी पूरी नहीं होगा। मैं तुम्हारे बारे में सोच सकता हूं—फिर वह बात। लेकिन मैं तुम्हें हिस्सों में महसूस नहीं कर सकता। यदि मैं तुम्हें महसूस करता हूं तो तुम्हारी पूरी समग्रता में ही महसूस करता हूं। यही कारण है कि जब तक तुम प्रेम के द्वारा न जानो,तुम किसी व्यक्ति को उसकी संपूर्णता में नहीं जान सकते। केवल प्रेम से ही पूर्ण व्यक्तित् व,समग्र अस्तित्व तुम्हारे सामने प्रकट होता है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है ह्रदय से जानना। ह्रदय से अनुभव करना। तो मेरे देखे अनुभव करना और जानना, तुम्हारे अस्तित्व के दो हिस्से नहीं है। अनुभव है तुम्हारी पूर्णता और जानकारी बस उसका एक हिस्सा है।
धर्म के लिए प्रेम परम ज्ञान है। इसीलिए धर्म की अभिव्यक्ति वैज्ञानिक ढंग के बजाय काव्यात्मक शैली में अधिक हुई है। वैज्ञानिक भाषा का उपयोग नहीं हो सकता,क्योंकि उसका संबंध जानकारी के जगत से है। काव्य का उपयोग हो सकता है। काव्य का उपयोग हो सकता है। और जो प्रेम के द्वार सत्य तक पहुंचे है। वे जो भी कहते है काव्य हो जाता है। उपनिषद, वेद, जीसस या बुद्ध या कृष्ण के वचन से सब काव्यात्मक वक्तव्य है।
यह संयोग ही नहीं है कि पुराने सभी धर्म-ग्रंर्थ काव्य में लिखे
गए है। इसमें बड़ा अर्थ है। इससे पता चलता है कि कवि के जगत में और ऋषि के जगत में एक तरह की समानुभुति है। ऋषि भी ह्रदय का भाषा का उपयोग करता है।
कवि केवल कुछ क्षणों की उड़ान में ऋषि बन जाता है। ऐसे ही जैसे जब
तुम कूदते हो तो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से दूर हो जाते हो। लेकिन फिर वापस लौट आते हो। कवि का अर्थ है जो कुछ क्षणों के लिए संतों के जगत में उड़ान भर आया हो। उसे कुछ झलकें मिली है। संत वह है जो गुरूत्वाकर्षण के बिलकुल पार चला गया है। जो प्रेम के संसार में जीता है, जो ह्रदय से जीता है। ह्रदय जिसका निवास बन गया है। कवि के लिए तो यह बस एक झलक भर है। कभी-

कभी वह बुद्धि से ह्रदय में उतर आता है। लेकिन ऐसा बस कुछ क्षणों के लिए घटता है—वह फिर बुद्धि में वापस लौट जाता है।
तो अगर तुम कोई सुंदर कविता देखो तो उस कवि से मिलने मत चले जाना जिसने उसे लिखा हे। क्योंकि तुम उसी व्यक्ति से नहीं मिलोगे। तुम बहुत निराश होओगे। क्योंकि तुम्हारा एक बहुत साधारण आदमी से मिलना होगा। उसे एक झलक मिली है। कुछ क्षणों के लिए सत्य उस पर प्रकट नहीं हुआ है। वह ह्रदय पर उतर आया जरूर है। लेकिन उसे मार्ग का पता नहीं है। वह उसका मालिक नहीं है। यह तो बस एक आकस्मिक घटना है। और वह अपनी मर्जी से इस आयाम में गति नहीं कर सकता।
जब कूलरिज मरा तो चालीस हजार अधूरी कविताएं छोड़कर मरा। उसने अपने पूरे जीवन में बस सात ही कविताएं पूरी की। वह महान कवि था। संसार के महानतम कवियों में से एक था। लेकिन कई बार उससे पूछा गया, ‘’तुम अधूरी कविताओं को ढेर क्यों लगाये जा रहे हो। और तुम उन्हें कब पूरा करोगे?‘’ वह कहता है, मैं कुछ नहीं कर सकता। कभी-कभी कुछ पंक्तियां मुझे उतरती है और फिर वह रूक जाती है। तो मैं उन्हें कैसे पूरा कर सकता हूं। मैं प्रतीक्षा करूंगा। मुझे प्रतीक्षा करनी ही होगी। यदि दोबारा मुझे झलक मिलती है और दोबारा अस्तित्व मुझ पर सत्य को प्रकट करना है,तो फिर मैं उसे पूरा करूंगा। लेकिन अपने आप तो मैं कुछ नहीं कर सकता।
वह बड़ा ईमानदार कवि था। इतने ईमानदार कवि खोज पाना कठिन है। क् योंकि मन की प्रवृति है पूर्ति करना। यदि तीन पंक्तियां उतरती है तो तुम चौथी जोड़ लोगे। और बस चौथी बाकी तीन की भी हत्या कर देगी। क्योंकि वह मन की बड़ी निम्न अवस्था से आएगी। जब तुम पृथ्वी पर वापस लौट चुके होओगे।
जब तुम उछले तो कुछ क्षणों के लिए तुम गुरूत्वाकर्षण से मुक्तहो
गए। तुम अस्तित्व के एक अलग ही आयाम में चले गये। कवि धरती पर रहता है पर कभी-कभी ऊंची छलांग लेता है। उस छलांग में उसे झलकें मिलती है। संत ह्रदय में रहता है। वह धरती पर नहीं चलता, ह्रदय उसका निवास बन गया होता है। तो वास्तव में वह कविता रचता नहीं, लेकिन वह जा भी कहता है, कविता बन जाता है। वास्तव में संत गद्य का प्रयोग ही नहीं करता, क्योंकि उसका गद्य भी कविता है। वह उसके ह्रदय से आ रहा है। उसके प्रेम से आ रहा है। ‘चित को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में ह्रदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।’
ह्रदय तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व है। और जब तुम समग्र को केवल
तभी तुम समग्र को जान सकते हो—इसे याद रखना। केवल समान ही समान को जान सकता है। जब तुम आंशिक हो तो समग्र को नहीं जान सकते। जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। यदि भीतर तुम समग्र हो तो बाहर की समग्र वास् तविकता तुम पर प्रकट होगी, तुम उसे जानने में सक्षम हो गए, तुमने उसे जानने की पात्रता अर्जित कर ली। जब तुम भीतर बंटे होते हो तो बाहर सत्य भी बंटा दिखता है। जो भी तुम भीतर हो वही तुम्हारे लिए बाहर का जगत होगा।
ह्रदय की गहराइयों में पूरा संसार भिन्न है, एक अलग ही गेस्टाल्ट
है। मैं तुम्हें देख रहा हूं। यदि मैं तुम्हें मस्तिष्क से देखूं,बुद्धि से देखूं, जानने के अपने एक हिस्से से देखूं, तो यहां कुछ मित्र है, व्यक्ति है, अहंकार है—अलग-अलग।
लेकिन यदि मैं तुम्हें ह्रदय से देखूं तो यहां व्यक्ति नहीं होंगे। फिर बस यहां एक सागरीय चेतना है और व्यक्ति बस उसकी लहरें है। यदि मैं तुम्हें ह्रदय से देखूं तो तुम और तुम्हारा पड़ोसी दो नहीं होंगे; तब तुम्हारे और तुम्हारे पड़ोसी के बीच सत्य है। तुम बस दो ध्रुव हो और बीच में सत्य है। तो फिर यहां चेतना का एक सागर है। जिसमें तुम

लहरों की तरह हो। लेकिन लहरें अलग-अलग नहीं है। वे एक साथ जुड़ी हुई है। और तुम हर क्षण एक दूसरे में मिल रहे हो। चाहे तुम्हें इसका पता हो या न हो।
जो श्वास कुछ क्षण पहले तुममें थी अब तुमसे निकल चुकी थी—अब तुम् हारे पड़ोसी में प्रवेश कर रही है। कुछ ही क्षण पहले यह तुम्हारा जीवन थी और इसके बिना तुम मर गए होते,और अब यह तुम्हारे पड़ोसी में जा रही है। अब यह उसका जीवन है। तुम्हारा शरीर लगातार कंपन विकीरित कर रहा है। तुम एक रेडिएटर हो, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा सतत तुम्हरे पड़ोसी में प्रवेश कर रही है और उसकी जीवन ऊर्जा तुममें प्रवेश कर रही है।
यदि मैं तुम्हें अपने ह्रदय से देखूं यदि मैं तुम्हें प्रेमपूर्ण आंखों से देखूं, यदि मैं तुम्हें समग्रता से देखूं, तो तुम सब ऊर्जा के पूंज हो, ऊर्जा के सघन बिंदू हो और जीवन सतत तुमसे दूसरों में और दूसरों से तुममें गति कर रहा है।
और इस कमरे में ही नहीं, यह पूरा जगत जीवन-ऊर्जा का सतत प्रवाह है।
यह सतत गतिमान है। यहां कोई वैयक्तिक इकाइयां नहीं है। यह एक ब्रह्मांडाय समग्रता है। लेकिन बुद्धि के द्वारा अखंड ब्रह्मांड कभी प्रकट नहीं होता, केवल हिस्से, आणविक हिस्से ही दिखाई पड़ते है। और यह कोई प्रश्न नहीं है। जिसे बुद्धि से समझा जा सके। यदि तुम इसे बुद्धि से समझने का प्रयास करते हो तो इसे समझना असंभव ही होगा। यह अस्तित्व के एक बिलकुल अलग बिंदु से देखा गया, एक बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण है।
अगर तुम भीतर समग्र हो तो बाहर की समग्रता तुम पर प्रकट हो जाती
है। किसी ने उसे परमात्मा का साक्षात्कार कहा है। किसी ने उसे मोक्ष कहा है, किसी ने उसे निर्वाण कहा है। अलग-अलग शब्द है, बिलकुल भिन्न शब्द है, लेकिन वे एक ही अनुभव एक ही सत्य को दर्शाते है। एक बात उन सभी अभिव् यक्तियों में आधारभूत है—कि व्यक्ति मिट जाता है। तुम इसे परमात्मा का साक्षात्कार कह सकते हो, तब तुम व्यक्ति की तरह न रह जाओगे; तुम इसे मोक्ष कह सकते हो, फिर तुम एक स्व की भांति नहीं रह जाओगे; तुम इसे निर्वाण कि सकते हो—जैसे बुद्ध ने कहा है—कि जैसे दीए की ज्योति बुझ जाती है। खो जाती है। तुम दोबारा उसे कहीं खोज नहीं सकते, पा नहीं सकते, वह अनस्तित्व में चली गई, ऐसे ही व्यक्ति समाप्ति हो जाता है।
लेकिन यह बात सोचने जैसी है। सभी धर्म यह क्यों करते है कि जब तुम सत्य को साक्षात्कार करते हो तो व्यक्ति, स्वय, अहंकार मिट जाता है। यदि सभी धर्म इस पर जोर देते है तो इसका अर्थ है कि यह स्व जरूर मिथ्या होगा — बरना तो वह मिट कैसे सकता है। यह विरोधाभासी लग सकता है लेकिन ऐसा ही है, जो नहीं है केवल वही मिट सकता है; जो है वह तो अस्तित्व में रहेगा ही, वह मिट नहीं सकता।
मस्तिष्क के कारण एक झूठी इकाई का आभास होता है—व्यक्ति। यदि तुम ह्रदय में उतर जाओ तो झूठी इकाई खो जाती है। वह बुद्धि की रचना थी। ह्रदय में तो बस ब्रह्मांड रह जाता है। व्यक्ति नहीं; पूर्ण रह जाता है। अंश नहीं। और स्मरण रहे। जब तुम नहीं हो तो तुम नर्क निर्मित नहीं कर सकते। जब तुम नहीं हो तो तुम दुःख नें नहीं हो सकते। जब तुम नहीं हो तो कोई पीड़ा नहीं हो सकती। सब संताप, सब पीड़ाएं तुम्हारे कारण है। छाया की भी छाया। स्व झूठ है और उस झूठे स्व के कारण बहुत सी झूठी छायाएं निर्मित हो गई है। वे तुम्हारा पीछा करती है। तुम उनके साथ लड़ते रहते हो। लेकिन तुम कभी जीत न पाओगे। क्योंकि उनका आधार तो तुम्हीं में छिपा रहता है।
स्वामी रामतीर्थ ने कहीं कहा है कि वह एक गरीब ग्रामीण के घर ठहरे
हुए थे। उस ग्रामीण को छोटा बच्चा झोपड़ें के सामने खेल रहा था। और सूरज उग रहा था और बच्चे को अपनी छाया दिखाई दी। वह उसे पकड़ने की कोशिश करने

लगा। लेकिन जितना वह बढ़ता, छाया उतनी ही आगे बढ़ जाती। बच्चा रोने लगा। असफलता उसके हाथ लगी थी। उसने हर तरह से पकड़ने की कोशिश की, पर पकड़ पाना असंभव था।
छाया को पकड़ना असंभव है—इसलिए नहीं कि छाया को पकड़ना बड़ा कठिन
है। यह असंभव इसलिए है क्योंकि बच्चा उसे पकड़ने के लिए दौड़ रहा था। जब वह दौड़ रहा था तो छाया भी दौड़ रही थी। तुम छाया को नहीं पकड़ सकते। क् योंकि छाया में कोई सार नहीं है। और सार को ही पकड़ा जा सकता है। रामतीर्थ वहां बैठे हुए थे। वह हंस रहे थे और बच्चा रो रहा था। और
मां हैरान थी कि क्या करे। बच्चे को कैसे सांत्वना दे। तो उसने रामतीर्थ से पूछा, ‘स्वामी जी, क्याआप कुछ मदद कर सकते है?’ रामतीर्थ बच् चे के पास गए, बच्चे का हाथ पकड़ा और उसके सिर पर रख दिया। छाया पकड़ी गई। अब जब बच्चे ने अपने ही सिर पर हाथ रख दिया तो छाया पकड़ में आ गई। बच्चा हंसने लगा। अब वह देख सकता था कि उसके हाथ ने छाया को पकड़ लिया है।
तुम छाया को तो नहीं पकड़ सकते पर स्वयं को पकड़ सकते हो। और जिस क्षण तुम स्वयं को पकड़ लेते हो छाया पकड़ में आ जाती है।
पीड़ा अहंकार की ही छाया है। हम सब उसे बच्चे की तरह पीड़ा संताप
और विषाद के साथ लड़ रहे है। और उन्हें मिटाने का प्रयास कर रहे है। हम इसमे कभी जीत नहीं सकते। यह तो कोई ताकत का प्रश्न नही है। सारा प्रयास ही व्यर्थ है। असंभव है। तुम्हें स्वयं को, अहंकार को पकड़ना चाहिए। और जैसे ही तुम इसे पकड़ लेते हो, सारी पीड़ा मिट जाती है। वह बस छाया थी। ऐसे लोग है जो स्वयं से लड़ने लगते है। यह सिखाया गया है, ‘स्व को मिटा दो, अहंकार-शून्य हो जाओ। और तुम आनंदित हो जाओगे।’ तो वह स्व से, अहंकार से लड़ने लगते है। लेकिन यदि तुम लड़ रहे हो तो इतना तो तुम मान ही रहे हो कि स्व हे। तुम्हारी लड़ाई उसके लिए भोजन बन जाएगी। उसके लिए ऊर्जा का एक स्त्रोत बन जाएंगी, तुम उसका पोषण करने लगोगे।
यह विधि कहती है कि अहंकार के बारे में सोचो मत, बस बुद्धि पर उतर
आओ। और अहंकार मिट जाएगा। अहंकार बुद्धि का प्रक्षेपण है। उससे लड़ो मत। तुम जन्मों-जन्मों तब उससे लड़ते रहे सकते हो। पर यदि बुद्धि में ही बने रहे तो उसे जीत नहीं सकते।
अपने दृष्टिकोण का बदल डालों। बुद्धि से उतर कर एक दूसरे तल पर, अस्तित्व के एक गहरे पर उतर आओ। और सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि अब तुम एक अलग दृष्टि कोण से देख सकते हो। ह्रदय से कोई अहंकार नहीं पैदा कर सकता। इसी कारण हम ह्रदय से भयभीत हो गए है। हम कभी उसे अपने आप नहीं चलने देते, उसमें सदा हस्तक्षेप करते रहते है। सदा मन को बीच में ले आते है। हम ह्रदय को मन से नियंत्रित करने का प्रयास करते है। क्योंकि हम भयभीत हो गए है—यदि तुम ह्रदय की और गए तो स्वयं को खो दोगे। और यह खोना बिलकुल मृत्यु जैसा लगता है।
इसीलिए प्रेम कठिन लगता है। इसीलिए प्रेम में पड़ने में भय लगाता
है। क्योंकि तुम स्वयं को खो देते हो। तुम नियंत्रण में नहीं रहते। कोई तुमसे बड़ी चीज तुम्हें अपने प्रभाव पकड़ में ले लेती है। और तुम्हें वशीभूत कर लेती है। फिर तुम्हें कुछ निश्चित नहीं रहता और कुछ पता नहीं होता कि तुम कहां जा रहे हो। तो बुद्धि कहती है, ‘मुर्ख मत बनो, समझ से काम लो। पागल मत बनो।’
जब भी कोई प्रेम में होता है तो सब सोचते है वह पागल हो गया है। वह स्वयं ही समझता है कि वह पागल हो गया है। ‘मैं अपने होश में नहीं हूं,’ ऐसा क्या होता है? क्योंकि अब कोई नियंत्रण न रहा। कुछ ऐसा हो रहा है जिसे वह नियंत्रण नहीं कर सकता। जिसे वह चला नहीं सकता। वश में नहीं कर

सकता है। बल्कि कुछ और उसे चला रहा है। एक बड़ी शक्ति ने उसे बस में कर लिया है। वह वशीभूत है......।
लेकिन जब तक तुम वशीभूत होने के लिए तैयार नहीं हो, तब तक तुम्हारे
लिए कोई परमात्मा नहीं है। जब तक तुम वशीभूत होने के लिए राज़ी नहीं हो, तब तक तुम्हारे लिए कोई रहस्य, कोई आनंद कोई अहोभाव नहीं है। जो प्रेम से, प्रार्थना से विराट से वशीभूत होने को राज़ी है, उसका मतलब है कि वह अहंकार की तरह मरने के लिए राज़ी है। केवल वही जान सकता है कि वास्तव में जीवन क्या है। कि जीवन के पास देने के लिए क्या संपदा है। जो संभव है वह तत्क्षण साकार हो जाता है। लेकिन तुम्हें स्वयं को दांव पर लगाना होगा।
यह विधि सुंदर है। यह तुम्हारे अहंकार के बारे में कुछ नहीं कहती
है। यह उस संबंध में कुछ कहती ही नहीं। यह बस तुम्हें एक विधि देती है।
और यदि तुम विधि का अनुसरण करो अहंकार समाप्त हो जाएगा।